महामहोपाध्याय

डॉ० सर गंगानाथ झा

की सारस्वत-साधना का अध्ययन



डॉ० अजय मिश्र

नाग प्रकाशक

महामहोपाध्याय

डॉ. सर गंगानाथ झा की सारस्वत-साधना का अध्ययन

डॉ. अजय मिश्र
डी. लिट्.
ललितनारायण मिथिला विश्वविद्यालय
कामेश्वर नगर, दरभंगा, बिहार

NAG PUBLISHERS

नाग प्रकाशक
११ए, यू. ए., जवाहर नगर, दिल्ली - ११०००७

This publication has been brought out with the financial assistance from Rashtriya Sanskrit Sansthan, New Delhi.

नाग प्रकाशक

(१) ११ए-यू.ए., जवाहर नगर, दिल्ली-११०००७

(२) संस्कृत भवन, १२, १५ फ्लेट, संस्कृत नगर, प्लाट न. ३, सेक्टर १४, रोहिणी, नयी दिल्ली ११००८५

(३) जलालपुर माफी (चुनार मिर्जापुर) उ.प्र.

ISBN 81-7081-315-8

प्रथम संस्करण
१९९५

मूल्य : ९४·००

श्री सुरेन्द्र प्रताप द्वारा नाग प्रकाशक, ११ए., यू. ए., जवाहर नगर दिल्ली द्वारा प्रकाशित तथा जी. प्रिंट प्रासेस, ३०८/२, शहजादा बाग, दया बस्ती, दिल्ली ११००३५ में मुद्रित।

Laser Type setting :
Mohan Computer Point
8A. (U.A./3) Jawahar Nagar,
Delhi - 110007

भारतीय संस्कृति के संरक्षक
प्रातःस्मरणीय
राष्ट्रपति डॉ. शंकर दयाल शर्मा जी
को सादर समर्पित

अजय मिश्र

शुभाशंसा

न कुतूहलि कस्य मनश्चरितं हि महात्मनां श्रोतुम्

महापुरुषों के चरितों को भली भाँति जानने की सहज उत्कंठा लोगों में होती है । उन चरितों की जानकारी से अपने चरित्र-निर्माण में अपूर्व बल मिलता है । इसलिए मनीषियों द्वारा महापुरुषों के चरित चित्रित किए जाते हैं और जिज्ञासु व्यक्ति उन चरितों के परिशीलन से परम लाभान्वित होते हैं ।

महामहोपाध्याय डा. सर गङ्गानाथ झा भारत के उन विशिष्ट विभूतियों में एक हैं, जिन्होंने अपनी सारस्वत साधना से न केवल भारतवर्ष अपितु विश्व को परम लाभान्वित किया है ।

जनक - याज्ञवल्क्य - गौतम - शतानन्द - कुमारिल - मण्डन - गङ्गेश - उदयन - वाचस्पति - भवनाथ - शंकर - पक्षधर - केशव - चण्डेश्वर - ज्योतिरीश्वर - विद्यापति - उमापति - गोकुलनाथ - हर्षनाथ - विश्वनाथ - धर्मनाथ - जयदेव आदि मैथिल महामनीषियों की सुदीर्घ परम्परा में सरस्वती-समुपासक, मिथिलाभिजन अवदात श्रोत्रिय-सद्वंश-मुक्तामणि डा. गङ्गानाथ झा आते हैं, जिनके शरच्चन्द्रमरीचि धवल यश के प्रकाश से सम्पूर्ण विद्वज्जगत उद्भासित हुआ है ।

ऐसे महामनीषियों की सारस्वत साधना का अध्ययन अपने आप में एक महत्त्वपूर्ण कार्य है । डा. अजय मिश्र ने डा. झा के जीवन की ज्ञात/अज्ञात विभिन्न घटनाओं की तथा उनकी गंभीर सारस्वत साधना की गवेषणा कर उन्हें प्रकाश में लाने का स्तुत्य प्रयास किया है । इस विषय की गम्भीरता इसीसे प्रकट होती है कि पी-एच.डी. उपाधि प्राप्त करने के बाद डा. अजय मिश्र ने सर्वोच्च डी. लिट्. उपाधि हेतु "डा. सर गङ्गानाथ झा की सारस्वत साधना का अध्ययन" इस विषय को अपना शोध-विषय बनाया और इनके गंभीर अध्ययन का ही यह फल है कि ललित नारायण मिथिला विश्वविद्यालय द्वारा इन्हें इस विषय पर डी. लिट्. की उपाधि से विभूषित किया गया है ।

प्रकृत विषय के उपक्रम में मिथिला के सीमाङ्कन तथा उसके प्राचीन सारस्वत वैभव के उल्लेख के साथ डा. झा के आरम्भिक जीवन को उद्भासित किया गया है । उनका आदर्श दाम्पत्य-जीवन आज के भटके दाम्पत्य जीवन का सन्मार्ग दर्शक है । प्रसङ्गतः वहीं भारतीय षड्दर्शनों का संक्षिप्त परिचय ग्रन्थ को महनीय बनाता है ।

डा. झा के विशाल व्यक्तित्व का पूर्ण परिचय देना एक अध्याय में कठिन है । फिर भी जिस परम्परा में उनके व्यक्तित्व का विकास/प्रकाश हुआ है, उसका सम्यक् उल्लेख हुआ है ।

डा. गङ्गानाथ झा मिथिलाभिजन होते हुए भी प्रयागवासी हो गए थे। उनके समस्त परिवार की विशिष्ट शिक्षा-दीक्षा उत्तर प्रदेश में हुई थी। डा. अमरनाथ झा, डा. आदित्यनाथ झा जैसे दिग्दिगन्त विख्यात इनके पुत्ररत्न थे। डा. भवनाथ झा, डा. शिवनाथ झा, विभूतिनाथ झा (आइ.ए.एस.) भी अपने-अपने क्षेत्र में अद्वितीय थे। डा. मिश्र ने इस क्रम में अनेक ऐसे प्रेरक प्रसङ्गों को प्रस्तुत किया है जिनसे पथ-प्रदर्शन होता है।

डा. गङ्गानाथ झा की मौलिक, अनूदित तथा प्रकीर्ण रचनाओं का विशाल भण्डार है। उन कृतियों का परिचय प्रस्तुत करना ही अपने आपमें एक स्तुत्य कार्य है। प्रकृत शोध-प्रबन्ध के माध्यम से डा. मिश्र ने उन अमूल्य कृतियों का विवरण प्रस्तुत किया है जो अत्यन्त उपादेय है।

महामहोपाध्याय डा. सर गङ्गानाथ झा मूलतः संस्कृत के गम्भीर विद्वान् थे। उन्होंने अंग्रेजी भाषा और साहित्य का अच्छा अध्ययन किया था। मैथिली उनकी मातृ-भाषा थी। इन तीनों भाषाओं में उनकी अनेक विशिष्ट रचनाएँ हैं, किन्तु वे हिंदी के भी उच्च कोटि के लेखक थे इस बात को बहुत कम लोग जानते हैं। प्रकृत ग्रन्थ में डा. झा की हिन्दी कृतियों पर भी अच्छा प्रकाश डाला गया है और हिन्दी साहित्य को समृद्ध करने में इनके योगदान का सप्रमाण विवरण दिया गया है।

तमसाच्छन्न मार्ग का पथिक दिवानाथ के प्रकाश को पाकर जैसे प्रमुदित होकर गन्तव्य स्थान की ओर अग्रसर होता है, वैसे ही गङ्गानाथ झा के ज्ञान-प्रकाश को पाकर जिज्ञासु जन अध्यवसाय पूर्वक अपने लक्ष्य को प्राप्त करने में सफल होंगे।

डा. अजय मिश्र ने डा. झा की सारस्वत-साधना का भली भाँति अध्ययन कर प्रस्तुत ग्रन्थ को तैयार किया है और उसको प्रकाशित कराकर सुधी समाज का महान् उपकार किया है ; अतः डा. मिश्र प्रशंसा के पात्र हैं।

नई दिल्ली स्थित राष्ट्रीय संस्कृत संस्थान ने इस ग्रन्त के प्रकाशन में आर्थिक सहयोग देकर महनीय कार्य किया है। मुझे पूर्ण विश्वास है, इस ग्रन्थ का पूर्णतः उपयोग और समादर सुधी समाज में होगा, जिससे डा. मिश्र का सत्प्रयास सफलीभूत होगा और वे सोत्साह सारस्वत सेवा में संलग्न होंगे।

"क्लेशः फलेन हि पुनर्नवतां विधत्ते।"

इतिशम्।

विवाह पञ्चमी १९९४

आचार्य डॉ. जयमन्त मिश्र
पूर्व कुलपति
कामेश्वर सिंह संस्कृत विश्वविद्यालय,
दरभंगा

पुरोवाक्

गंगा बहथि जनिक दच्छिन दिशि, पूर्व कौशिकी धारा
पश्चिम बहथि गण्डकी उत्तर, हिमवत् वन विस्तारा।
कमला त्रियुगा अमृता धेमुड़ा बागमती कृतसारा
मध्य बहथि लक्ष्मणा प्रभृति, से मिथिला विद्यागारा ।।[१]

जगत् जननी जानकी की जन्म भूमि मिथिला आदिकाल से ही सरस्वती की उपासना के लिए सुविख्यात रही है। मिथिला में ऐसे अनेक ग्राम तीर्थ हैं जहाँ विद्वानों ने अपना अध्यवसायी जीवन व्यतीत किया। वैदिक काल से ही मिथिला प्राचीन-विद्या के केन्द्र के रूप में प्रख्यात है। भारतीय दर्शनों में से चार दर्शन शास्त्रों का उद्गम-स्थल मिथिला ही है।

कलौ स्थानानि पूज्यन्ते ।

अर्थात् कलिकाल में महापुरुषों के द्वारा शोभित स्थानों की ही पूजा होगी। मिथिला की पुण्यभूमि में ऐसी अनेक पूज्य तपोभूमि हैं। आदरणीय तथा प्रातः स्मरणीय गाँवों की मणि-मेखला का मध्यमणि है सरिसब-पाही। इस गाँव का इतिहास मिथिला के गौरवशाली अतीत से अनुबद्ध है। प्राचीन काल में यह अमरावती के रूप में विख्यात था। मिथिला के मध्य में अवस्थित सरिसब-पाही स्वयं बलराम की साधना भूमि रही है। भगवान् बलराम द्वारा स्थापित माता सिद्धेश्वरी की मूर्त्ति इस सिद्ध पीठ को अतिरिक्त गरिमा प्रदान करती है -

दुष्टप्राणहरी गिरीन्द्रतनया नागेन्द्रहाराञ्चिता
भक्तिप्रह्व-सुपर्वनायक-शिरोरत्नाञ्चि ताङ्घ्रिद्वया।
भक्तानुग्रहहेतवे वटतटे स्थानं विधाय स्थिता
भूयाद् भव्यकरी पराभवहरी सिद्धेश्वरी मादृशाम् ।।[२]

सरिसब गाँव की महिमा में गङ्गानन्द कवीन्द्र कहते हैं -

मीमांसायाः श्रवणसरसा शेमुषी तावकी चेत्

---

१ कवीश्वर चन्दा झा

२ पं. भवनाथ मिश्र (प्रसिद्ध अयाची मिश्र)

चित्ते चेत्ते किमपि कविता वर्णने कौतुकं वा।
तत्र भ्राम्यन् बुधजन - चतुःपाठिकाभिस्तदा त्वं
शोभाशालिप्रिय - सरिसब - ग्राम-रत्नं परीयाः ॥
राजत्सूक्ष्मोत्तरपरिकरा सक्तस्वभावोलित भव्या-
नेकच्छेकाश्रयणललिता शोभितैकावलीभिः।
भ्रातर्य त्रामलमतिमतः कोविदस्यास्यरङ्गे
भावासङ्गेरितबहुरसा भारती नृत्यतीव ॥[१]

सात खण्डों के साथ यह गाँव अभी भी भगवती भारती की अभ्यर्थना में लगा हुआ है। वाणी और वीणा का आकर्षण आज भी लोगों को अनायास ही यहां खींच लाता है। पौराणिक इति-वृत्तों में भी इन गौरव गाथाओं का सन्निवेश हुआ है। सरिसब का गौरवमय इतिहास मिथिला के सांस्कृतिक इतिहास की रूपरेखा प्रस्तुत करने में पूर्णतया सक्षम है। इसी पतित-पावनी तपोभूमि के एक युग-विशेष का प्रतिनिधित्व करनेवाले अद्वितीय नक्षत्र का नाम है महामहोपाध्याय डॉ. सर गंगानाथ झा गायत्री को जीवन का मूल मन्त्र मानकर भारतीय संस्कृति - सागर में अवगाहन करनेवाले इस युगपुरुष ने अपना सम्पूर्ण जीवन अध्ययन-अनुशीलन में ही व्यतीत किया। अध्ययन के क्रम में मीमांसा तथा न्यायसूत्र का सूक्ष्मतम अंश भी छूटने न पाया। सहस्र गायत्री का जाप करनेवाले डा. झा प्रतिदिन अस्सी पृष्ठों का लेखन करते थे। भारतीय दर्शन का अध्ययन तथा तत्सम्बन्धी चिन्तन, मनन और अनुशीलन ने आपके साधना पथ को दिव्य विस्तार प्रदान किया और इसी के आलोक में इनका सम्पूर्ण जीवन रूपायित हुआ। वृद्ध प्रपितामह पं. लक्ष्मीदेव झा से चली आयी परम्परा ने यहाँ आकर अभूतपूर्व विस्तार प्राप्त किया। कौलिक परम्परा, सरिसब की मिट्टी, कमला की हवा, माता सिद्धेश्वरी और इष्टदेवी तारा की कृपा ने अपना प्रभाव दिखाया और स्वनामधन्य पं. धरानाथ झा के तीसरे पुत्र गंगानाथ ने सम्पूर्ण परिसर के साथ पूरे देश को आदरणीय बना दिया।

भारतीय चिन्ताधारा की एक सहज और सुग्राह्य विशेषता रही है कि यह कभी स्वार्थ संकुचित नहीं रही। अपने मानस मंथन से यहां के मनीषियों ने जो कुछ भी पाया उसे अंध - कक्ष में कैद नहीं रखा, बल्कि उसे जन सामान्य के लिए सुलभ करने एवं उसे विश्वलोकमानस में बिठा देने के लिए आकुल-आतुर रहे। शुक-सारिकाओं की शास्त्र-चर्चा भूमि मिथिला में अध्ययन, अध्यापन तथा लेखन को यजन का सम्मान प्राप्त है। विदेहराज जनक, मण्डन और याज्ञवल्क्य की मिथिला में यह यजन नित्य स्वरुप धारण कर पल्लवित-पुष्पित होता रहा।

बालोऽहं जगदानन्द न मे बा ला सरस्वती
अपूर्णे पञ्चमे वर्षे वर्णयामिजगत्त्रयम्।

---

१ पं. गङ्गानन्द कवीन्द्र - भृङ्गदूत

सरस्वती का जयघोष कर यहाँ के शिशु भी उन्नत ललाट लिए कौलिक गौरव गाथा को विस्तार प्रदान करते रहे । सरिसबपाही माता सरस्वती की क्रीड़ा - भूमि के रुप मे सुविख्यात है । यदि सर झा नहीं होते तो भारतीय दर्शन का प्रचार - प्रसार असंभव होता । अठारह वर्ष की अल्पायु में ही आपने 'काव्य प्रकाश' का सफल अनुवाद कर विद्वानों को चकित कर दिया था । माता रामकाशी देवी का यह प्रतिभाशाली पुत्र निजमाता सहित मातृभूमि और मिथिला की समस्त माताओं के ललाट को उन्नत कर गया । उपाधियाँ इस व्यक्ति के निकट आकर स्वयं अलंकृत हुई । पाण्डित्य के लिए महामहोपाध्याय, वैदुष्य के लिए सर और 'मीमांसा - दर्शन में प्रभाकर के सिद्धान्त' की अभिनव व्याख्या के लिए 'डाक्टरेट' की उपाधि धारण करने वाले असाधारण प्रतिभा के स्वामी गंगानाथ झा संस्कृत भारती भाल के शृंगार हैं । परिजनों तथा वयोवृद्ध ग्रामीणों की मान्यता है कि सूर्याराधना से ही आपकी साधना को निरन्तर विस्तार मिला । प्रख्यात भाषाशास्त्री डा. बाबू राम सक्सेना के अनुसार -

'सूर्यदेव और गायत्री मंत्र के प्रति आपकी अटूट आस्था थी । वैसा गंभीर अध्ययन और अनुशीलन की क्षमता इस युग में मैंने कहीं और नहीं पाया ।'[१]

सरस्वती के इस वरद्पुत्र ने 'महच्च महतांच' की उदात्त परम्परा के अनुरूप स्वाध्याय के बल पर, मेधा के बल पर अपना प्राप्य पाया । अध्ययन को यजन मानने वाले सर झा जीवन पर्यन्त स्तरीय समिधा का संकलन करते रहे । 'कवि रहस्य,' आर्यन इन्भेजन ऑफ इण्डियाः इज इट ए मिथ, दि फिलासाफिकल डिसिप्लिन, प्रभाकर स्कूल ऑफ पूर्व मीमांसा, प्रभाकर ए थ्योरी ऑफ एरर, न्याय सूत्र ऑफ गौतम आदि इसी दिव्य साधना से प्राप्त सांस्कृतिक धरोहर हैं । आपने जीवन पर्यन्त विश्राम नहीं किया । सर झा कहते थे -

विद्याभ्यसनं व्यसनम् अथवा हरि पादादि सेवनम् ।

गायत्री और सरस्वती के अनन्य उपासक गंगानाथ झाजी की दिनचर्या का आरंभ सहस्र गायत्री जाप और वेदोक्त सूर्योपासना से ही होता था -

तं सूर्यं भवकर्तारं महातेजः प्रदीपनम् ।
महापापहरं देवं तं सूर्यं प्रणमाम्यहम् ॥
तं सूर्यं जगतां नाथं ज्ञानविज्ञानमोक्षदम् ।
महापापहरं देवं तं सूर्यं प्रणमाम्यहम् ॥

भगवान् सूर्य जपापुष्प की भाँति लाल वर्ण वाले हैं । शास्त्र-वेत्ता आदित्य के भीतर 'हिरण्यमय पुरुष' की उपासना करते हैं । पौराणिक मान्यता है कि

---

१ डा. बाबूराम सक्सेनाः सर गंगानाथ झाः एक संस्मरण

भगवान् भानुदेव आदि में सहस्र सिर वाले थे। उनका मण्डल नौ हजार योजनों में फैला हुआ था। पूर्वाभिमुख प्रादुर्भूत होने वाले सूर्य प्रतिदिन मेरु पर्वत के चारों ओर घूमते रहते हैं। महर्षि याज्ञवल्क्य ने सूर्यदेव की उपासना कर 'शुक्ल यजुर्वेद' को प्रकाशित किया। सूर्यानुग्रह से ही देवी द्रोपदी ने अक्षय पात्र प्राप्त किया था। महर्षि अगस्त्य ने युद्ध क्षेत्र में श्रान्त श्री राम को 'आदित्य हृदय स्तोत्र' का उपदेश दिया था। इसी मन्त्र के सुप्रभाव से श्री राम ने रावण पर विजय पायी।

अपने सुहृदजनों से डा. झा कहते थे कि सूर्य की आराधना करते हुए आस्तिक जन ऐहिक अभ्युन्नति - 'प्रेय' और पारलौकिक उत्कर्ष 'श्रेय' की प्राप्ति करते हैं।'

सूर्य गीता का पावन स्मरण कर वे कहते थे -

विश्वप्रकाशक श्रीमन् सर्वशक्तिनिकेतन
जगन्नियन्तः सर्वेश विश्वप्राणाश्रय प्रभो ॥

आप सम्पूर्ण विश्व के प्रकाशक, समस्त शक्तियों के अधिष्ठाता, जगन्नियन्ता सर्वेश एवं विश्व के प्राणाधार प्रभु हैं। अंशुमाली भगवान् भुवन भास्कर श्री सूर्य की महिमा अनन्त एवं असीम है। वेदमाता गायत्री में जहाँ निखिलान्तरात्मा सर्वद्रष्टा एवं सर्वज्ञ भगवान् श्री सर्वेश्वर का प्रतिपादन है वहाँ सविता नाम से महाभाग सूर्य का भी परिबोध है -

'सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च,' 'दृशे विश्वाय सूर्यम्'।

समस्त जगत के आत्मा रुप में सूर्य हैं तथा सारे संसार के दृष्टिदाता भी सूर्य है। सर झा मानते थे कि सूर्योपासना से ही उन्हें निरन्तर अध्ययन की प्रेरणा मिली। अपने कई व्याख्यानों में विद्वान् गवेषक ने गायत्री मन्त्र की महत्ता और सूर्योपासना की उपलब्धियों की विस्तृत चर्चा की है। 'गायत्री का जाप आस्तिक जन को प्रकाश-पथ पर अभिगमित होने का अपार बल प्रदान करते हैं -

'ओं भूर्भुवः स्वः तत् सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि।
धियो यो नः प्रचोदयात् ॥'

माता गायत्री के इस भक्त ने कभी पीछे मुड़कर नहीं देखा। इस वरद् पुत्र को पाकर यह ग्राम - तीर्थ धन्य हो गया -

गंगानाथ अमरनाथक जत शोभित यश हिम धाम।
मार्कण्डेय बालकृष्णादिक विद्या वैभवधाम ॥[१]

---

१ कविशेखर बदरीनाथ झाः सरिसबक महिमा

सर झा विरचित विशाल साहित्य अपने आप में एक युग का प्रतीक है। ज्ञान की इन किरणों ने कितनों का कायाकल्प किया और कर रही है यह सहज अनुमान्य नहीं। इस ज्ञान गंगा में डूबना मुझ जैसे साधारण गवेषक के लिए असंभव था। किन्तु स्वयं सर झा का कहना है - "सफलता और असफलता का प्रश्न प्रयास के पश्चात् ही उठता है। सच्चे हृदय से की गई ईश्वराधना और सच्चा प्रयास कभी विफल नहीं होता।'

इसी विश्वास के साथ मैंने पवित्र ज्ञान सागर में उतरने का साहस किया है। जीवनान्त तक अपने संकल्प और अनुशासन को धूमिल न होने देने वाले महापुरुष के जीवन चरित को किंवदन्तियों की कुहेलिका से निकालने का मैंने विनम्र प्रयास किया है। बीच-बीच में अपनी कूप मण्डूकता पर जब मैं चिढ़ता था तो सर झा के ही शब्द मुझे आगे बढ़ने की प्रेरणा देते रहे।

एक अदृश्य शक्ति से परिचालित होने का मैंने वार-वार अनुभव किया जो मेरी व्यक्तिगत निधि है। दिव्य एवं महनीय परम सत्ता के आलोक में सम्पूर्ण कौलिक वैदुष्य सर झा में उतर आया। वेदोक्त ज्ञान, कर्म और उपासना का अवलम्बन करते हुए सर झा ने भारतीय संस्कृति तथा भारतीय साहित्य की अपूर्व सेवा की। शुक सारिकाओं की शास्त्र-चर्चा भूमि मिथिला के केन्द्रिय सिद्ध-पीठ सरिसब पाही के अधिवासी सर गंगानाथ झा भारतीय वैदुष्य परम्परा के अप्रतिम निदर्शन हैं। काशी पहुँचकर इस विद्या-वट को प्रसरित होने के लिए प्रचुर समिधा और दिव्याकाश की प्राप्ति हुई। काशी भारतीय सांस्कृतिक गरिमा का प्रतीक है। विद्याध्ययन के लिए आदिकाल से ही इसकी प्रसिद्धि रही है। शिवपुराण के अनुसार भगवान् शिव का सप्तम अवतार काशी में ही हुआ था। काशी को शिवजी के त्रिशूल पर अवस्थित एक पृथक् लोक की संज्ञा दी गई है। इस दिव्य भूमि में विद्याध्ययन-अध्यापन की पौराणिक परम्परा रही है। ज्ञान की शलाका से अज्ञान रुपी अन्धकार को दूर करनेवाली यह पवित्र तपोभूमि मुक्ति यात्रा का अन्यतम पड़ाव है। यहाँस्वयं शिव भैरव रुप में विराजते हैं -

विश्वेश्वरावतारस्तु काश्यां जातो हि सप्तमः।
सर्वं ब्रह्माण्डरूपश्च भुक्तिमुक्तिप्रदो मुने॥
पूजितस्सर्वदेवैश्च भक्त्या विष्णवादिभिस्सदा।
कैलाशपतिना चापि भैरवेणापि नित्यशः॥
ज्योतिर्लिङ्गस्वरूपेण संस्थितस्तत्र भुक्तिदः।
स्वयं सिद्धस्वरूपो हि तथा स्वपुरि स प्रभुः॥
काशी-विश्वेशयोर्भक्त्या तन्नाम जपकारकाः।
निर्लिप्तः कर्मा भिर्नित्यं कैवल्यपदभागिनः॥

काशी की महिमा तीनों लोको से न्यारी है। अद्भुत और अपूर्व है इसका वैदुष्य। भारतीय संस्कृति अनुलगित इस विद्या नगरी को स्वयं शिव की कृपा प्राप्त है। मान्यतानुसार काशीपुरी तथा वहां के स्वामी विश्वनाथ की

अभ्यर्थना करने वाले पुरुष कर्म बन्धन से मुक्त होकर मोक्षपद के अधिकारी हो जाते हैं। गौतमी गंगा और विश्वनाथ के कारण इस नगरी की महिमा ही कुछ और है। माता रामकाशी और पिता धरानाथ बाबू का काशीप्रेम गंगानाथ झा को भी काशी ले आया। आप क्वींस कालेज के छात्र हुए और शीघ्र ही डा. दास, पं. भगवानदास, पं. हरिनाथ तथा पं. रघुवीर आदि मित्रों ने गंगानाथ झा को अध्ययन के व्यापक क्षेत्र में प्रविष्ट होने में सहायता गुरुदेव महामहोपाध्याय पं. जयदेव मिश्र और पण्डित शिवकुमार मिश्र को गंगानाथ के रुप में चिर प्रतीक्षित शिष्य मिल गया जिसे अपना संचित ज्ञान सौंपकर निश्चिन्त हुआ जा सके। ज्ञान का कोश सुपात्र को ही दिया जा सकता। डा. थीबो, सर आर्थर भेनिस, प्रो. सान्याल जैसे अध्यापकों ने इस अद्भुत अपूर्व छात्र का वैदुष्य देखकर सुखद आश्चर्य प्रकट किया। मैथिल पण्डितों की विलुप्त होती परम्परा को एक सबल आधार मिला। युक्त प्रान्त में प्रथम आकर गंगानाथ झा ने अपनी पात्रता का प्रथम ध्वजारोहण किया। अध्यापकों के साथ मित्रों तथा नगरजनों में भी आप लोकप्रिय हुए।

मात्र अठारह वर्ष की आयु में गंगानाथ झा ने काव्यप्रकाश का सफलतापूर्वक अंगरेजी अनुवाद कर लिया। पं. गोविन्ददासजी के सहयोग से प्रायः सभी पाठ्य पुस्तकों का अंगरेजी अनुवाद किया। बाल्यावस्था से ही गंगानाथ झा में लेखक बनने की अपूर्व ललक थी। काशी के 'पण्डित' पत्र में जब पूरा नाम के बदले टी एच. (डा. थीबो), ए भी. (सर आर्थर भेनिस) आदि देखते तो इच्छा होती कि यदि मैं वाञ्छित सफलता प्राप्त कर सका तो एक दिन मेरा निबन्ध भी जी एन. के रुप में प्रकाशित होगा। अध्यवसायी गंगानाथ झा ने विश्राम को तिलांजलि देकर गहन अध्ययन आरंभ किया। सर्वप्रथम स्वरचित श्लोकों में से पचास श्रेष्ठ श्लोकों का एक संग्रह 'कतिपय-दिसोद्रम प्ररोहाः' नाम से प्रकाशित हुआ। गुरुजनों ने इस प्रतिभाशाली नक्षत्र को विस्तार का प्रभूत अवसर प्रदान किया। धीरे-धीरे काशी की पाण्डित्य परम्परा में एक आदरणीय नाम आ जुड़ा पं. गंगानाथ झा। शब्द ब्रह्म का साक्षात्कार कर आपने जीवन पर्यन्त भगवती भारती की आराधना करने का उदात्त निर्णय लिया। भारतीय मान्यतानुसार -

यथा सुदीप्तात् पावकाद्विस्फुलिङ्गाः
सहस्रशः प्रभवन्ते सरूपाः।
तथाक्षराद्विविद्याः सौम्यभावाः[१]
प्रजायन्ते तत्र चैवापियान्ति ॥

---

१ मुण्डकोपनिषद् (२-१)

अर्थात् जैसे प्रज्वलित अग्नि से उसकी हजार चिंगारियां उसके समान ही निकलती हैं, उसी प्रकार विविध प्रकार के पदार्थ अक्षर से ही निकलते हैं और उसी में लीन हो जाते हैं।

महाराज दरभंगा की इच्छा थी कि गंगानाथ झा प्रशासनिक सेवा अथवा न्याय सेवा में जाए। किन्तु अध्यापन और अध्ययन के अतिरिक्त गंगाबाबू को कुछ भी प्रिय प्रतीत नहीं होता था। माता रामकाशी देवी और पत्नी इन्दुमती देवी भी अध्यवसायी जीवन को ही श्रेष्ठ मानती थीं। गंगानाथ झा ने भारतीय शिक्षा सेवा में सम्मिलित होने का निर्णय लिया। काशी से दरभंगा राज सेवा में आने पर आपको रुचि के अनुरुप कार्य मिला। विद्याप्रेमी महाराज लक्ष्मीश्वरसिंह ने आपको पुस्तकाध्यक्ष का प्रभार सौंपा। यहाँ अभिलषित पुस्तकें मंगाकर पढ़ने का स्वर्णिम अवसर प्राप्त हुआ। अनेक दुर्लभ पाण्डुलिपियों को देखने का सौभाग्य मिला। मित्र कुमार श्रीनन्दनजी के साथ मिलकर गंगानाथ झा ने विविध शास्त्रों का अध्ययन-अवलोकन किया। दरभंगा राज सेवा के अधीन ही आपने श्लोकवार्तिक और तन्त्रवार्तिक का वैदुष्यपूर्ण अनुवाद किया। दोनों ग्रन्थों का प्रकाशन पं. हरप्रसाद शास्त्री के सहयोग से बंगाल एसियटिक सोसाइटी के द्वारा हुआ। राजसेवा अन्ततः इस पौराणिक मान्यता के अनुकूल ही प्रमाणित हुई -

राजसेवा मनुष्याणामसिधारावलेहनम्।
पञ्चाननपरिष्वङ्गो व्यालीवदन चुम्बनम्॥

विद्वान् मनुष्य के लिए राज सेवा कृपाण की धार चाटने, सिंह का आलिंगन करने और सर्पके मुख को चूमने के समान है।

महामहोपाध्याय चित्रधर मिश्र से मीमांसा का अध्ययन कर गंगानाथ झा पुनः काशी आ गए।

पण्डित आदित्यराम भट्टाचार्य की सेवा मुक्ति के पश्चात् गंगानाथ झा म्योर कालेज में व्याख्याता पद पर नियुक्त हुए। सफलता की सुदीर्घ यात्रा का यह प्रथम आधिकारिक पड़ाव था। शिक्षा विभाग का कोई ऐसा गरिमापूर्ण पद नहीं जो महामहोपाध्याय गंगानाथ झा से गौरवान्वित न हुआ हो। प्रवाचक, प्राध्यापक, प्राचार्य, शिक्षा-सलाहकार, लेजिस्लेटिव काउन्सिल के सदस्य, प्राच्यविद्या सम्मेलनों के प्रमुख, संघ लोक सेवा आयोग के सदस्य तथा अनेक संस्थाओं के सलाहकार, अध्यक्ष के रुप में गंगानाथ झा ने महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह किया। अन्ततः प्रयाग विश्वविद्यालय के कुलपति के रुप में आपने अपूर्व ख्याति प्राप्त की। गंगानाथ झाजी को प्रथम भारतीय कुलपति होने का सम्मान प्राप्त है। विभिन्न विश्वविद्यालयों में विशिष्ट व्याख्यान देकर विश्व में अपनी विद्वत्ता का जयघोष करने वाले सर गंगानाथ झा अपने अन्तिम समय तक अध्ययन-अध्यापन से अनुबद्ध रहे।

सर झा मूलतः एक विशिष्ट मीमांसक थे। भारतीय दर्शनों में मीमांसा दर्शन का अपना पृथक् महत्व है। मीमांसा दर्शन अत्यन्त प्राचीन है। इसके प्रसंग में कहा गया है -

मीमांसाशास्त्रतेजोभिविशेषेणोज्ज्वलीकृते।
वेदार्थज्ञानरत्ने मे तृष्णाऽतीव विजृम्भते॥

धर्म और वेद विषयक जिज्ञासाओं का शमन एक मात्र मीमांसा से ही संभव है -

अथातो धर्मजिज्ञासा सूत्रमाद्यमिदं कृतम्।
धर्माख्यविषयं वक्तुं मीमांसायाः प्रयोजनम्॥

मीमांसा दर्शन का उद्देश्य कर्मकाण्ड के विधानों में दृश्यमान विरोधों का परिहार और वैदिक उक्तियों के अर्थ का निरूपण करना है। यह दर्शन वेद को अपौरुषेय और नित्य मानता है। मीमांसा सूत्र का लक्ष्य वैदिक कर्मकाण्ड के प्रसंग में ग्रन्थों के व्याख्या विषयक नियमों का विन्यास है। मीमांसा दर्शन के आधार मीमांसा सूत्रों की रचना विक्रम से लगभग छः सौ वर्ष पूर्व महर्षि जैमिनि ने की थी। विक्रम के तीन सौ वर्ष उपरान्त शवर स्वामी ने मीमांसा पर एक विस्तृत और प्रामाणिक भाष्य की रचना की। 'शावर भाष्य' के नाम से प्रख्यात इस भाष्य के तीन प्रमुख भाट्ट मत, गुरुमत तथा मुरारिमत कहलाते हैं। श्लोकवार्तिक पूर्व मीमांसा-सूत्र का प्रचलित भाष्य है। सर गंगानाथ झा ने गुरुमत अर्थात् प्रभाकर मत को अध्ययन का लक्ष्य बनाया। 'प्रभाकर स्कूल ऑफ पूर्व मीमांसा' पर ही आपको डी.लिट्. की उपाधि से अलंकृत किया गया। पूर्व मीमांसा तथा उत्तर मीमांसा विषयक प्रायः सभी ग्रन्थों की आपने समीक्षा की और उनका अंगरेजी में अनुवाद किया। वेदान्त दर्शन को ही उत्तर मीमांसा कहकर अभिहित किया गया है। वेदान्त भारतीय अध्यात्म शास्त्र का मुकुटमणि है। मीमांसक आचार्यों से प्राप्त ज्ञान पं. गंगानाथ झा के निकट आकर मौलिक उद्भावनाओं के साथ विकसित हुआ। गुरुजनों की भविष्यवाणी के अनुरूप गंगानाथ झा पूर्व मीमांसा के प्रकाण्ड पण्डित हुए। प्रभाकर स्कूल ऑफ पूर्व मीमांसा, प्रभाकर ए थ्योरी ऑफ एरर, पूर्व मीमांसा इन इट्स सोर्सेज, न्याय फिलासफी ऑफ गौतम, वैशेषिक दर्शन, शांकर वेदान्त, ए नोट आन दि शावर भाष्य जैसी कालजयी कृतियाँ गंगानाथ के वैदुष्य के प्रमाण हैं।

डा. गंगानाथ झा की सारस्वत-साधना के अध्ययन के क्रम में मैंने उनके जन्म से लेकर मृत्यु पर्यन्त की यात्रा का प्रामाणिक तथ्य आकलित करने का विनम्र प्रयास किया है। प्रारंभिक अध्यायों में पारिवारिक पृष्ठभूमि, जन्मभूमि की महत्ता, सूर्योपासना, माता गायत्री और भगवती तारा की उपासना आदि का वर्णन किया गया है। 'गंगानाथ झा : एक व्यक्ति एक परम्परा' के अधीन जन्म से मृत्यु तक की महत्वपूर्ण घटनाओं, उपलब्धियों तथा संघर्षादि का तथ्यपूर्ण आकलन हुआ है। 'प्रेरक-प्रसंग' के क्रम में जीवित परिजनों, शिष्यों, काशी तथा

इलाहाबाद के संस्मरणों तथा समसामयिक ग्रामीणों से ली गई अन्तर्वीक्षा को सम्मिलित किया गया है। व्यक्तिगत साक्षात्कार से अनेक नवीन तथ्यों का उद्घाटन हुआ है। भगवती भारती के वरद् पुत्र सर झा के रचना-संसार का अवलोकन कर मैंने निज सामर्थ्यानुकूल उनका महत्वांकन किया है। प्राप्त अभिलेखों को विवरण सहित प्रस्तुत किया गया है। सर झा ने हिन्दी साहित्य का अपरिमित उपकार किया है। आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी के अनुरोध पर सरस्वती के लिए आपने वैदिक साहित्य पर अनेक वैदुष्यपूर्ण निबन्ध लिखा था। प्रथमतः गंगानाथ झा ने ही हिन्दी और उर्दू के पाठ्यक्रम को पृथक् करने का प्रस्ताव रखा था। हिन्दी पाठ्यक्रम में व्याप्त विसंगतियों को दूर करने का गुरुतर कार्य भी आप ही के द्वारा संपादित हुआ। पं. पुरुषोत्तम दास टंडन से मिलकर गंगानाथ झा जी ने लेजिस्लेटिव काउन्सिल में हिन्दी के अभ्युत्थान के लिए संघर्ष का शंखनाद किया था। पटना विश्वविद्यालय में रामदीन भाषण-माला तथा दरभंगा में महाराज रमेश्वर सिंह भाषणमाला में आपने हिन्दी में व्याख्यान देकर श्रोताओं को मंत्रमुग्ध कर दिया था। न्याय प्रकाश, वैशेषिक दर्पण तथा हिन्दू विधि का मूलाधार आपकी तीन हिन्दी पुस्तकें हैं। हिन्दी की बोली के रुप में अभिहित होनेवाली एक सम्मानित भाषा मैथिली में भी आपकी अनेक रचनाएँ हैं। लोक-संगीत के क्षेत्र में भी गंगानाथ बाबू के महत्वपूर्ण अवदान को विस्मृत नहीं किया जा सकता। काशी तथा प्रयाग के समकालीन हिन्दी सेवी सर झा से प्रेरणा प्राप्त कर उपकृत हुए थे। राष्ट्रकवि रामधारी सिंह दिनकर, डा. बाबूराम सक्सेना, आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी तथा डा. हरिवंशराय बच्चन ने मुक्त कंठ से भारतीय संस्कृति के सम्पोषक सर झा को श्रद्धा सुमन अर्पित किया है। आचार्य द्विवेदी आपको गुरुवत् मानते थे।

थियोसॉफिकल सोसाइटी से जुड़े रहने के कारण गंगानाथ झा को अपने कार्य चयन में बहुत आसानी हुई। एनी वेसेंट और कर्नल ऑलकाट जैसे समर्पित शिक्षाविदों से सम्पर्क का लाभ यहीं प्राप्त हुआ। 'दि फिलासाफिकल डिसीप्लीन' तथा 'योग दर्शन' जैसी कृतियाँ इसी अभिरुचि को प्रतीकित करती हैं। अपनी इस शोध-यात्रा में मैंने जो कुछ पाया अपनी कूप मण्डूकता के अनुरुप सहेजता चला गया। उस कालजयी महापुरुष के प्रसंग में धुंधली स्मृतियों को यदि मैं कुछ कम कर सका होऊँ तो यह उसी दिव्यात्मा के वैदुष्य का प्रताप माना जाएगा। उपलब्ध साक्ष्यों, अभिलेखों तथा व्यक्तिगत साक्षात्कारों के आधार पर मैंने शोध को प्रामाणिक स्वरुप देने का प्रयास किया है। साक्ष्यों तथा चित्रों को मैंने 'चित्र एवं अभिलेख' शीर्षकान्तर्गत संयोजित किया है।

अध्ययन की सुविधा की दृष्टि से शोध प्रबन्ध को जिन उपशीर्षकों में रखा गया है वे हैं -

१. उपक्रम

२. डॉ. गंगानाथ झा : एक व्यक्ति एक परम्परा

३. प्रयाग-प्रवास की प्रासंगिकता

४. प्रेरक-प्रसंग

५. डॉ. झा का रचना संसार

६. हिन्दी-साहित्य को डॉ. झा की देन

७. उपसंहृति

भगवान् भास्कर, माता गायत्री, गुरुजन और उस विद्यासागर की पवित्र आत्मा के साथ मैं स्वर्गीय परिजनों के प्रति भी अ''ना प्रणाम निवेदित करता हूँ।

गुरुदेव डा. रमाकान्त पाठक, निर्देशक डा. श्री नारायण सिंह तथा विश्वविद्यालय हिन्दी विभागाध्यक्ष डा. शैलेन्द्र कुमार अग्रवाल की मुझ पर बड़ी कृपा रही है। करुणामयी माता और आदर्श पिता डा. श्री सदन मिश्र का आशीर्वाद ही मेरा विशिष्ट पाथेय रहा है। अभिन्न मित्र डा. भवेश्वर सिंह तथा अनुज डा. विजय मिश्र के अपरिमित सहयोग को मैं जीवनान्त तक विस्मृत नहीं कर सकूँगा। प्रत्यक्ष तथा परोक्ष रुप से सहयोग करनेवाले परिजनों, मित्रों, शुभेच्छुओं के साथ वे उकठाकाठ आलोचक भी मेरे लिए अभिनन्दनीय हैं जिनकी टिप्पणियों ने मेरा अत्यधिक उपकार किया है।

मैं आभारी हूँ राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान, दिल्ली का जिसके सौजन्य से इस शोध-प्रबन्ध का प्रकाशन संभव हो सका है। डॉ. किशोरनाथ झाजी तथा नाग प्रकाशन परिवार के उपकार को मैं सदैव स्मरण रखूंगा।

अजय मिश्र
सरिसब-पाही, मधुबनी

विषयानुक्रमणिका

I

उपक्रम

"सुखस्य दुःखस्य न कोऽपि दाता
अहं करोमीति वृथाभिमानः ।
परो ददातीति कुबुद्धिरेषा
स्वकर्मसूत्रग्रथितो हि लोकः ॥"

'माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याम्' का उदात्त जयघोष कर सप्तसिंधु से प्राची की ओर चले यायावर ऋषियों ने गंगा और हिमवत् के मध्य के जिस सुरम्य भू-भाग को भारत में अपनी आर्य संस्कृति के विकास का बीज - क्षेत्र बनाया वह उस समय 'विदेह' नाम से प्रसिद्ध हुआ ।

'विदेहानां जनपदो विदेहः' से ज्ञात होता है कि उस समय उन आप्रवासी आर्यों में विदेह वंश के राज राज करते थे । आर्यों के आगमन से पूर्व यह भूमि घोर वनप्रान्त के रुप में था । विदेह माथव ने अपने आचार्य गौतम रहूगण द्वारा सर्वप्रथम अग्नि प्रज्ज्वलित कर इस वन्यभूमि का संस्कार किया तथा अपने राज्य की स्थापना की । राजा के गोत्र - नाम पर जनपद के परम्परानुरुप ही यह भू-भाग विदेह नाम से विख्यात हुआ ।

विष्णुधर्मोत्तर पुराण के अनुसार महाराज निमि ने कुलपुरोहित महर्षि वशिष्ठ को होता रुप में एक विशिष्ट यज्ञ सम्पन्नार्थ अनुरोध किया था । ठीक ऐसे ही यज्ञ की कामना देवराज इन्द्र ने भी की थी । परिणामस्वरुप निमि को पाँच सौ वर्षों तक प्रतीक्षा करने का अनुरोध कर वशिष्ठ इन्द्र के यज्ञ सम्पन्नार्थ स्वर्ग चले गए । राजा निमि समय को सर्वोपरि मानते थे । उन्होंने कपिल, गौतम आदि महर्षियों के सहयोग से यज्ञ आरंभ कर दिया । इन्द्र का यज्ञ समाप्त कर जब वशिष्ठ लौटे तो इतर पुरोधा के द्वारा यज्ञ सम्पन्न होते देख अत्यन्त कुपित हुए । क्रोधित महर्षि ने निमि को विदेह अर्थात् आत्मा का शरीर से पृथक् होने का शाप दे दिया । उस समय राजा निमि शयनागार में थे । जब उन्हें इसकी जानकारी मिली तो उन्होंने भी वशिष्ठ को विदेह होने का शाप दे दिया । वशिष्ठ पीछे मित्र वरुण की कृपा से शरीर धारण में सफल हुए किन्तु यज्ञ पर्यन्त निमि का शरीर निष्प्राण ही पड़ा रहा । महाराज निमि निःसन्तान थे इसलिए अरणि से

उनके शरीर को मथकर एक दिव्य बालक का आविर्भाव हुआ । विदेह पिता के पुत्र होने के कारण आप वैदेह और मन्थन से उत्पन्न होने के कारण मिथि कहलाए । कालान्तर में प्रतापी मिथि ने जिस नूतन नगर का विनिर्माण किया उसका नाम मिथिला पड़ा ।

मिथि की सन्तानों को जनक, विदेह तथा मैथिल नाम से अभिहित किया जाने लगा । ये सभी नृपति ब्रह्मज्ञानी हुए और राज कार्य करते हुए भी जीवनमुक्त रहते थे । मिथिला की श्री-समृद्धि तथा विद्या-वैभव देख सभी को आश्चर्य होता था । जनकों की जीवन मुक्तता का विवरण सुनकर महर्षि व्यासपुत्र शुकदेवजी के मन में शंका का अविर्भाव हुआ । उनकी धारणा थी कि काम, क्रोध, लोभ, मोह और दंड के बिना कोई राजा कैसे हो सकता ?

फलतः इतस्ततः से मुक्त होने के लिए आपने महर्षि से कहा कि -

जीवन्मुक्तो विदेहश्च राज्यं शास्ति मुदान्वितः ।
वन्ध्यापुत्र इवाभाति राजा सौऽ जनकः पितः ॥
द्रष्टुमिच्छाम्यहं भूपं विदेहं नृपसत्तमम् ।
कथं तिष्ठति संसारे पद्मपत्रमिवाम्भसि ॥[१]

अर्थात् हे पिता । राजा जनक जीवनमुक्त हैं, विदेह हैं और तब राजकार्य भी करते हैं । यह उसी तरह अविश्वसनीय है जिस प्रकार वन्ध्या का पुत्र । मेरे मन में उस राज श्रेष्ठ विदेहराज को देखने की अतीव इच्छा हो रही है । इस संसार में पद्म पत्र की भाँति वे कैसे रह रहे होंगे ?

महर्षि व्यास ने अनुभव किया कि इस शंकालु चित्त का निराकरण मिथिला में ही संभव है । महर्षि व्यास से आज्ञा लेकर शुकदेव जी विदा हुए और -

वर्षद्वयेन मेरुं च समुल्लङ्घ्य महामतिः ।
हिमालयं च वर्षेण जगाम मिथिलांप्रति ॥

अर्थात् दो वर्षों में मेरु पर्वत और एक वर्ष में हिमालय पार कर आप मिथिला पहुँचे । राजा जनक ने शुकदेव जी का सादर सत्कार किया किन्तु शंकाजन्य क्रोध में शुकदेव जी ने जनक का यथोचित अभिवादन किए बिना ही कहा -

तव वंशसमुत्थानां विदेहा इति भूपते ।

---

१ देवी भागवत्- १/१६/५०-५२.

कुटिलं नाम जानीहि नान्यथेति कदाचन ॥
विद्याधरो यथा मूर्खो जन्मान्धस्तु दिवाकरः ।
लक्ष्मीधरो दरिद्रश्च नाम तेषां निरर्थकम् ॥
तव वंशोद् भवा ये ये श्रुताः पूर्वे मया नृपाः ।
विदेहा इति विख्याता नामतः कर्मतो न ते ॥[१]

हे राजा ! आपके कुल में जितने नृपति हुए उनके विदेह नाम में कपट ही कपट भरा हुआ है, वे सत्य कदापि नहीं थे। जिस प्रकार मूर्ख का नाम विद्याधर, जन्मान्ध का नाम दिवाकर तथा घोर दरिद्र का नाम लक्ष्मीधर उसी प्रकार आपके पूर्व पुरुषों का नाम भी निरर्थक ही रहा होगा। निश्चय ही वे सभी नाम से विदेह रहे होंगे कर्म से नहीं।'

राजा जनक जो वस्तुतः विदेह थे उन पर इस प्रलाप का कोई प्रभाव नहीं पड़ा। निन्दा-प्रशंसा तथा सुख-दुःख से वे परे थे। राजा को पूर्ववत् सामान्य देख शुकदेवजी सन्न रह गये। महाराज जनक ने धीर-धीरे अभ्रान्त सिद्धान्त के अनुसार शुकदेव की समस्त शंकाओं का निवारण कर दिया। शंका से गंदले हृदय में ज्ञान की निर्मल धारा बहने लगी। व्यास सदृश पिता के कहने पर भी जो गृहस्थाश्रमी न बने वे शुकदेवजी जनकजी से प्रभावित होकर मैथिल सिद्धान्तानुसार गृहस्थाश्रमी बने।

वृहद् विष्णुपुराण में मिथिला नगर निर्माता महाराज मिथि के क्रम में चौवन जनकों (राजाओं) का उल्लेख मिलता है। इसी पुराण में मिथिला की सीमाओं का भी रेखांकन किया गया है -

कौशिकीं तु समारभ्य गण्डकीमधिगम्य वै ।
योजनानि चतुर्विंशद् व्यायामः परिकीर्तितः ॥
गङ्गा-प्रवाहमारभ्य यावद्धैमवत् वनम् ।
विस्तारः षोडश प्रोक्तो देशस्य कुलनन्दन ॥
मिथिला नाम नगरी यात्राऽस्ते कुलनन्दन ।
पञ्चाभिः कारणैः पुण्या विख्याता जगतीतले ॥[२]

मिथिला मध्य प्रचलित लोरिक कथा-गीत में मिथिला की सीमा का उल्लेख करते हुए कहा गया है -

पूरब जे पुरनिया पुजली, पच्छिम रे बिहार

---

१ देवी भागवत्- १/१९/१८-२०
२ बृहद्विष्णुपुराण-मिथिला महात्म्य, श्लोक - १२-१४.

उत्तर जे नेपाल पुजलियै, दछिन गंगाधार
रौता जे तिलकेसर पुजलौं, झारी बैजनाथ
भोरे उठि कऽहाथ उठेलियै, दिनकर दीनानाथ।

इसी प्रकार राजा सलहेस लोक कथा-गीत में भी मिथिला की सीमा को आँका गया है -

कमला मैया, कमला ! पूरब जे पुररिया बन्हियै हम गै,

आदि नाम सुरुज ॥

कमला दछिने हम जे बन्हियै, मैया गंगा हलुमाने।
कमला पछिम जे बन्हियै मैया मीर सुलताने ॥
उत्तर जे बन्हियै मैया, राजा भीमसेने।
कमला गोर लगै तिरहुतनी तोरा, करै छी परनामे ॥

मैथिली साहित्य में भारतेन्दु की भाँति प्रतिष्ठित मैथिली रामायणकार चन्दा झा के शब्दों में -

गंगा बहथि जनिक दच्छिन दिशि, पूर्व कौशिकी धारा।
पश्चिम बहथि गण्डकी उत्तर, हिमवत् वन विस्तारा ॥
कमला त्रियुगा अमृता धेमुड़ा, वागमती कृत सारा।
मध्य बहथि लक्ष्मणा प्रभृति से मिथिला विद्यागारा ॥

मिथिला के वैशिष्ट्य प्रशस्तिमूलक एक प्रचलित श्लोक में कहा गया है -

जाता सा यत्र सीता सरिदमलजला वाग्वती यत्र पुण्या
यत्रास्ते सन्निधाने सुरनगरनदी भैरवो यत्र लिङ्गम्।
मीमांसा-न्याय वेदाध्ययन पटुतरैः पण्डितैर्मण्डिता या
भूदेवो यत्र भूपो यजन-वसुमती सास्ति मे तीरभुक्तिः ॥

ऐसा कोई पुराण नहीं जहाँ मिथिला की और यहाँ के विद्या-वैभव की चर्चा नहीं हुई हो। जनक, याज्ञवल्क्य, कपिल, गौतम आदि ऋषियों की ज्ञान-गरिमा से मण्डित मिथिला एक स्वर्गीय क्षेत्र है। देवीभागवत के अनुसार समृद्धशाली मिथिला की प्रजा सदाचारी, सुखी और सुव्यवस्थित थी -

प्रविष्टो मिथिला मध्ये पश्यन् सर्वर्द्धिमुत्तमाम्।
प्रजाश्च सुखिताः सर्वाः सदाचाराः सुसंस्थिताः ॥[१]

---

१ देवी भागवत- १/१७/१६

स्कन्दपुराण में विद्या वैभव से सम्पन्न मिथिला नगरी का मनोहारी वर्णन किया गया है -

सोऽचिरेणैव कालेन विदेहानाससाद ह।
रक्षितान् धर्मराजेन जनकेन महात्माना ॥
तत्र ग्रामान् बहून् पश्यन् वह्वन्नरसभोजनान्।
पल्लीघोषान् समृद्धांश्च बहुगोकुल-संकुलान् ॥
स्फीताश्च शालियवभिर्हं सरस-सेवितान्।
पद्मीनीभिश्च शतशः श्रीमतीभिरलंकृतान् ॥[१]

सुन्दर ग्राम, धन-धान्य, अन्न, दुग्ध, स्वादिष्ट पक्वान्न, यज्ञ के लिए घी, सुन्दर पशु-पक्षियों तथा कमलयुक्त पुष्करिणियों से मिथिला की शोभा स्वर्ग के समान प्रतीत होती थी।

वैदिक युग से आज तक मिथिला में संस्कृत विद्याध्ययन की गौरवशाली परम्परा रही है। गौतम, याज्ञवल्क्य, मण्डन, वाचस्पति, गङ्गेश, कुमारिल सदृश मनीषी दार्शनिक तथा नीलाम्बर, उदयनाचार्य, श्रीधर ठाकुर, ज्योतिरीश्वर ठाकुर, दामोदर मिश्र, अयाची मिश्र, शंकर मिश्र, महाकवि विद्यापति ठाकुर, पक्षधर मिश्र, जैसे कालजयी साहित्य शिल्पियों ने जिस भूमि को धन्य किया हो उसके सांस्कृतिक अवदान को साधारण लेखनी से मापना सहज नहीं है। यहाँ की विद्वत्ता -

'बालोऽहं जगदानन्द न मे बाला सरस्वती
अपूर्णे पञ्चमे वर्षे वर्णयामि जगत्त्रयम् ॥'

के सर्वथा अनुरुप है।

सांख्य दर्शन के प्रणेता कपिल मुनि, न्यायशास्त्र के अद्वितीय नक्षत्र पक्षधर मिश्र, प्रकाण्ड नैयायिक पं. गङ्गेश उपाध्याय, पूर्व मीमांसा के दिग्विजयी पण्डित मण्डन मिश्र, धर्मशास्त्र में पारंगत रुद्रधर उपाध्याय, पञ्जी प्रबन्ध प्रवर्तक उमापति उपाध्याय, ख्यातिनाम धर्मशास्त्री केशव मिश्र, मीमांसक शालिक नाथ मिश्र, पण्डित अयाची मिश्र, स्वनामधन्य शङ्कर मिश्र, पं. सचल मिश्र, स्वाभिमानी पं. मोहन मिश्र, मुरलीधर झा, महावैयाकरण परमेश्वर झा, परमादरणीय पं. जयदेव मिश्र जैसे असंख्य मीमांसकों, आचार्यों, वैयाकरणों, वेदाध्यायियों, नैयायिकों तथा धर्मशास्त्रियों की दिव्य शृंखला, मिथिला की सांस्कृतिक निधि है। व्याकरण, वेदान्त, मीमांसा, न्याय, तन्त्र, साहित्य, संगीत आदि विषयक पाण्डित्यपूर्ण

---

१ ब्रह्म सहिता- ३०/३५/३७

ग्रन्थों से परिपूर्ण है मिथिला का विद्यागार। इस अक्षय ज्ञान कोश से सदैव ज्ञान-विज्ञान की किरणें फूटती रहती हैं।

पलिवार महिषी मूल के पण्डितों में पाण्डित्य की पौराणिक गरिमा के ही दर्शन होते हैं। अंगरेजी शिक्षा के माध्यम से उच्च शिक्षा प्राप्त कर संस्कृत विद्या में प्रगाढ़ पाण्डित्य का परिचय देने वाले विद्वानों में अग्रगण्य हैं महामहोपाध्याय डॉ. सर गंगानाथ झा। शुरु से अन्त तक प्रत्येक परीक्षा में प्रथम आने वाले इस भारती पुत्र ने संस्कृत साहित्य को अपूर्व गरिमा प्रदान की। संस्कृत के विविध विषयों, शास्त्रों तथा मूल तत्वों का अध्ययन आपने पण्डित जयदेव मिश्र और पण्डित शिवकुमार मिश्र जैसे अखिल भारतीय स्तर के विद्वानों के निकट रहकर अत्यन्त मनोयोगपूर्वक किया। गुरुओं ने उपयुक्त पात्र देखकर अपनी-अपनी सम्पूर्ण निधि समर्पित कर अपूर्व सुख का अनुभव किया। पं. धरानाथ झा के तृतीय पुत्र गंगानाथ झा ने मिथिला की गौरव-गाथा में अभूतपूर्व विस्तार किया। संस्कृत भाषा की पुनर्प्रतिष्ठा तथा संस्कृत साहित्य को व्यापक क्षेत्र प्रदान करने में आपकी भूमिका को विस्मृत नहीं किया जा सकता। संस्कृत, हिन्दी, अंग्रेजी, मैथिली आदि सभी भाषाओं में अनेक पाण्डित्यपूर्ण तथा आधिकारिक ग्रन्थों की रचना कर सर झा ने देवभाषा, राष्ट्रभाषा और मातृभाषा के ऋण से अपने को मुक्त किया। माता रामकाशी के आशीर्वचन- 'विद्वान् भव' का सर झा ने अक्षरशः अनुपालन कर उसे सार्थकता प्रदान की। सर झा का गाँव मिथिला का गौरव है। मिथिला की पौराणिक सांस्कृतिक निधि और वैदुष्य के दर्शन के लिए आज भी सरिसब एक आर्दश स्थल है। सकरी-झंझारपुर सड़क के मध्य में अवस्थित यह विद्या-नगरी आज भी अपनी परम्परा को बनाए हुए है। सरिसब-पाही की विस्तृत चर्चा पुराणादि ग्रन्थों में हुई हैं। सरस्वती की इस उपासना भूमि में अध्ययन को यजन का सम्मान प्राप्त है। अध्यवसायियों की सुदीर्घ परम्परा भी इस कथन को प्रामाणिक और परिपुष्ट करती है। कविशेखर बदरीनाथ झा जी इस ग्राम-तीर्थ की महिमा का बखान करते हुए लिखते हैं-

मिथिला महिमण्डल मण्डन ई सारस्वत आराम।
सिद्धेश्वरी सहित सिद्धेश्वर थापल जत बलराम॥
जतए भवानी अयाचीक तप पाओल भल परिणाम।
वैद्यनाथ अवतरल तनय भए अपनहिं शंकर नाम॥
महादेव ढक्का कवि गणपति भानुदत्त अभिराम।
परशुराम गङ्गानन्दक छल जे अभिजन आराम॥
हरिहर वेणीदत्त सचल मोहन कृति परम ललाम।
कमलनयन रतिपतिक मैथिली गीत जतय अनुपाम॥
गङ्गानाथ अमरनाथक जत शोभित यश हिमधाम।
मार्कण्डेय बालकृष्णादिक विद्या वैभव धाम॥

कृपाकटाक्ष लक्ष कामेश्वर नृपतिक आठो याम।
गाबथि बदरीनाथ मुदित मन कविशेखर उपनाम॥[१]

सरिसब पाही को मिथिला का तीर्थ कहा गया है। बिना इस गाँव तक आये मिथिला पुरी की परिक्रमा पूर्ण नहीं होती। विदेहराज जनक तथा याज्ञवल्क्य ने जिस गाँव की प्रशंसा की हो, स्वयं भगवान बलराम ने जहाँ देवी सिद्धेश्वरी और सिद्धेश्वर शंकर की स्थापना की हो, उस सरिसब की प्रदक्षिणा किये बिना भला कौन लौटना चाहेगा। मिथिला की ख्याति का प्रबल आधार है सरिसब पाही। महामहोपाध्यायों की यह भूमि सरस्वती को अत्यन्त प्रिय है। जार्ज ग्रियर्सन महोदय ने अनुसंधान के क्रम में इस ग्राम का विशेष अध्ययन किया था। अल्पायु के बालक-बालिकाओं का सरल संस्कृत वार्त्तालाप सुनकर उन्हें अपूर्व विस्मय हुआ था। साहित्य अकादमी से पुरस्कृत स्व. ब्रजकिशोर वर्मा 'मणिपद्म' ने भाव विह्वल शब्दों में कहा था 'कमलाक कातक सरिसब गाम, गाम, नै छियै। एकरा हम धाम कहब। हँ ककरो चलि कऽ चारुधामक धर्म लाभक ऐषणा हो तँ सरिसब आउ आ देखू एतुका माटिक सुवास, एतुका पानिक प्रभाव आ सिद्धेश्वरीक सिद्ध पीठक दर्शन कऽ निरखू विशाल वैदुष्यक परम्परा।' डॉ. गंगानाथ झा जी के प्रिय शिष्य एवं सहयोगी स्व. पं. रमानाथ झा जी ने इस गाँव के इतिहास को सहेजने का स्वर्णिम प्रयास किया है।

कलिकाल की महिमा के प्रसंग में आर्ष वाक्य है -

कलौ स्थानानि पूज्यन्ते

कलिकाल में व्यक्ति गरिमा से अधिक स्थान की गरिमा की व्याप्ति सर्वविदित है। देवस्थानों के प्रति लोगों का असीम अनुराग और ग्राम-तीर्थों की पूजा इसी तथ्य को परिपुष्ट करते हैं। मिथिला में ऐसे तीर्थों और पूजनीय स्थानों का अभाव नहीं। ग्राम-रत्नों की अनुपम मणि-मेखला का अन्यतम रत्न है सरिसब-पाही। अयाची-शंकर की इसी साधना-भूमि ने गंगानाथ झा जैसे व्यक्तित्व को अपनी ऊर्जा प्रदान की। इस गाँव का इतिहास पुराणकाल से ही उपलब्ध है। मिथिला के इतिहास के प्रारंभिक अध्याय से यह अनुलगित है। पौराणिक इति-वृत्तों में भी इस गाँव की गौरव गाथाओं का सन्निवेश हुआ है।

'सरिसब का इतिहास मिथिला के इतिहास से इस तरह संश्लिष्ट है कि एक का गौरव दूसरे को गौरवान्वित कर जाता।'[२]

---

१ सरिसबक महिमा, स्मारिका (पद्य-भाग) कविशेखर बदरीनाथ झा

२ पं. रमानाथ झा

इसे हम मिथिला के उत्कर्ष का प्रतीक कहें तो अत्युक्ति न होगी। सरिसब का गौरवमय इतिहास मिथिला के गौरवशाली अतीत का जीवन्त निदर्शन है। मिथिला के मध्य में अवस्थित सरिसब एक विशाल ग्राम है। इसके उत्तर में भौर ग्राम तथा रैयाम, पूर्व में लोहना तथा खररख, दक्षिण में गंगौली तथा सखवाड़ और पश्चिम में पण्डौल क्षेत्र हैं। सरिसब इन सबों से प्राचीन और प्रसिद्ध है। अत्यधिक ख्याति के कारण पार्श्ववर्त्ती गाँव के लोग अपना परिचय सरिसब-पाही के अधिवासी के रुप में दिया करते हैं। सुदूर प्रान्त के वासी अभिलेख-संस्कार के दिन अपने पुत्र-पुत्रियों के उत्तम संस्कार के निमित्त यहाँ की मिट्टी लेने आते हैं। अपने सात खण्डों के साथ यह गाँव मिथिला के मध्य में अवस्थित है तथा अभी भी भगवती भारती की अभ्यर्थना में लगा हुआ है। 'वाणी और वीणा का दिव्य सम्मोहन लोगों को अनायास ही यहाँ खींच लाता है।'[१]

इस प्रसंग में एक दिव्य घटना का उल्लेख मिलता है। डॉ. सर झा अपने पुत्रों के साथ गाँव पधारे थे। अमरनाथ बाबू के साथ उनके कुछ मित्र भी आये थे। अपने आचार्य मित्र और गुरुवर गंगानाथ झा जी की जन्मभूमि का आकर्षण उन्हें खींच लाया था। इन्हीं मित्रों में से एक थे गन्धर्व से दिखने वाले और कर्णाट संगीत के आचार्य।अपने मित्र से वे सादर बोले -

'आदरणीय मित्र, मेरे मन में मैथिली भाषा और संगीत के प्रति अनन्य श्रद्धा भाव है। आज मिथिला के केन्द्र में आकर उसे निकट से जानने का लोभ संवरण नहीं कर पा रहा हूँ।'

आसनस्थ सर झा ने पुत्र के मित्र की बातें सुनी, पुत्र की आँखें देखी और क्षण मात्र के लिए सोचकर व्यवस्था का आदेश दिया। कुछ घड़ी बाद चिक के भीतर से मैथिल ललनाओं के समवेत स्वर में कोमल रागों में निबद्ध स्वर लहरियाँ फूट निकली -

कनक भूधर शिखर वासिनि
चन्द्रिका चय चारु हासिनि
दसन कोटि विकास वंकिम
तुलित चन्द्रकले ॥
जय जयति जय अम्बे ॥

---

१ हिन्दी पदावली-साहित्य पर मैथिल लोक-संगीत के प्रभाव',डॉ. अजय मिश्र, चतुर्थ-अध्याय.

अतिथि महोदय के लिए यह सर्वथा नूतन अनुभव था। समवेत स्वर में आरोहावरोह का नियमित निर्वाह, पकड़ और राग का अकृत्रिम स्वरूप। आश्चर्य, महान् आश्चर्य। और इसके बाद प्रारम्भ हुआ गीत गोविन्दम् का सुप्रचलित पद। बसन्त राग में निबद्ध अष्टपदी का गायन मुग्ध भाव से सुनते रहे विद्वान् अतिथि -

ललित लवंग लता परिशीलन, कोमल मलय समीरे।
मधुकर निकर करम्बित कोकिल, कूजित कुंज कुटीरे॥

फटे नेत्रों और प्रश्निल मुखाकृति से गवेषक गायक ने सर झा से पूछा- 'बाबा ! मैथिल लोक-संगीत क्या शास्त्रीय संगीत पर ही आधारित है ? इतने सारे लोग कैसे शास्त्रीय संगीत का ज्ञान प्राप्त करते हैं ? धीर गंभीर स्वर में डॉ. झा का उत्तर था- बन्धु ! यह संगीत और शास्त्र हमारे रक्त में मिला हुआ है। हमारी परम्पराएँ इन्हें हम तक पहुँचाती रही हैं। जिसे आप शास्त्रीय कहकर मर्यादा देते हो वह मिथिला में लोक-कण्ठों तक पहुँचकर पवित्र मन्दाकिनी सी बहती रही है। मैथिल लोक-संगीत का शास्त्रीय पक्ष ही इसकी लोकप्रियता और अमरता का प्रमुख कारण है। गायनाचार्यों की सुदीर्घ परम्परा के बीच मार्ग तथा देशी दोनों ही संगीत पद्धतियाँ यहाँ प्रचलित रही हैं।'

पण्डित अयाची, शंकर और सचल मिश्र की जन्म भूमि को नमन कर मित्र ने प्रस्थान किया। परिसर से संचित लोक गीतों ने उनके गंभीर संगीत ज्ञान को आत्मसात कर लिया था। इस तपोभूमि को प्रणाम कर वे गा उठे-

एहि वाटे गेलथिन सीता राम हम मिथिले में रहबै॥[१]

मैथिली भाषा में सरिसब एक तेलहन विशेष का नाम है जिसे संस्कृत में 'सर्षप' कहते हैं। इसीका पर्यायवाची शब्द है सिद्धार्थ। इस भू-भाग में सरिसब की उपज अत्यधिक होती थी। सरिसब के पीले फूलों से लदा रहता था, यह प्रान्तर। इसी कारण परिसर के लोग इस क्षेत्र को 'सिद्धार्थ क्षेत्र' (मैथिली - 'सरिसबक खेत') कहने लगे। स्कन्दपुराण के नागर खण्ड में कपिल मुनि के आश्रम से दो योजन पूर्व के क्षेत्र को सिद्धार्थ क्षेत्र कहा गया है। यह वर्णन ब्रह्मावर्त्त के अन्तर्गत गोकुल परिसर के प्रसङ्ग में है किन्तु महामुनि कपिल का आश्रम कपिलेश्वर स्थान में भी था जो यहाँ से दो योजन पश्चिम में अवस्थित है।

---

१ 'हिन्दी पदावली-साहित्य पर मैथिल लोक संगीत के प्रभाव'- डॉ. अजय मिश्र, पृ.२.

सरिसब की ग्राम देवी हैं माता सिद्धेश्वरी। अत्यन्त प्राचीनकाल से यह मूर्ति गाँव के पश्चिमी भाग में प्रतिष्ठित है। तेरहवीं शक शताब्दी के उत्तरार्द्ध में सिद्धेश्वरी की यह मूर्ति एक वट वृक्ष के नीचे प्रतिष्ठित थी। ऐसा महामहोपाध्याय पं. भवनाथ मिश्र विरचित एक श्लोक से ज्ञात होता है-

दुष्ट प्राणहरी गिरीन्द्रतनया नागेन्द्रहाराञ्चिता
भक्तिप्रह्वसुपर्वनायक शिरोरत्नाञ्चिताङ्घ्रिद्वया।
भक्तानुग्रहहेतवे वटतटे स्थानं विधाय स्थिता
भूयाद् भव्यकरी पराभवहरी सिद्धेश्वरी माद्दशाम्॥

कलिकाल से पहले ही इस मूर्ति की स्थापना भगवान कृष्ण के अग्रज श्री बलभद्र ने की थी। आपने सुदीर्घकाल तक मिथिला-प्रवास किया था। वराहपुराण के एक सौ साठवें अध्याय के अनुसार बलभद्र की उपास्या देवी थी माता सिद्धेश्वरी।[१] बलभद्र के मिथिला-वास की कथा पुराण प्रसिद्ध तथा अत्यन्त रोचक है। विष्णुपुराण तथा हरिवंश में स्यमन्तक मणि उपाख्यान के एक प्रसङ्ग में इस कथा का विस्तृत वर्णन किया गया है। अपने भाई श्री कृष्ण से रूठकर बलराम मिथिला आ गए थे। राजा जनक ने उनका पूर्ण सत्कार किया और तीन वर्षों तक वे मिथिला के विभिन्न क्षेत्रों में खोये से रहे। यहीं आकर दुर्योधन ने बलभद्र से गदा की शिक्षा प्राप्त की थी। विख्यात है कि सिद्धार्थ-क्षेत्र में ही बलभद्र का प्रसिद्ध अखाड़ा भी था।

मिथिला-प्रवास में महाभारत युद्ध से पूर्व ही बलभद्र ने माता सिद्धेश्वरी तथा सरिसब की पश्चिमी सीमा के निकट सिद्धेश्वरनाथ महादेव की स्थापना की। कुछ शंकालु प्रवृत्ति के भक्तों ने एक बार सिद्धेश्वरनाथ महादेव के लिंग को मापने का प्रयास किया था। किन्तु ज्यों-ज्यों उत्खनन कार्य बढ़ता गया शिवलिंग की मुटाई भी बढ़ती गई। भयभीत होकर लोगों ने सादर प्रणाम कर क्षमायाचना कर सतह को पूर्ववत् कर दिया। वृहद् विष्णुपुराण में बलभद्र द्वारा स्थापित माता सिद्धेश्वरी का मनोहर वर्णन मिलता है।

प्राचीनकाल में सरिसब एक विशाल नगर के भाग विशेष के रुप में प्रसिद्ध था। इसका नाम अमरावती था। उत्तर में भगवतीपुर से लेकर दक्षिण में वाजितपुर तक इसका क्षेत्र फैलाव लिए हुए था। मधुबनी से ठीक पूर्व कोइलख गाँव के निकट भगवतीपुर में प्रसिद्ध भुवनेश्वरनाथ महादेव का शिवलिंग है। यह स्थान मिथिला के प्राचीन सिद्ध पीठों में से एक हैं।

१　वराहपुराण, अध्याय- ७०, श्लोक संख्या- ४४-४५.

वाजितपुर बहेड़ा के निकट है और मिथिला के इतिहास में इस प्रान्त का आदरणीय स्थान है। लक्ष्मणा नदी के दोनों तीरों पर एक भव्य नगर का होना अनेक दन्तकथाओं से भी प्रमाणित होता है। अभी भी यहाँ ऊँचें टीलों से उत्खनन के क्रम में प्राचीन स्वर्ण-मुद्राएँ, अंगूठी, पूजन सामग्री, गृहस्थाश्रम के लिए उपयोगी वस्तुएँ आदि की प्राप्ति इस बात का द्योतक है कि प्राचीनकाल में यहाँ सघन वस्ती अवश्य रही होंगी। इसी अमरावती के मध्य भाग में सरिसब तथा पश्चिम में प्रसिद्ध जमसम गाँव था। महामहोपाध्याय पक्षधर मिश्र ने जमसम में ही विष्णुपुराण का लेखन किया था। यह ग्रन्थ सम्प्रति पटना रिसर्च सोसाइटी पुस्तकालय में सुरक्षित है । आर्या सप्तशती की भूमिका में डा. सर गंगानाथ झा जी ने अमरावती का सादर उल्लेख किया है-

Bhawani nath alias Sachal Mishra flourished during the eighteenth century of christian era. He was an inhabitant of our village Sarso-Pahitol, which has been the birth-place of a long series of Pandits, among whom may be mentioned Paksadhara (Jayadeva) Mishra, the author of the 'ALOKA' the famous Mimansak Bhavanath Mishra (better known as Ayachi Dube Mishra) and his more renowned son Shankar Mishra. This village falls within the site assigned to the ancient city of Amaravati in Mithila.[1]

सुदूर प्रान्तों तक अमरावती नगरी की ख्याति फैली हुई थी। अनुमानानुसार हर्षवर्धन के साम्राज्य का पतन होने पर महाराज अरुणाश्व के विरुद्ध तिब्बती आक्रमण के समय यहाँ भयंकर नरसंहार हुआ था।[२]

अमरावती की सम्पूर्ण निधियों को आक्रमणकारी लूट ले गए किन्तु यहाँ की मिट्टी में व्याप्त विद्या-वैभव को वे नहीं ले जा सके। पुराण-कथा सी लगनेवाली ये बातें प्रमाणाश्रित हैं। मिथिला में कर्णाटवंशीय क्षत्रियों के अन्तिम अधिपति राजा हरिसिंहं देव ने पंजीप्रथा का व्यवस्थित स्वरूप निर्धारित किया था। पंजी व्यवस्था के अनुसार ग्यारहवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में सामवेद के कौथुम शाखा के शाण्डिल्य गौत्रीय एक महापुरुष सरिसब में रहते थे। उनका नाम महामहोपाध्याय रत्नपाणि था। सरिसब के इतिहास के साथ पं. भवनाथ मिश्र का नाम घुल-मिल गया है। आप अयाची मिश्र के नाम से प्रसिद्ध हैं। सवा

---

१ The Arya Saptasati of Govardhanacharya, P.11.

२ हिस्ट्री ऑफ मिथिलाः उपेन्द्र ठाकुर, पृ.१९६-२००

कट्ठा भूमि से ही जीवन यापन करने वाले इस महापण्डित ने कभी किसी से याचना नहीं की। इसी कारण अयाची नाम से प्रसिद्ध हुए। इनके पुत्र शंकर मिश्र मिथिला की पाण्डित्य परम्परा के आदर्श पुरुष हैं। 'तर्काभ्यास परिश्रान्त श्रान्ति विश्रान्ति' निमित्त जिन श्लोकों की वे रचना करते थे वे 'रसार्णव' के नाम से प्रसिद्ध हैं। डॉ. अमरनाथ झाजी द्वारा संपादित इस ग्रन्थ का प्रकाशन भी हो चुका है। पं. अयाची मिश्र तथा शंकर मिश्र ने विद्या-विनोद को व्यसन का स्वरूप प्रदान किया। शंकर मिश्र अपने वैशेषिकसूत्रोपस्कार में वैशेषिक सूत्रकार कणाद तथा अपने पिता के अतिरिक्त किसी को स्मरण नहीं करते। दोनों के पश्चात् तीसरे की क्या अपेक्षा ? वास्तव में ये दोनों ही प्रणम्य हैं-

याभ्यां वैशेषिके तन्त्रे सम्यग् व्युत्पादितोऽस्म्यहम्।
कणाद-भवनाथाभ्यां ताभ्यां मम नमः सदा।

इसी क्रम में आप अपनी शिष्य परम्परा को भी संकेतित करते हैं। वास्तव में यह सरिसब की महिमा को ही द्योतित करता है-

श्लाघास्पदं यद्यपि नेतरेषामियं कृतिः स्यादुपहायोऽया।
तथापि शिष्यैर्गुरुगौरवेण परःसहस्त्रैः समुपासनीया॥

किंवदन्ती है कि आप स्वयं शंकर के अवतार थे। शंकर मिश्र का विशाल परिवार सम्पूर्ण देश में प्रसरित होकर आज भी अध्यवसायी जीवन व्यतीत कर रहा है। पटना विश्वविद्यालय के सेवामुक्त आचार्य डॉ. आनन्द मिश्र उसी वंश के रत्न हैं। शंकर मिश्र की पाठशाला को 'चौपाड़ि' नाम से प्रसिद्धि प्राप्त है। बंगाल के छात्र पण्डित वासुदेव जिन्होंने उद्योतकर के न्यायवार्तिक के वाचस्पति मिश्र कृत तात्पर्य टीका का लेखन किया था ने ग्रन्थान्त में लिखा है-

'शर्षप ग्रामे शङ्कर मिश्रस्य चतुःपाठ्यां '।

पं. गङ्गानन्द कवीन्द्र अपने भृङ्गदूत में सरिसब की महिमा का आकलन करते हुए कहते हैं-

मीमांसायाः श्रवण सरसा शेमुषी तावकी चेत्
चित्ते चेत्ते किमपि कविताकर्णने कौतुकं वा।
तत्र भ्राम्यन् बुधजन-चतुःपाठिकाभिस्तदा त्वं
शोभाशालि प्रिय-सरिसब-ग्राम-रत्नं परीयाः॥
राजत्सूक्ष्मोत्तरपरिकरा सत्स्वभावोक्तिभव्या-
नेकच्छेकाश्रयणललिता शोभितैकावलीभिः।
भ्रातर्यत्रामलमतिमतः कोविदस्याङ्गरङ्गे।
भावासङ्गेरितबहुरसा भारती नृत्यतीव॥

महामहोपाध्यायों की एक सुदीर्घ परम्परा सरिसब को गौरवान्वित करती रही है। महामहोपाध्याय सचल मिश्र, महामहोपाध्याय मोहन मिश्र जैसे विद्वानों ने सम्पूर्ण भारत का परिभ्रमण कर मैथिल पाण्डित्य और निज वैदुष्य का ध्वजारोहण किया।

चौदहवीं शताब्दी का उत्कर्ष काल पुनः उन्नीसवीं शताब्दी में अपना अभिनव स्वरूप लेकर उपस्थित हुआ। मध्य की कथा उत्थान-पतन से युक्त है किन्तु १८७१ ई. में पं. धरानाथ झा के यहाँ तृतीय पुत्र के रूप में एक दिव्य नक्षत्र का जन्म हुआ। आपके वृद्धप्रपितामह के सरिसब आने की कथा अत्यन्त रोचक और महत्वपूर्ण हैं।

मैथिल ब्राह्मणों की अतिविशिष्ट शाखा को श्रोत्रिय कहकर अभिहित किया गया है। मिथिला के स्वनामधन्य नृपति राजा हरसिंह देव ने मैथिल ब्राह्मणों को श्रेणीवद्ध करने का सत्प्रयास किया। इसके लिए आपने सम्पूर्ण ब्राह्मण समाज को एक विशिष्ट भोज के लिए आमंत्रित किया। राज्यादेश में कहा गया कि- 'सभी अपना-अपना नित्य कृत्य समाप्त कर भोजन के लिए पधारें।' सर्वप्रथम आनेवाले का नाम सबसे नीचे अंकित किया गया। बीच में यही क्रम चलता रहा। अन्ततः सायंकाल यह देखा गया कि तेरह व्यक्ति अभी और आनेवाले हैं। अब आनेवाले ब्राह्मणों को एक विशिष्ट क्रम दिया गया। ये तेरह विलक्षण कर्मकाण्डी ब्राह्मण ही श्रोत्रिय समाज के आदि पुरुष हैं। आप सभी 'बीजी पुरुष' के रूप में विख्यात हैं। राजा हरसिंहदेव ने ही मैथिल ब्राह्मणों की पूर्ण नामावली को ग्रन्थाकार दिया जो पंजी-प्रबन्ध के रूप में विख्यात हुआ। मूल ब्राह्मणों का कुल उनके ग्राम नाम से प्रसिद्ध हुआ। उदाहरणार्थ दरभंगा से बारह मील पश्चिमोत्तर दिशा में पाली नामक ग्राम में रहने वालों को 'पलिवाड़' नाम से जाना गया। इसी कुल की शाखा ने कालान्तर में महिसी ग्राम में अधिवास किया।

परीक्षोत्तीर्ण तेरह ब्राह्मणों को महाराज ने 'अवदात' की उपाधि प्रदान की। अवदात अर्थात् 'पूर्ण शुद्ध'। आप सभी वेदाध्यायी थे और वेदोक्त पद्धति से जीवन-यापन करते थे। इन महान् वेदज्ञों को ही श्रोत्रिय कहा गया। आपस्तम्ब के अनुसार-

वेदस्यैकैकां शाखामधीत्य श्रोत्रियो भवति।

श्रोत्रिय उपाधि इस बात का प्रमाण है कि इसके धारक कम से कम वेद की एक शाखा में निष्णात हैं। वेदाध्यायियों के परिजनों को भी श्रोत्रिय कहने की परम्परा चल निकली।

इसी पलिवार महिसी मूल के कुछ प्रतिभाशाली पुरुष सरिसब ग्राम में आकर बस गये। सरिसब की महिमा चतुर्दिक प्रसरित थी। पं. लक्ष्मीदेव झा ने

सरिसब को अपना घर बना लिया। आप भगवती उग्रतारा के अनन्य उपासक थे-

यथा कामामृतैः काली प्रसन्ना क्षणमात्रतः।
तथा तेन सदा तारा प्रसन्ना क्षणमागतः॥
काली तारा च श्रीविद्या छिन्नायामपि वै पठेत्।
महोग्रतारा सासण्य नाम साहस्त्रकस्य च॥

मूल सरिसब से सन्निकट पाहीटोल में आपने अपना निवास बनाया। उस समय मुसलमानों का बड़ा आतंक था। सरिसब का महत्वपूर्ण भाग मुसलमानों द्वारा आक्रान्त हो गया था।

सरिसब के पूर्वी भाग में नवीन वस्ती का आयोजन हुआ जो आंज भी 'पाहीटोल' के नाम से विख्यात है। पं. लक्ष्मीदेव झा के चार पुत्रों में महावैयाकरण पं. अमृतनाथ झा तथा पं. शिवनाथ झा ने अत्यधिक ख्याति अर्जित की। महावैयाकरण अमृतनाथ झा के पौत्र हुए पं. धरानाथ झा। पं. धरानाथ झा गायत्री के अनन्य उपसक थे। नैष्ठिक सद्ब्राह्मणों में अग्रगण्य धरानाथ झा जी अर्द्धाङ्ग जल में रहकर सहस्त्र गायत्री का जाप करते थे। भयंकर शीतकाल में भी यह क्रम कभी भंग न होता था। आपका विवाह महाराज छत्रसिंह की पौत्री महाराजकुमार वासुदेव सिंह की कन्या रामकाशी देवी से हुआ।

काशी के रामघाट पर जन्म होने के कारण ही वासुदेव सिंह ने कन्या का नाम रामकाशी रख दिया था। पं. धरानाथ झा जी रामकाशी देवी को पाकर धन्य हुए। गृहलक्ष्मी के आगमन से अनायास ही लक्ष्मी की कृपा हुई और आपने मूल वास से दक्षिण हटकर विशाल भवन का निर्माण कराया। हवेली के मुख्य द्वार पर उग्रतारा की मूर्ति आज भी अवस्थित है। पलिवार महिसी मूल का यह परिवार मिथिला में पुनर्जागरण का प्रतीक माना जाता रहा है। कुलीन घरों में अंग्रेजी शिक्षा का प्रवेश उस समय तक नहीं हुआ था। पं. धरानाथ झा के पुत्र स्वनामधन्य पं. विन्ध्यनाथ बाबू का अंगरेजी भाषा पर पूर्णाधिकार था। आप महाराज लक्ष्मीश्वर सिंह के परम विश्वासपात्र थे और उनके राजनीतिक प्रतिनिधि के रूप में विख्यात थे। आपने यजुर्वेद की संहिताओं तथा नैषधीय-चरितं महाकाव्य का अंग्रेजी में विलक्षण अनुवाद किया। दूसरे पुत्र पं. गणनाथ झा तन्त्र और ज्योतिष विद्या में निष्णात थे। माता उग्रतारा की इन पर विशेष कृपा हुई और आप ज्ञान के इसी आलोक पथ पर अभिगमित्त हुए-

ओं त्रीं त्रीं त्रीं तारिणी तारा तमिस्रा च तपस्विनी।
तरुप्रिया त्रस्तरूपा तकार गात्रवेष्टिता॥
तकारवर्णसर्वाङ्गी तकाररूप धारिणी।
तकारहस्तभूषाढ्या तकार भृकुटावलिः॥

तकार हृदयातन्त्री तन्त्रशास्त्रपरायणा।
तन्त्रमार्गरता तन्द्रा तन्त्रशास्त्रफलप्रदा ॥

तृतीयपुत्र सर गंगानाथ झा हुए जिन्होंने कुल की ख्याति को विश्वाकार प्रदान किया। चौथे और पाँचवें पुत्र क्रमशः पं. विजयनाथ झा तथा पं. वैद्यनाथ झा राज दरभंगा की सेवा करते रहे। पं. वैद्यनाथ बाबू महाराज रामेश्वर सिंह बहादुर के प्रिय पात्र तथा मैनेजर थे और अपनी विद्वत्ता के बल पर आपने अत्यधिक यशोपार्जन किया।

पं. धरानाथ झा की दैनन्दिनी का बहुलांश पूजा-अर्चना में ही व्यतीत होता था। व्यायाम और अध्ययन में आपकी अत्यधिक रुचि थी। आप एक उत्तम पहलवान के रुप में भी विख्यात थे। उनका शरीर सुडौल और हृष्टपुष्ट था। इस परिवार में सम्पत्ति सुख का आगमन धरानाथ बाबू के विवाहोपरान्त ही हुआ। सरस्वती की कृपा पहले से थी और रामकाशी देवी के रुप में मानो स्वयं अन्नपूर्णा ने पदार्पण किया। तब से इस परिवार को कभी आर्थिक अभाव बोध नहीं हुआ। पाँच पुत्रों और तीन पुत्रियों की माता ने कौलिक संस्कार के साथ बच्चों को स्वाभिमान और आत्मानुशासन का मूल मन्त्र प्रदान किया। अपने पुत्रों में रामकाशी देवी गंगानाथ को सर्वाधिक चाहती थी। पारिवारिक निर्णय लेना हो तो आप स्वामी के साथ गंभीर विमर्श करती थी। सर झा ने इस आदर्श को अपने व्यक्तिगत जीवन का आधार बनाया। वास्तव में गृहिणी के प्रसन्न रहने से ही कुटुम्ब को फूलने-फलने का यथेष्ट अवसर मिलता है।

पं. धरानाथ झा के परिवार में दो पुत्रों के बाद एक बालिका की प्रतीक्षा की जा रही थी। पुत्र होने से आंशिक निराशा हुई किन्तु गंगानाथ की मेधा ने शीघ्र ही पूरे परिवार को अभिभूत कर दिया। इस नये शंकर को पाकर सरिसब का ग्राम-तीर्थ धन्य हो गया।

आदित्य, गायत्री और डॉ. झा

ॐ भूर्भुवः स्वः तत् सवितुर्वरेण्यं, भर्गो देवस्य धीमहि।
धियो यो नः प्रचोदयात् ॥

सांस्कृतिक परम्परा की रक्षा के लिए संकल्प शक्ति की दृढ़ता अनिवार्य है। दिव्य दृढ़ता की प्राप्ति तथा मेधा की उदात्तता के लिए मिथिला में गायत्री की अभ्यर्थना की सुदीर्घ परम्परा रही है। सर झा भगवान आदित्य के अनन्य उपासक थे। कौलिक गायत्री जाप परम्परा का आपने जीवनान्त तक सफल निर्वाह किया। सूर्योपासना की महत्ता से अवगत सर झा ने अपने अनेक निबन्धों में इसका विस्तृत वर्णन किया है। अपने अध्यवसायी जीवन की समिधा आपने भगवान सूर्य से ही पायी। ब्राह्म मुहूर्त में उठनेवाले डॉ. झा ने जीवन पर्यन्त अपने

दो व्रतों को मलिन न होने दिया। उनका प्रथम व्रत था सहस्र गायत्री जाप और द्वितीय व्रत था नित्य प्रति अस्सी पृष्ठ लेखन कार्य। इनमें मौलिक उद्‌भावनाओं के साथ महत्वपूर्ण पुस्तकों के अनुवाद भी होते थे। सरिसब-पाही में अभी भी सहस्र गायत्री का जाप करनेवाले महापुरुषों का अभाव नहीं। सविता की आराधना के साथ ही यहाँ के मनीषी दैनिक कार्यारंभ करते हैं-

आदिदेव नमस्तुभ्यं प्रसीद मम भास्कर।
दिवाकर नमस्तुभ्यं प्रभाकर नमोऽस्तु ते॥
सप्ताश्वरथमारुढं प्रचण्डं कश्यपात्मजम्।
श्वेतपद्मधरं देवं तं सूर्यं प्रणमाम्यहम्॥
ललितं रथमारुढं सर्वलोकपितामहम्।
महापापहरं देव तं सूर्यं प्रणमाम्यहम्॥
त्रैगुण्यं च महाशूरं ब्रह्मविष्णुमहेश्वरम्।
महापापहरं देवं तं सूर्यं प्रणमाम्यहम्॥
बृंहितं तेजःपुजं च वायुमाकाशमेव च।
प्रभुं च सर्वलोकानां तं सूर्यं प्रणमाम्यहम्॥
बन्धूकपुष्पसंकाशं हारकुण्डलभूषितम्।
एकचक्रधरं देवं तं सूर्यं प्रणमाम्यहम्॥
तं सूर्यं जग कर्तारं महातेजः प्रदीपनम्।
महापापहरं देवं तं सूर्यं प्रणमाम्यहम्॥
तं सूर्यं जगतां नाथं ज्ञान विज्ञान मोक्षदम्।
महापापहरं देवं तं सूर्यं प्रणमाम्यहम्॥[१]

सूर्योपनिषद् के अनुसार सूर्य से ही सम्पूर्ण प्राणियों की उत्पत्ति होती है, पालन होता है और उन्हीं में सबका विलय होता है-

'यः सूर्यो ऽहमेव च।'[२]

भगवान सूर्य प्रत्यक्ष देवता हैं। तत्वतः आप ही परब्रह्म हैं। सूर्योपासना का विधान वेदों में तो है ही साथ-साथ सूर्योपनिषद्, चाक्षुषोपनिषद, अक्ष्युपनिषद् आदि में सूर्योपासना का विस्तृत विधान किया गया है। प्रसिद्ध है-

'आरोग्यं भास्करादिच्छेत्।'

---

१ शिवप्रोक्तं सूर्याष्टकम्
२ सूर्योपनिषद् - १/४.

सर झा के वृद्धप्रपितामह, प्रपितामह, पितामह तथा पिता पं. धरानाथ झा जी अर्द्धांग जल में रहकर सहस्त्र गायत्री का जाप करते थे। दिव्य प्रकाश पथ पर अभिगमित होने वाले इस परिवार के सभी सदस्यों ने भास्कर, माता गायत्री और भगवती तारा की अभ्यर्थना की। भारतीय संस्कृत-वाङ्मय की सनातन-परम्परा में भगवान भास्कर का स्थान अप्रतिम है। समस्त वेद, स्मृति, पुराण, रामायण, महाभारतादि ग्रन्थ भगवान सूर्य की महिमा से मण्डित हैं।

अपने पाँचों नक्षत्री पुत्रों को डॉ. झा ने पञ्चदेवों की उपासना से अवगत कराकर सूर्योपासना की महत्ता से परिचित कराया था। भारतीय संस्कार में पञ्चदेवों का अपना पृथक् महत्व है। कपिल तन्त्र में इसका संकेत करते हुए कहा गया है-

आकाशस्याधिपों विष्णुरग्नेश्चैव महेश्वरी।
वायोः सूर्यः क्षितेरीशो जीवनस्य गणाधिपः॥
गुरवो योगनिष्णाताः प्रकृतिं पञ्चधागताम्।
परीक्ष्य कुर्युः शिष्याणामधिकारविनिर्णयम्॥

अर्थात् आकाश के अधिपति विष्णु, अग्नि की महेश्वरी, वायु तत्व के अधिपति सूर्य, पृथ्वी के शिव एवं जल के अधिपति भगवान गणेश हैं। योग पारङ्गत गुरुओं का कर्त्तव्य है कि वे अपने शिष्यों की प्रकृति एवं प्रवृत्ति की (तत्त्वानुसार) परीक्षा कर उपासनाधिकार अर्थात् इष्टदेव का निर्णय करें।

योगशास्त्र के अनुसार-

'उपासनं पञ्चविधं ब्रह्मोपासन मेव तत्।'[१]

सगुण ब्रह्म की पञ्चतत्वभेदानुसार पाँच मूर्तियाँ हैं। कर्मकाण्डी पण्डितों की एक सभा को सम्बोधित करते हुए सर झा ने कहा था कि- 'हम भारतीय अपने संस्कार से विमुख होकर अपना विकास नहीं कर सकते हैं। विगत इसका साक्षी है कि जब तक हम सूर्योपासना करते रहे तब तक भारत ज्ञान-विज्ञान सम्पन्न तथा वैभवपूर्ण रहा। वर्तमान दुर्दशा एवं उत्पीड़न को देखते हुए उसी उपासना पद्धति को अपनाने की आवश्यकता है। भारतवर्ष को सदैव 'प्रभायुक्त' रखने के लिए आलोकनाथ की आराधना ही सर्वोपयुक्त है।'

निरुक्तकार महामुनि यास्क ने सूर्य शब्द को व्याख्यायित करते हुए कहा है-

---

१ योग शास्त्र

'सूर्यः सतेर्वा सुवतेर्वा।'[१]

सिद्धान्त कौमुदी के कृत्य प्रकरण में इसे 'राजसूयसूर्यः'[२] कहा गया है। इस सूत्र के अनुसार सूर्य शब्द की स्थिति इस प्रकार है-

'सरति (गच्छति) आकाश इति सूर्यः (भ्वादि. प.), यद्वा षू प्रेरणे (तुदादि प.) क्यपो रट्'।[३]
'सुवति कर्मणि लोकं प्रेरयतीति सूर्यः'।[४]

सूर्य शब्द की व्युत्पत्ति से यह स्पष्ट है कि सूर्य भगवान चेतन है। प्रेरकता चेतन का गुण है। मनु की मान्यतानुसार-

'वेदोऽखिलो धर्ममूलम्'।[५]

वास्तव में वेदों के द्वारा प्रतिपाद्य विवेच्य विषय ही धर्म है। सम्पूर्ण वेदवाङ्मय ही धर्म का मूल है। अतः यज्ञ धर्म का स्वरूप है जो समय के अधीन है। समय का विधायक (व्यवहार व्यवस्था नियामक) ज्योतिषशास्त्र है, और यह ज्योतिष शास्त्र आदित्य श्री सूर्य के अधीन है। भारतीय संस्कृति में अथ से इति तक सूर्य का आधिपत्य है। सूर्य ही दिन-रात के काल का विभाजन करते हैं। ये ही संसार की सृष्टि, स्थिति और संहार के मूल कारण हैं। इन्हीं के द्वारा संसार की सृष्टि, स्थिति और उसका संहार होता है। सूर्यदेव ब्रह्म-विष्णु-शिव स्वरूप अर्थात् त्रिदेवमय हैं। सूर्य की किरणें सभी लोगों में प्रसरित होती हैं। ये सूर्य ही ग्रहों के राजा और प्रवर्तक हैं। आप ही वेदों के प्रतिपाद्य हैं। ये आकाशमण्डल में प्रतिदिन नियमपूर्वक सत्यमार्ग पर घूमते हुए संसार का संचालन करते हैं। आकाश में देखे जानेवाले सभी नक्षत्र, ग्रह और राशि मण्डल इन्हीं सूर्य की शक्ति से टिके हुए हैं।

थके हुए संसार के पथिक रात्रि में निद्रा लाभ कर सूर्योदय के समय पुनः जागरुक हो जाते हैं। ऋग्वेद के अनुसार निखिल ब्रह्माण्ड सूर्य के तेज से ही प्रकाशित है। यजुर्वेद के मन्त्रों में जहाँ सूर्य को सम्पूर्ण भुवन को उज्जीवित करनेवाला बताया गया है वहीं अथर्ववेद में प्रतिपादित है कि सूर्य हृदय की दुर्बलता को प्रशमित करते हैं।

---

१ निरुक्त, यास्क- !२/२/१४.
२ सिद्धान्त कौमुदी, पा. ३/१/११४.
३ निरुक्त- १२/२/१४
४ सिद्धान्त कौमु दी, कृत्य प्रकरण (पा. ३/१/११४)
५ मनुस्मृति.

नैमिषारण्य में सूतजी ने यज्ञ समारम्भ के अवसान में शौनकादि ऋषियों के लिए सविता के विषय में विस्तृत व्याख्या की है। स्पष्ट है कि सूर्योपासना भारतवर्ष में बहुत पुराने समय से चली आ रही है। श्री शंकराचार्य के द्वारा स्थापित षड्विध मतों में सौर मत अन्यतम है।

महर्षि वशिष्ठ ने सूर्यवंशीय वृहद्बल को अभिलक्ष्य कर सूर्य के वैभव का वर्णन किया है। वर्णनानुसार चन्द्रभागा नदी के तीर पर बसे साम्बपुर में बहुत समय से श्री सूर्य प्रतिस्थापित हैं। वहाँ पर की गयी उनकी पूजा अक्षय फल देती है। भगवान् कृष्ण के द्वारा अभिशप्त उनके पुत्र की पर्याप्त अभ्यर्थना की गई है।[१]

सूर्य की पत्नी छायादेवी तथा पुत्र काक-वाहन शनैश्चर और यम हैं। सूर्य राजरत्न माणिक्य के अधिदेवता हैं। इनका रथ सुवर्णमय है। इनके सारथि उरु-रहित अरुण हैं। सूर्य की किरणों में से चार सौ किरणें जल बरसाती हैं तथा तीस किरणें हिम उत्पन्न करती हैं। सूर्य से ही औषधिशक्तियाँ बढ़ती हैं। यज्ञ से पर्जन्य और पर्जन्य से अन्न का उद्भव शास्त्रसिद्ध तथा लोकप्रसिद्ध है।

भगवान् सूर्य जपापुष्प की भाँति लाल वर्ण वाले हैं। शास्त्र-वेत्ता आदित्य के भीतर 'हिरणमय पुरुष' की उपासना करते हैं। पौराणिक मान्यता है कि भगवान भानु आदि में हजारों सिर वाले थे और उनका मण्डल नौ हजार योजनों में फैला हुआ था। वे पूर्वाभिमुख प्रादुर्भूत हुए थे। सूर्य प्रतिदिन मेरु पर्वत के चारों ओर घूमते रहते हैं। महर्षि याज्ञवल्क्य ने सूर्यदेव की उपासना कर 'शुक्ल यजुर्वेद' को प्रकाशित किया। सूर्य के अनुग्रह से ही देवी द्रौपदी ने अक्षय पात्र प्राप्त किया था। महर्षि अगस्त्य ने युद्ध क्षेत्र में श्रान्त श्री राम को आदित्य स्तोत्र का उपदेश दिया था। इसी मन्त्र के सुप्रभाव से श्री राम ने रावण पर विजय पायी।

अपने सुहृद जनों से डॉ. झा कहते थे कि सूर्याराधना से आस्तिक जन ऐहिक अभ्युन्नति 'प्रेय' और पारलौकिक उत्कर्ष 'श्रेय' की प्राप्ति करते हैं।

सूर्य गीता के अनुसार-

विश्वप्रकाशक श्री मन् सर्वशक्तिनिकेतन।
जगन्नियन्तः सर्वेश विश्वप्राणाश्रय प्रभो॥[२]

अर्थात् श्रीमान् ! आप सम्पूर्ण विश्व के प्रकाशक, समस्त शक्तियों के अधिष्ठाता, जगन्नियन्ता, सर्वेश एवं विश्व के प्राणाधार प्रभु हैं। अंशुमाली

---

१. साम्बोपाख्यानम्
२ सूर्य गीता.

भगवान् भुवन भास्कर श्री सूर्य की महिमा अनन्त एवं असीम है। वेदमाता गायत्री में जहाँ निखिलान्तरात्मा सर्वद्रष्टा एवं सर्वज्ञ भगवान् श्री सर्वेश्वर का प्रतिपादन है वहाँ सविता नाम से महाभाग सूर्य का भी परिबोध है। श्रुति, स्मृति, पुराण और सूत्रतन्त्र आदि शास्त्रों तथा उच्चस्तरीय साहित्य और काव्य ग्रन्थों में सूर्य-स्वरूप, सूर्य-प्रशस्ति, सूर्य-स्तवन तथा सूर्य वन्दनादि का सुन्दरतम वर्णन किया गया है। यथार्थतः समग्र सृष्टि का जीवन तथा धारण-सम्पोषण भगवान सूर्य की अतुलित लोकोत्तर शक्ति पर ही निर्भर है।

श्रीमद्भगवद्गीता में भगवान श्री कृष्ण ने भी विभूतिस्वरूप के वर्णन में 'ज्योतिषां रविरंशुमान्' से स्वयं की ओर ही इंगित किया है। प्रश्नोपनिषद् में 'स तेजसि सूर्ये सम्पन्नः' के द्वारा यही प्रतिपादित किया गया है कि वे अखिलान्तरात्मा श्री प्रभु तेजोमय सूर्यरूप में भी प्रतिष्ठित हैं।

सूर्य की अग्रगामिनी उषा के दर्शन करके मानव अनादि काल से मुग्ध होता आया है। ऋषिगण उषा के गीत गाते नहीं थकते। ऋग्वेद में उषा सम्बन्धी अनेक भव्य ऋचायें हैं। परमेश्वर की संदेश वाहिका उषा को सम्बोधित करते हुए ऋषि कहते हैं-

'तू हिम किरणों से स्नान करके आई है। तू अमृतत्त्व की पताका है। तू परमेश्वर का संदेश लाई है। तेरा दर्शन करके भी यदि परमेश्वर का रूप न दीखे तो फिर मुझे कौन परमेश्वर का दर्शन करायेगा ?' ऋषियों ने उषा को अनेकानेक विशेषणों से अलंकृत किया है। इनमें सूनरी, सुभगा, विश्ववारा, प्रचेता, मघोनी, रेवती, अश्ववती, गोमती आदि प्रमुख हैं। ऋषि कहते हैं-

आधा योषेव सूनर्युषा याति प्रभुञ्जती।
जरयन्ती वृजनं पद्वदीयत उत्पातयति पक्षिणः ॥[१]

अर्थात् उषा एक सुन्दरी युवती की भाँति सबको आनन्दित करती हुई आती है। वह सारे प्राणिसमूह को जगाती है। पैरवालों को अपने-अपने काम पर भेजती है और पर वाले पक्षियों को आकाश में विचरण करने के लिए प्रेरित करती है। नित्य नवीना उषा प्रकाशमय परिधान पहने दर्शकों के समक्ष प्रकट होती है। उसके आगमन से अन्धकार विलीन होता है और सर्वत्र प्रकाश फैलता है। वह चमकनेवाले वेगवान सौ रथों पर आरुढ़ है। रात्रि की बड़ी बहन तथा द्यौस की बेटी उषा सूर्य का मार्ग प्रशस्त करती है। भगवान सूर्य के साथ उसका निकटतम सम्बन्ध है। ऋषि उषा से कहते हैं-

---

१　ऋग्वेद- १/४८/५

**विश्वस्य हि प्राणनं जीवनं त्वे वि यदुच्छसि सूनरि।
सा नो रथेन बृहता विभावरि श्रुधि चित्रामधेहवम्॥**

- हे सूनरि ! तू जब प्रकाशित होती है तो सम्पूर्ण प्राणियों के प्राण तथा जीवन तुझ में विद्यमान रहते हैं। हे प्रकाशवति, हे विभावरि, बड़े दिव्य रथ पर आसीन हमारी ओर आनेवाली चित्रामधे उषे ! हमारी पुकार सुनो !

उषा वस्तुतः भगवान अंशुमाली का ही पूर्वरूप है। सम्पूर्ण जगत को धारण करनेवाले तथा सबको कर्म-जगत में प्रेरित करनेवाले उसी सविता भगवान की हम गायत्री-मन्त्र से वन्दना करते हैं और उनसे सद्बुद्धि की याचना करते हैं-

ओं तत्सवितुर्वरेण्यं, भर्गो देवस्य धीमहि। धियो योनः प्रचोदयात्॥

वेदानुसार-

'सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च'

सूर्य को स्थावर-जङ्गम की आत्मा कहा गया है। सूर्य में परमात्मा के दर्शन का सुझाव देते हुए डॉ. झा कहते थे कि सूर्य का दर्शन मानो परमात्मा का ही दर्शन है। संसार के उस अपूर्व कलाकार को ऋषियों ने मित्र नाम दिया है-

**मित्रो जनान् यातयति ब्रुवाणो
मित्रो दाधार पृथिवीमुत द्याम्।**[१]

ये मित्रसंज्ञक सूर्य, लोगों को सत्कर्म में प्रवृत्त होने के लिए पुकारते हैं। स्वर्ग और पृथ्वी को धारण करने वाले ये ही सूर्य हैं। दिन भर सारे जगत में प्रकाश और आनन्द बिखेरकर सांध्यवेला में अस्ताचल की ओर जानेवाले भगवान का सौन्दर्य भी अद्भुत है। सुप्रसिद्ध अंग्रेजी कवि लांगफेलो मुग्ध हैं सूर्य के सौन्दर्य पर - मानों सिनाई पर्वत से उतर रहे हों पैगम्बर-

" Down sank the great red Sun
And in golden glimmering vapours
Veiled the light of his face
Like the Prophet descending from Sinai.[2]"

सूर्य - प्रकाश की बदौलत ही धरती सोना उगलती है। सूर्य ही चन्द्रमा और तमाम इतर नक्षत्रों के प्रकाशक हैं। सम्पूर्ण जगत उन्हीं के प्रकाश से चमकते

---

१ ऋग्वेद- ३/५९/१.
२ E Yangeline - Longfellow

हैं। मित्र, रवि, सूर्य, भानु, खग, पूषन् ये सभी इसी भास्कर के नाम हैं। इनके मन्त्र हैं-

'ओं मित्राय नमः। ओं ह्रीं रवये नमः। ओं ह्रूं सूर्याय नमः। ओं ह्रौं खगाय नमः। ओं ह्रः पूष्णे नमः।'

मिट्टी को सोना और अज्ञानी जन को ज्ञानवान बनानेवाली सूर्य की किरणों की महिमा अपरम्पार है। सूर्य की इन किरणों को जिन्हें वैज्ञानिक शब्दावलियों में 'अल्ट्रावायलेट रेज' कहा जाता है, वेदों में इसी को 'एतश' या 'नीलग्रीव' कहा गया है।

डॉ. झा ने अपने कई व्याख्यानों में तथा निबन्धादि में भगवती गायत्री की महत्ता और सूर्योपासना की उपलब्धियों की चर्चा की है। ये अंश अपने आकार और उपयोगी दृष्टिकोणों के कारण अतिरिक्त शोध की अपेक्षा रखते हैं। सनातन धर्म में भगवान सूर्य की उपासना का एक महत्वपूर्ण स्थान है। हिन्दू मात्र महाभाग सूर्य के उपासक हैं। गायत्री का जाप आस्तिक जन को प्रकाश-पथ पर अभिगमित होने का अपार बल देते हैं-

ॐ भूर्भुवः स्वः तत् सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि।
धियो यो नः प्रचोदयात्॥

वेदमाता गायत्री जगत्प्रसविणी हैं और आद्याशक्ति सावित्री परब्रह्म-स्वरूपिणी हैं। इसका भाष्य निम्नरूप से किया गया है-

'तिसृणां महाव्याहृतीनां प्रजापति र्ऋषिरग्निवायु सूर्या देवताः (यजषुच्छन्दो नास्ति) गायत्र्या विश्वामित्र ऋषि र्गायत्री छन्दः सविता देवता महावीराद्यन्तयोः शान्तिकरणे विनियोगः।'

अस्यार्थः-

'भूः पृथिवी, भुवः आकाशं, स्वः स्वर्गम् - एतान् त्रीन् लोकानितिं परिणमय्य धीमहीति क्रिया पदं योज्यम्। तथा तत्सवितुरादित्यस्य भः वीर्यं किम्भूतं वरेणः श्रेष्ठम्। किम्भूतस्य सवितुः, देवस्यदानादि गुणयुक्तस्य। पुनः किम्भूतस्य ? यः सविता नोऽस्माकं धियो बुद्धीः प्रचोदयात् प्रेरयति - सकलपुरुषार्थेषु प्रवर्तयतीत्यर्थः।'

अर्थात् तीन महाव्याहृतियों- भूः भुवः स्वः के ऋषि स्वयं प्रजापति ब्रह्मा हैं तथा अग्नि, वायु और सूर्य देवता हैं।

इस गायत्री के ऋषि हैं विश्वामित्र। गायत्री छन्द है और सविता देवता हैं। महावीर रूप कर्म में अर्थात् यज्ञ में अद्योपान्त शान्ति के लिए विनियोग है।

गायत्री मन्त्र का उदात्त उद्देश्य है कि- भू अर्थात् पृथ्वी के चैतन्यपुरुष का हम सब मिलकर ध्यान करें। आकाश के पुरुष का हम ध्यान करें । स्वर्ग लोक के चैतन्य पुरुष का ध्यान करें और उस सविता की अर्थात् आदित्य या सूर्य के भर्ग की, पापभार्जनकारी तेज की तथा वीर्य की हम चिन्तना करें।

सूर्य की महिमा विराट और अक्षुण्ण है। वे सर्वथा आदरणीय और नित्यप्रति प्रणम्य हैं-

जवाकुसुम संकाशं काश्यपेयं महाद्युतिम्।
ध्वान्तारिं सर्वपापघ्नं प्रणतो स्मि दिवाकरम्॥

अपने कनिष्ठ पुत्र डॉ. आदित्यनाथ झा जी को सूर्य महात्म्य से अवगत कराते हुए सर झा ने सूर्य के द्वादश नामों को पृथक्-पृथक् व्याख्यापित किया था। ये नाम हैं-

आदित्यं प्रथमं नाम द्वितीयं तु दिवाकरः।
तृतीयं भास्करः प्रोक्तं चतुर्थं तु प्रभाकरः॥
पञ्चमं तु सहस्रांशुः षष्ठं त्रैलोक्यलोचनः।
सप्तमं हरिदश्वश्च अष्टमं च विभावसुः॥
नवमं दिनकरः प्रोक्तं दशमं द्वादशात्मकः।
एकादशं त्रयीमूर्तिः द्वादशं सूर्य एव च॥[१]

डॉ. झा त्रिकाल संध्या किया करते थे। वयोवृद्ध स्वतन्त्रता सेनानी पं. मतवीर मिश्र ने भी इस बात की पुष्टि की। अपने संस्मरणों तथा आत्मोल्लेखों में भी सर झा ने ऐसा उल्लेख किया है। वे कहा करते थे कि 'जिस प्रकार किसी भी मन्त्र को सिद्ध करने के पूर्व अयुत गायत्री जप करना होता है उसी प्रकार प्रतिदिन के कार्य में शरीर और आत्मा की पवित्रता और शक्ति संचय के लिए त्रिकाल-संध्या आवश्यक है। प्रतिदिन के कार्यों में हमारे शरीर की ऊर्जा का जो व्यय होता है उसकी पूर्ति सूर्योपासना के द्वारा भुवन-भास्कर से होती है। इससे आध्यात्मिक शक्ति में वृद्धि होती है।'

त्रिकाल सन्ध्या के लिये गायत्री के तीन अलग-अलग रूपों का ध्यान किया जाता है। ये हैं -

---

१ आदित्य हृदयस्तोत्र.

प्रातःकालीन ध्यान

> **हंसारूढां सिताब्जे त्वरुणमणि लसद्भूषणां साष्टनेत्रां**
> **वेदाख्यामक्षमालां स्त्रजमयकमलं दण्डमप्यादधानम्।**
> **ध्याये दोर्भिश्च तुभिस्त्रिभुवन जननीं, पूर्वसन्ध्यादिवन्द्याम्।**
> **गायत्रीमृक्सवित्रीमभिनववयसं मण्डले चण्डरश्मेः ।।**
> **विश्वमातः सुराभ्यर्च्ये पुण्ये गायत्रि वेधसि।**
> **आवाहयाम्युपासन्य र्थभेह्येनोहिन पुनीहि माम्।।**

अर्थात् प्रातःकाल के समय सूर्यमण्डल में श्वेतकमल पर स्थित, हंस पर आरूढ़, लालमणि के भूषणों से अलंकृत, आठ नेत्रों तथा चार हाथों वाली और उनमें क्रमशः वेद, रुद्राक्षमाला, कमल एवं दण्ड को धारण किये ऋग्वेद की जननी, किशोरी, त्रिभुवन की माता गायत्री का मैं ध्यान करता हूँ। देवताओं द्वारा पूजित जगत की माता, पुण्यमयी गायत्री ! मैं उपासना के लिए आपका आवाहन करता हूँ।

मध्याह्नकालीन ध्यान

> **वृषेन्द्रवाहना देवी ज्वलत्रिशिखधारिणी।**
> **श्वेताम्बरधरा श्वेतनागाभरणभूषिता ।।**
> **श्वेतस्त्रगक्षमलालंकृता रक्ता च शंकरा।**
> **जटाधराधराधात्री धरेन्द्राङ्गभवाम्भवा ।।**
> **मातर्भवानि विश्वेशि आहूतैहि पुनीहि माम्।।**

मैं वृषभवाहना, प्रज्वलित त्रिशूल एवं श्वेत वस्त्रधारिणी, श्वेतस्त्रग, रुद्राक्षमाला एवं श्वेत सर्प से विभूषित, लाल वर्णवाली, जटाधारिणी, पर्वतपुत्री, शिवरूपा भवानी संध्या देवी का आवाहन करता हूँ। आप कृपापूर्वक आवें और मुझे पवित्र करें।

सन्ध्याकालीन ध्यान-

> **सन्ध्या सायन्तनी कृष्णा विष्णुदेवा सरस्वती।**
> **खगगा कृष्णवक्त्रा तु शङ्खचक्रधराचरा ।।**
> **कृष्णस्त्रग्भूषणैर्युक्ता सर्वज्ञानमयी वरा।**
> **वीणाक्षमालिका ारुहस्ता स्मितिवरानना ।।**
> **मातर्वाग्देवते स्तुत्ये आहूतैहि पुनीहि माम्।।**

मैं कृष्णवर्णा, कृष्णमुखी, कृष्णवर्ण के माल्याभूषणों से युक्त, गरुड़वाहना विष्णुदेवत्या, शंखचक्र- धारिणी, वीणारुद्राक्ष लिए, सुन्दर मुस्कान वाली, सर्वज्ञा-

नमयी, सायंकालीन सन्ध्यारूपिणी सरस्वती का आवाहन करता हूँ। सर्वथा स्तुति करने योग्य हे माँ वाग्देवी आप यहाँ आवें तथा मुझे पवित्र करें।

त्रिकाल सन्ध्या में अंगन्यास तथा करन्यास के द्वारा प्रतिदिन सूर्योपस्थान मन्त्रों से सूर्य की दिव्य शक्ति और दिव्य तेज का भौतिक शरीर और अन्तरात्मा में आवाहन किया जाता है।

भविष्यपुराण में भास्कर की महत्ता का प्रतिपादन करते हुए कहा गया है कि-

'नास्ति भानुसमो देवो नास्ति मातृसमा गतिः।'[१]

अर्थात् माता से बढ़कर कोई शरण देनेवाला नहीं है और न भगवान सूर्य से बढ़कर कोई देवता ही है। 'देवो भूत्वा देवं यजेद्' के अनुसार नियमपूर्वक आराधना करनेवाले अपने साधकों को अभिलषित फल प्रदान करने में वे सदा संलग्न रहते हैं। भगवान सूर्य संसार के नेत्र हैं। इनसे बढ़कर कोई भी अविनाशी एवं नित्यदेवता नहीं है। यह समस्त संसार इन्हीं से उत्पन्न हुआ है और इन्हीं में लीन भी हो जाएगा। सत्ययुग एवं त्रेता आदि काल को स्वयं भगवान सूर्य का ही रूप कहा जाता है। ग्रह, नक्षत्र, योग, शशि, करण, आदित्यगण, वसुगण, रुद्रगण, अश्विनी कुमार, पवन, अग्नि, इन्द्र, प्रजापति, भूर्भुवर स्वर आदि सभी लोक, पर्वत, नागगण, नदियाँ, समुद्र तथा सम्पूर्ण प्राणियों के अस्तित्व में ये भगवान सूर्य ही कारण हैं। इन्हीं को सम्पूर्ण वेदों में परमात्मा कहा गया है। इतिहासों तथा पुराणों में अन्तरात्मा के रूप में ख्यात ये ही वेदों में ब्रह्मनाम से यशोमण्डित हुए हैं।

कालजयी मनीषी डॉ. सर झा इसी दिव्य शक्ति की आराधना करते हुए कहते थे-

तं सूर्यं जगतां नाथं ज्ञान विज्ञान मोक्षदम्।
महापाप हरं देवं तं सूर्यं प्रणमाम्यहम्॥

महर्षि रैक्व ने उपदेश देने के क्रम में कहा था कि विद्या-दान के छः तीर्थ है-

ब्रह्मचारी धनदायी मेधावी श्रोत्रियः प्रियः।
विद्यया वा विद्या प्राह तानि तीर्थानि षण्मम॥

---

१ भविष्यपुराण, ब्राह्मपर्व, अध्याय- ४८.

अर्थात् गुरु की सेवा में रहकर ब्रह्मचर्य पालन, धनदान, मेधा, अर्थात् धारण शक्ति, श्रोत्रियत्व, प्रेमपात्रता और विद्या के बदले विद्यादान ये ही छः तीर्थ हैं।

स्मृति के अनुसार-

धर्मार्थौ यत्र न स्यातां शुश्रूषा वापि तद्विधा।
तत्र विद्या न वक्तव्या शुभं बीजमिवोषरे ।।

जहाँ धर्म, अर्थ अथवा विद्यानुरूप शुश्रुषा प्राप्त हो वहाँ विद्या नहीं देनी चाहिए। ऐसी विद्या ऊसर भूमि में बपित उत्तम बीज की भाँति व्यर्थ होती है।

वैदिक विद्या के प्रसंग में शंकालु एक दक्षिण भारतीय छात्र की शंकाओं के निवारणार्थ लगातार तीन माह तक सर झा ने गंभीर अध्ययन तथा व्याख्यान दिया था। भास्कर तथा गायत्री विषयक विशाल कोश का निर्माण इसी समय हुआ। इस पुनीत कार्य में मित्र गोविन्द दासजी का भी अपरिमित सहयोग मिला। आपकी मान्यता थी कि-

'वेद ज्ञानस्वरुप परमात्मा की निःश्वास वाणी है। इसका एक-एक अक्षर ज्ञान-विज्ञान से ओतप्रोत है। ईश्वर की प्राप्ति महान् धर्म है। यज्ञ, अध्ययन तथा दान ये धर्म की तीन शाखाएँ हैं।'

छान्दोग्योपनिषद् के अनुसार-

धर्मस्य त्रयः स्कन्धाः- यज्ञोऽध्ययनं दानम्।[१]

भक्ति और तपस्या यज्ञ है, दान कर्म है और अध्ययन ज्ञान है। ज्ञान के बिना कोई कार्य नहीं होता। लीला पुरुषोत्तम भगवान श्री कृष्ण ने सखा अर्जुन को विश्वरूप सगुण साकार पुरुषोत्तम तत्त्व के सम्यक् दर्शन या सम्यक् ज्ञान के लिए दृष्टि प्रदान की थी। भगवान की दिव्य वाणी रुप वेद भी हमें वही दिव्य दृष्टि प्रदान करते हैं। उनमें कही गई विद्याएँ वेदन या दर्शन ही हैं। उस दर्शन या दृष्टि से जब हम जगत को देखते हैं तो जो पहले पाँचभौतिक विकार का पुंज दिखाई देता था, वही सच्चिदानन्दघन परमात्मरूप से दृष्टिगोचर होने लगता है-

ब्रह्मैवेदं सर्वं नेह नानास्ति किञ्चन।

'वासुदेवः सर्वम्'। जैसी अनुभूतियाँ उस दिव्य दृष्टि की ही देन हैं-

---

१ छान्दोग्योपनिषद्.

ईशावास्यमिदं सर्वम् ।[१]

वस्तुतः यह दृष्टि मिलने पर ही त्यागपूर्ण भोग सम्भव है । यह दृष्टि किंचित भी काल्पनिक न होकर परम सत्य है । परन्तु इस सत्य का मुख हिरण्मय पात्र से, सांसारिक वैभव-भोग के सुनहरे सपनों से ढँका हुआ है-

हिरण्मयेन पात्रेण सत्यस्यापिहितं मुखम् ।[२]

इस आवरण को हटाने के लिए उन्हीं पूषापोषक परमात्मा से प्रार्थना करनी होती है कि वे हमारे अज्ञान रूपी आवरण का परिहार करें । जिससे हमें सत्य धर्म का दर्शन हो सके ।

वैदिक विद्याएँ जो हमें वेदन या दृष्टि देती हैं, उन्हें हम विद्या या दर्शन कह सकते हैं । उस विद्या को जीवन में उतारने का, उस दृष्टि के अनुसार देखने का जो निरन्तर प्रयास या अभ्यास है, उसी का नाम है उपासना । विद्या वैभव के लिए विख्यात मिथिला की समस्त चारुता तथा मर्यादा सर झा में उतर आई है । संस्कृत विद्या तथा भारतीय संस्कृति में इनका अवगाहन इतना गंभीर था कि मीमांसा तथा न्यायसूत्र का सूक्ष्मतम तत्त्व भी अंग्रेजी अनुवाद के क्रम में छूटने न पाया है । कहना अनुचित न होगा कि यदि सर झा नहीं होते तो सर सर्वपल्ली राधाकृष्णन जिन्हें संस्कृत का ज्ञान नहीं था भारतीय दर्शन के प्रवक्ता के रूप में पाश्चात्य दार्शनिकों के लिए सहायक नहीं हो पाते । भारतीय दर्शन का गंभीर अनुशीलन तथा नियमित रूप से तत्सम्बन्धी अनुवाद ने साधना-पथ को दिव्य विस्तार प्रदान किया । सर झा का व्यक्तित्व सरस्वती की अभ्यर्थना में ही प्रतिफलित हुआ है । विद्या का व्यापक प्रसार ही इनका एक मात्र उद्देश्य था । जीवन के अन्तिम प्रहर तक अध्ययन और लेखन के प्रति प्रतिबद्ध इस विद्यानुरागी का चरित्र सर्वथा आदरणीय और अनुकरणीय है । पारंपरिक संस्कृतानुरागी होते हुए भी आपने स्त्री शिक्षा का आदर किया और अपनी छोटी बहू (डॉ. आद्या झा) को सेन्सलीलिया जाकर शिक्षा प्राप्त करने की अनुमति प्रदान की । महाराजा दरभंगा जब विदेश गये तो सम्पूर्ण श्रोत्रिय समाज ने उनका विरोध किया किन्तु डॉ. झा ने विद्वानों की अनेक सभाओं को सम्बोधित कर उन्हें महाराज के अनुकूल कर लिया । यह कार्य अत्यन्त कठिन था । ऐसे कालजयी महापुरुष की अभ्यर्थना कर कौन अल्पज्ञ धन्य नहीं होना चाहेगा । स्वयं महामहोपाध्याय जयदेव मिश्र और स्वनामधन्य पण्डित महामहोपाध्याय शिवकुमार मिश्र से संस्कृत साहित्य, न्याय, दर्शन, मीमांसा और व्याकरण का ज्ञान प्राप्त करने वाले गंगानाथ

---

१ ईशावासयोपनिषद्
२ ईशावासयोपनिषद्

झा की दृष्टि पूर्णतः साफ थी। मीमांसा जैसे कठिन विषयों पर भी आपकी लेखनी अविराम गति से बढ़ी कि उनकी आधिकारिकता को देख अध्यापकगण भी विस्मित रह गए। सुविख्यात भाषाविद् पं. हरप्रसाद शास्त्री ने सर झा के कार्यों पर अत्यधिक प्रसन्नता व्यक्त की। प्रथम दो ग्रन्थों का प्रकाशन इन्हीं के सौजन्य से संभव हुआ। श्लोकवार्तिक का अनुवाद और डॉ. झा की समीक्षा पर शास्त्री जी विमुग्ध हो गए। मात्र अठारह वर्ष की आयु में आपने 'काव्य प्रकाश' का अनुवाद किया था। गंगानाथ झा विरचित ग्रन्थों की सूची अत्यन्त विस्तृत है। ये सभी उनके सुदीर्घ अध्यवसायी जीवन के प्रमाण हैं।

न्याय प्रकाश, दि फिलासाफिकल डिसिप्लिन, दि नीड ऑफ दि प्रेजेन्ट जेनरेशन, वैशेषिक दर्शन, योग दर्शन, वेदान्तदीपक, हिन्दू एथिक्स, प्रसन्नराघव नाटक (स्वविरचित भाववोधिनी टीका सहित), चतुरग्नि विधानेनजलाशयोत्सर्ग पद्धतिः, तर्कभाषा आदि गंगानाथ झा विरचित अत्यन्त महत्वपूर्ण तथा प्रसिद्ध पुस्तकें हैं।

त्रिकाल संध्या करने वाले गायत्री के परमभक्त सर झा ने जीवन भर अपने संकल्प को धूमिल न होने दिया। एक पूर्ण व्यक्ति अपने आप में एक युग और परम्परा का प्रतीक बन जाता है। सर झा की माता रामकाशी देवी और उनकी मातामही का काशी प्रेम ही शिक्षा के लिए इन्हें काशी ले गया। अग्रज विन्ध्यनाथ बाबू की उत्तम छात्र के रूप में प्रतिष्ठा ने भी अपरिमित उपकार किया। उनकी शिक्षा के लिए स्वयं महाराज दरभंगा चिन्तित रहते थे। इस विद्यावीर की ख्याति वाल्यावस्था से ही फैलने लगी थी। संस्कृत शिक्षा के लिए उस समय काशी को आदर्श माना जाता था।

कठोपनिषद् की वाणी को सर झा ने पूर्णतः चरितार्थ किया कि-

नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो न मेधया न बहुना श्रुतेन।
यमेवैष वृण तेन लभ्यस्तस्यैष आत्मा विवृणुते तनूं स्वाम्॥

अर्थात् परमात्मा न तो प्रवचन से न बुद्धि से और न बहुत सुनने से ही प्राप्त हो सकता है। जिसको वह स्वीकार कर लेता है, उसके द्वारा ही प्राप्त किया जा सकता है, क्योंकि उसके सामने वह अपने स्वरूप को खोलकर रख देता है। सांस्कृतिक राजधानी काशी में, सर झा ने जो कुछ पाया उसे समस्त संसार के लिए सुलभ कर गए। इस विद्या-यात्रा में अनेक कटु-मधु क्षण आए किन्तु सदैव आप हरिश्चन्द्र की सी निष्ठा बनाए रहे। वाराणसी के लिए हार्दिक लगाव, धार्मिक निष्ठा और अपनी महान् परम्परा की तीव्र क्षुधा इनमें प्रारंभ से ही थी। माता रामकाशी देवी, मातामही और मातामह बाबू वासुदेव सिंह के कारण गंगाबाबू के सम्पूर्ण परिवार का काशी से अत्यधिक लगाव था। पंडों और पंडितों की नगरी काशी भारतीय संस्कृति का उदात्त निदर्शन है।

वाराणसी वैभव की गाथा से सम्पूर्ण भारतीय वाङ्मय आपूरित है। वेद, स्मृति, निबन्ध, पुराण तथा महाकाव्यों में वाराणसी का सादर उल्लेख मिलता है। ऋग्वेद में दिवोदशा का उल्लेख बार-बार किया गया है। इस पुण्य-नगरी की स्थापना का श्रेय दिवोदशा को ही दिया गया। वैदिक साहित्यों से प्रमाण मिलता है कि काशी एक क्षेत्र का नाम था जिसकी राजधानी काशी थी। कौषितकी उपनिषद् में अजातशत्रु (मगध-सम्राट) को काशिराज कहा गया है। ईसापूर्व पाँचवीं शताब्दी में पाणिनी ने भी 'काशिया' की चर्चा की है।

सुविख्यात चीनी यात्री फाह्यान ने भी वाराणसी को काशी-राज्य की नगरी बताया है। काशी का मूल-शब्द काश् अर्थात् चमकना है। स्कन्दपुराणानुसार काशी निर्वाण (मोक्ष) के लिए प्रसिद्ध है-

काशाते यतो ज्योतिस्तदनाख्ये यतीश्वराः।
अतो नाम चरम चश्तु काशीति प्रथिता विभो ॥[१]

स्कन्दपुराण, अग्निपुराण, पद्मपुराण एवं वामन पुराण के अनुसार वाराणसी अस्सी एवं वरुणा नदियों के मध्य अवस्थित है। किसी समय इस नगरी में चौदह सौ पचास देवालय तथा अन्य पूजास्थल थे। उनमें से अधिकांश नगर के वर्तमान दशाश्वमेध एवं चौक क्षेत्र में थे। पुराणानुसार वृहत्तर काशी क्षेत्र की सीमा वर्तमान पंचकोशी परिक्रमा का मार्ग मानी जाती है। इसी वृहत्तर काशी में दोनों पवित्र नदियों के मध्य काशी का अधिवास है।

तीर्थ रूप में आराधित काशी का उल्लेख अनेक पुराणों में आया है। स्कन्दपुराण के काशी-खण्ड में काशी क्षेत्र के सभी तीर्थों की वृहद् चर्चा है। पौराणिक मान्यता है कि भारत के सारे तीर्थ काशी में स्थित हैं। स्कन्दपुराण के अनुसार काशी तीन खण्डों में विभाजित हैं। ये हैं-

(क) विश्वेश्वर-खण्ड

(ख) ओंकार-खण्ड

(ग) केदार-खण्ड

विश्वनाथ की नगरी काशी की गंगा में भी अपूर्व चारुता है। गंगा यहाँ उत्तरवाहिनी होकर अर्द्धचन्द्राकार अवस्थित है। गंगा की धारा का वर्ष भर वाराणसी के किनारे से सटकर बहना भी एक अपूर्व वैशिष्ट्य है। काशी बिना गंगा के प्राणहीन शरीर के समान है। यहाँ के अध्यवसायी पण्डित ही काशी के

---

१ स्कन्दपुराण, काशी-खण्ड- २६/२७.

शृंगार हैं। भ्राता विन्ध्यनाथ बाबू ने काशी आने का जो अवसर प्रदान किया गंगाबाबू सदैव उसके ऋणी रहे। काशी आने पर जहाँ क्वींस कालेज का शैक्षिक परिवेश मिला वहीं महामहोपाध्याय जयदेव मिश्र जैसे गुरु भी मिले। जहाँ डॉ. थीवो और डॉ. भेनिस जैसे विद्वान् प्राध्यापक मिले वहीं पं. शिवकुमार मिश्र जैसे मेधावी मार्गदर्शक भी। जहाँ गोविन्ददास और भगवान दास जैसे मित्र मिले वहीं थियोसाफिकल सोसाइटी की सदस्यता भी मिली। डॉ. गंगानाथ झा के चरित्र निर्माण में इस विद्या नगरी के अवदान को विस्मृत नहीं किया जा सकता। इसी शिवपुरी में कर्नल आलकाट तथा श्रीमती एनी वेसेंट से महत्वपूर्ण साक्षात्कार हुआ था। सर झा के रोम-रोम में काशी में प्राप्त संस्कार विराजता था। मृत्युपर्यन्त इस गंगा नगरी के प्रति आपका सम्मोहन कम न हुआ। काशी भारतीय संस्कृति के केन्द्र बिन्दु के रूप में विख्यात है। धार्मिक निष्ठा और संस्कृत पढ़ने की क्षुधा ने ही आपको काशी जाने की प्रेरणा दी। क्वींस कालेज के दिव्य वातावरण ने गंगाबाबू का मन मोह लिया। वहाँ पहुँचकर गोविन्ददास, भगवानदास और पण्डित हरिनाथ जैसे प्रतिभाशाली मित्रों ने एकाकीपन को दूर कर नये परिवेश में व्यवस्थित होने का गुर बताया। सर झा को काशी लाने के लिए डॉ. भेनिस, प्रो. उमेशचन्द्र सान्याल, प्रो. अभयचन्द्र सान्याल और संस्कृत के प्राध्यापक पण्डित विन्ध्य प्रसाद ने विन्ध्यनाथ बाबू को उत्साहित किया था। स्वयं महाराज दरभंगा भी क्वींस कालेज के छात्र रह चुके थे। वर्ष १८८६ ई. में गंगानाथ बाबू को क्वींस कालेज में दाखिला मिला और अपने स्वभाव और अपनी प्रतिभा के बल पर शीघ्र ही आप डॉ. थीबो सदृश प्रिन्सिपल तथा अन्य विद्वान् शिक्षकों के कृपापात्र बन गए। डॉ. थीबो ने अपने संस्मरण में लिखा है कि- 'इतना मेधावी और शीलवान छात्र मेरे जीवन में कभी नहीं आया था।' काशी में प्राप्त शिक्षा क्रम में आप कभी द्वितीय नहीं आये।

धर्म पत्नी के रूप में जिस इन्दुमती का आपने पाणिग्रहण किया वह वस्तुतः जीवन संगिनी प्रमाणित हुई। रत्नगर्भा इन्दुमती का सर झा के आध्यात्मिक तथा अध्यवसायी जीवन में महत्वपूर्ण अवदान रहा है।

शक्ति स्वरूपा इन्दुमती

मिथिला के आदरणीय ग्राम शारदापुर के पंडित हर्षनाथ झा उद्‌भट विद्वान थे। संस्कृत साहित्य में तद्युगीन पण्डितों में आपका नाम अप्रतिम था। आप दरभंगा राज की सेवा में थे। राजदरबार में पं. धरानाथ झा के प्रतिभाशाली पुत्र गंगानाथ पर उनकी आँखें टिक गईं। आपने अनुमान किया कि उनकी कन्या अब विवाह योग्य हो गयी है। मैथिल मान्यता है- 'अष्ट वर्षात् भवेत् गौरी।' अर्थात् कन्या यदि आठ वर्ष की हो जाय तो वह विवाह योग्य हो जाती है। गंगानाथ इन्दुमती के लिए अत्यधिक उपयुक्त प्रतीत हुए। इन्दुमती में भी विलक्षण

संस्कार थे। वाल्मीकि रामायण का नियमित पारायण करने वाली बालिका इन्दुमती गाती-

> **भार्या ममेयं कल्याणी वैदेही जनकात्मजा।**
> **मां चानुयाता विजनं तपोवनमनिन्दिता ॥**

भारद्वाज मुनि से भगवान राम ने कहा कि ये विदेहराज जनक की पुत्री और मेरी कल्याणमयी पत्नी सती साध्वी सीता है, जो निर्जन तपोवन में भी साथ देने के लिए आयी है। यह अंश इन्दुमती के मन में पैठ गया। नित्य गौरी पूजन के क्रम में वे मैथिल संस्कारानुरूप गीत गाकर माता गौरी को प्रसन्न कर जीवन पर्यन्त पति-अनुगता होने का वर माँगती थी। सुख-दुख में अपने भावी स्वामी के साथ रहने का कुमारिका ने दृढ़ संकल्प कर लिया था। गंगानाथ झा जब क्वींस कालेज के चतुर्थ वर्ष के छात्र थे तभी १८८९ ई. के जून माह में पं. [illegible]सनाथ झा की विदुषी पुत्री के साथ पाणिग्रहण सुसम्पन्न हुआ। गंगानाथ झा के पिता और माता रामकाशी देवी का वैवाहिक जीवन अत्यन्त सुखमय था। गंगानाथ झाजी पर भी इस संस्कार का विशेष प्रभाव था। दरभंगा राज सेवा में प्रवेशोपरान्त पत्नी की मृत्यु पर्यन्त आप सपत्नीक ही रहे। माता गौरी का आशीर्वाद फलित हुआ। पाँच-पाँच दुर्लभ रत्न को धारण करने वाली इन्दुमती देवी ने ४ नवम्बर १९३२ ई. को शरीरान्त किया। घर की सम्पूर्ण व्यवस्था का दायित्व आपही का था। अपनी पत्नी के निधन पर सर झा फूट-फूट कर रोये थे। इन्दुमती देवी में सरस्वती और लक्ष्मी का मिला-जुला रूप था। अन्नपूर्णा की कृपा से कभी इस परिवार को अभाव बोध न हुआ। उस महीयसी महिला के अवसान से सम्पूर्ण मिथिलांचल और इलाहाबाद शोक-मग्न हो गया था। सर गंगानाथ झा की धर्मपत्नी के साथ डॉ. अमरनाथ झा, पं. विभूतिनाथ झा, कैप्टन भवनाथ झा, पं. शिवनाथ झा और डॉ. आदित्यनाथ झा की माता का भी अवसान हुआ था। बनारस तथा इलाहाबाद से प्रायः सभी प्रमुख विद्वान् संवेदना प्रकट करने के लिए पधारे। दो माह तक सर झा पत्नी की याद में निमग्न रहे। पुत्री जगद्धात्री ने परिवार संचालन व्यवस्था का भार संभाला। पत्नी के प्रति डॉ. झा अत्यन्त आदर भाव रखते थे। वे तीव्र स्वर में अवश्य बोलती थीं किन्तु उनका हृदय अत्यन्त निर्मल था। केवल गंगाजल पीनेवाली इन्दुमती देवी का अनुशासन बड़ा कठोर था। उनका संस्कार विशुद्ध भारतीय और मैथिल परंपरानुरूप था। जीवनान्त तक पति का सारा कार्य वे स्वयं करती रहीं। ऐसी पत्नी के प्रति डॉ. झा का हृदय रो उठा। मीमांसक सर झा के अश्रु, लेखनी के माध्यम से डायरी के स्वर्णिम पृष्ठों पर उतर आए-

> **पति सन्तान उचारित**
> **रामकृष्ण शुभ नाम**
> **सुनइत शान्ति पुरस्सर**

त्यागल प्राण ललाम ॥ १ ॥
पुत्र पुत्रिका कनइत।
सभ के आशिष देल
भागमन्ति पति अनुगत
परम धाम चलि गेलि ॥ २ ॥
'सेवा अहँक न सकलहुँ
कय हम अन्तिम बेरि'
कहइत कानय लागलि
नहि किछु बाजलि फेरि ॥ ३ ॥
जनु कहनी अहं चललहुँ
सुन्दर ठाम महान
जतय भेटत जे सभा गेल
जे अछि तकरो ज्ञान ॥ ४ ॥
सभ के त्यागि कतय गेलि
कत गेलि प्राण पियारि
कोन विधि जिवन निमाहब
बिनु सहचरि सुकुमारि ॥ ५ ॥
कतेक मनोरथ बांटल
दुहु मन हर्ष अपार
संग भय जप तप करइत
तरब संगहिं संसार ॥ ६ ॥
से सभ रहल मनहि मन
छोड़ि सबहिं चलि गेलि
सभक समक्ष पड़ाइलि
ललित धाम चलि गेलि ॥ ७ ॥
जीवन अहँक सफल भेल
सब खन आनन्दकन्द
सासु पुतोहु शिशुक संग
रहब सतत आनन्द ॥ ८ ॥
हमर मनोरथ भंगक
जनु करि चित में खेद
शीघ्रे आबि मिलब हम
जतय फेरि नहि भेद ॥ ९ ॥

यह मैथिली भाषा में रचित एक ऐतिहासिक शोक-गीत है। सर झा का अपनी पत्नी के प्रति प्रेम, आस्था और विश्वास का प्रतीक है यह कविता। करुण रस का ऐसा परिपाक अन्यत्र असंभव है। स्व. इन्दुमती देवी की स्मृति में

सर झा ने मनीगाछी स्टेशन के निकट एक धर्मशाला बनवाया तथा पैतृक गाँव (मैक, मै.-नैहर) में शारदा देवी का भव्य मन्दिर बनवाया। आज भी शारदा देवी की पूजा आराधना करनेवाले नर-नारी उस महान् दम्पति के पावन प्रेम को स्मरण कर श्रद्धा-सुमन अर्पित कर जाते। मन्दिर पर उत्कीर्णित है -

श्री शारदायै नमः

> **शारदापुरवास्तव्य-सकुराढ़ीकुलोद्भवः । धर्मे शब्दे च योगे च निष्णातो ग्रन्थकृत् सुधीः श्रीहर्षनाथशर्मा भूद् बलभद्रऽसहोदरः। तस्यात्मजा शुभ्रशीला कुलद्वयस्ययशस्करी, तीर्थनाथ तनूजस्य पाहीटोल निवासिनः पालीवंशावतंश म. गंगानाथस्यधीमतः पत्नी श्रीन्दुमती देवी दशभिस्तनयैर्युता रसैव व्ययचद् भव्यं शारदायाश्च मन्दिरम् वेदवसुग्रहचन्द्र १९८४ मिते वैक्रमसंज्ञके। संवत्सरे कार्यमेत पूर्णं देवी सादतः ॥**[१]

अभी भी शारदापुर में इन्दुमती देवी के भतीजे उनके पुत्र पौत्रादि से घर भरा हुआ है। अधिकांश सदस्य भगवती भारती की उपासना में ही संलग्न हैं।

महामहोपाध्याय सर झा मूल रूप से मीमांसक थे। अपने युग के दार्शनिकों में आपका नाम अप्रतिम है। भारतीय दर्शन का आरंभ ऋग्वेद से ही होता है। दर्शन शब्द की व्युत्पत्ति 'दृश' धातु से हुई और 'दृश्' का अर्थ है- 'दृश्यते अनेन इति दर्शनम्।' अर्थात् जिसके द्वारा देखा जाय वही दर्शन है। यहाँ देखने से तात्पर्य 'आत्मदर्शन' से है। छान्दोग्य उपनिषद् में 'दृश' शब्द का प्रयोग 'आत्मदर्शन' के लिए ही हुआ है।

दर्शन को शास्त्र कहने की परिपाटी है किन्तु 'शास्त्र' शब्द के लिए दो धातुओं का प्रयोग होता है- शास-आज्ञा देना और शंस-प्रकट करना या वर्णन करना। शासन करनेवाले शास्त्र दो प्रकार के हैं। इन्हें विधि रूप और निषेध रूप कहते हैं। श्रुतियों और स्मृतियों में बताये गए कर्त्तव्य, कर्म, अनुष्ठान विधि रूप या करने योग्य है तथा हेय या निन्दित कर्म निषेध रूप या त्यागने योग्य है। शासन अर्थ में शास्त्र का प्रयोग धर्म शास्त्र के लिए उपयुक्त है। शंसक शास्त्र बोध करानेवाले शास्त्र हैं। 'शंसक' शास्त्रों में वस्तु के वास्तविक और यथार्थ रूप की व्याख्या मिलती है। 'शासन' शास्त्र क्रिया सूचक और शंसक एक शास्त्र ज्ञान सूचक होते हैं। दर्शन के साथ शास्त्र का प्रयोग शंसक शास्त्र के

---

१ भूकम्प में क्षतिग्रस्त हो जाने के कारण सभी अक्षर स्पष्ट नहीं रह गए हैं। आयासपूर्वक उन्हें सहेजने का प्रयास किया गया है।

अर्थ में हुआ है। कर्त्तव्य और अकर्त्तव्य का निर्णय करने के कारण धर्मशास्त्र पुरुष पर तंत्र है और वस्तु के वास्तविक स्वरूप का विवेचन करने के कारण दर्शन शास्त्र वस्तुतन्त्र है। वास्तव में दर्शन सम्पूर्ण विश्व और जीवन की व्याख्या तथा मूल्य निर्धारित करने का प्रयास है।

जीवन की आधिभौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति कर लेने के पश्चात् मानव की बुद्धि और मननशक्ति का नियोजन उसकी व्यक्तिगत या सार्वजनीय रहस्यात्मक समस्याओं की दिशा में होना स्वाभाविक है। विश्व क्या है ? ब्रह्माण्ड में घटित होनेवाली प्रकृति की सुखद या दुःखद घटनाओं का नियंता कौन है ? मनुष्य के जीवन का उद्देश्य आधिभौतिक से बाहर है कि नहीं ? जीव का अन्त क्या है ? मृत्यु के बाद क्या होता है ? जीवन का सीमान्त क्या है ? ऐसी एक-एक समस्याएँ मनुष्य को दार्शनिक चिन्तन के लिए प्रवृत्त करने में समर्थ हुई। संघर्षरत मनुष्य को अन्ततः अपनी विवशता का बोध होता है। ऐसी परिस्थिति में वह प्रकृति से अधिक शक्तिशाली सत्ता का सहयोगाकांक्षी होता है। वह सत् का अन्वेषण करता है जहाँ सनातन सुख और शान्ति का अधिवास है। इसी सत् की खोज को भारतीय विद्वानों और मनीषियों ने दर्शन की संज्ञा से अभिहित किया है। भारतीय अध्ययन में दर्शन को सर्वाधिक महत्व प्रदान किया गया है। जीवन में घटनेवाली नित्य प्रति की घटनाओं से इसका अभिन्न सम्बन्ध है। वस्तुतः-

'दुःखत्रयाभिधाताज्जिज्ञासा तदपधातके हेतौ'

अर्थात् त्रिविध ताप या आध्यात्मिक तथा आधिदैविक ताप से संतप्त जनों के क्लेश निगरणार्थ ही दर्शन का उदय हुआ। भारतीय दर्शन का आधार पूर्णतः आध्यात्मिक है। यहाँ धर्म और दर्शन में दिव्य सामंजस्य है।

सत्य के अन्वेषण के प्रति भारतीय मनीषियों का आग्रह अत्यन्त प्राचीन काल से ही चला आ रहा है। संहिताकाल में ही ऐसी प्रवृत्ति का उद्भव हो गया था। ऋग्वेद काल से ही द्विविध दार्शनिक लक्ष्यों का संकेत प्राप्त होने लगता है। प्रथम प्रवृत्ति प्रतिभामूलक अथवा प्रज्ञामूलक है जो प्रतिभा चक्षु के द्वारा तत्त्वों के विवेचन करने में समर्थ होती है। द्वितीय प्रवृत्ति तर्कमूलक है जो तार्किक बुद्धि का उपयोग कर तत्वों की समीक्षा करनें में कृतकार्य होती है। दोनों के लक्ष्य हैं क्रमशः धर्म का उपार्जन और ब्रह्म का साक्षात्कार। ऋग्वेद के एक महर्षि प्रजापति परमेष्ठी प्रतिभा ज्ञान के बल पर जगत के मूल तत्त्व की व्याख्या करते हुए कहते हैं-

आनीदवातंस्वधया तदेकम्[१]

अर्थात् अद्वैत तत्त्व अवनी शक्ति से ही श्वास लेती थी। दूसरे ऋषि अंगिरस ने वस्तुतत्त्व को पहचानने के लिए तर्क की उपयोगिता बतलाते हुए कहा है कि-

संगच्छध्वं संवदध्वंशं वो मनांसि जानताम्।[२]

अर्थात् 'आपस में मिलो, विषय का विवेचन करो तथा एक दूसरे के मत को जानो।'

इन उभय प्रवृत्तियों के परस्पर सम्मिलन से उपनिषदों के तत्वज्ञान का जन्म हुआ। उपनिषद् शब्द का व्युत्पत्ति लभ्य अर्थ है उप (निकट) + नि (निभृत एकान्त में) + षद् (बैठना), अर्थात् गुरु के निकट एकान्त में बैठना। यह वह ज्ञान है जो गुरु के निकट शान्त - एकान्त भाव से बैठकर प्राप्त किये जाते हैं। वास्तव में उपनिषद् का ज्ञान गुरुगम्य है। बिना गुरु की सहायता से वह पूर्णतः हृदयंगम नहीं हो सकता। वह ज्ञान गुह्य या रहस्य से भरा हुआ है।

उपनिषदों का विवेच्य विषय है कि सृष्टि क्या है ? आत्मा क्या है ? परमात्मा या ब्रह्म क्या है ? आत्मा परमात्मा में सम्बन्ध क्या है ? सुख क्या है और वह कैसे प्राप्त हो सकता है ? आदि।

यही कारण है कि उपनिषद् को ब्रह्म विद्या या अध्यात्म विद्या भी कहते हैं। उपनिषद् भारतीय चिन्तन का चरम विकास है जिसे देखकर कोई भी सहृदय मुग्ध हो जाता है। सरल-से-सरल भाषा में गूढ़ से गूढ़ ज्ञानाभिव्यक्ति ही उपनिषद् का मर्म है। एक सौ आठ उपलब्ध उपनिषदों में ईश, केन, कठ, प्रश्न, मुण्डक, माण्डूक्य, तैत्तरीय, ऐतरेय, छान्दोग्य, वृहदारण्यक एवं श्वेताश्वतरोपनिषद् प्रमुख है। उपनिषदों का कहना है कि-

ईशावास्यमिदं सर्वं यत्किं च जगत्यांजगत्।
तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्य स्विनम्॥

अखिल ब्रह्माण्ड में जो कुछ भी जड़ चेतन रूप जगत है वह सब ईश्वर से व्याप्त है। अतः त्यागपूर्वक भोग करो और किसी के धन का लोभ मत करो।

औपनिषद्तत्वज्ञान का पर्यवसान आत्मा तथा परमात्मा के एकीकरण को सिद्ध करनेवाले प्रज्ञामूलक वेदान्त में हुआ है। दार्शनिक सिद्धान्तों का उपयोग

---

१ ऋग्वेद- १०/१०९/२.
२ ऋग्वेद- १०/१९१/२.

करके ही आचार्यों ने अपने-अपने मतों को प्रमाणित किया है। ध्यानपूर्वक देखा जाय तो उपनिषद् ही भारतीय विचारधारा के मूल स्रोत हैं। यह एक ऐसा आध्यात्मिक मानसरोवर है जहाँ से भिन्न-भिन्न ज्ञानधाराएँ निकलकर इस भारत भूमि को उर्वरा तथा आप्यायित करती आ रही हैं। भारतीय दर्शन की प्राचीनता असंदिग्ध है। मूल भारतीय दर्शनों की संख्या छः है। ये हैं-

(क) न्याय (ख) वैशेषिक (ग) सांख्य (घ) योग (ड़) मीमांसा तथा (च) वेदान्त।

इनमें से प्रत्येक का मूल ग्रन्थ सूत्र रूप में उपलब्ध है। ऐसी मान्यता है कि पहले तत्तत् सूत्र की रचना हो चुकने के सुदीर्घ काल के पश्चात् ही उसकी टीका लिखी जाने की आवश्यकता का अनुभव किया गया। तत्तत् सूत्रों का व्याख्यान और विस्तार तो किया जा सकता किन्तु इसका खण्डन संभव नहीं। ये सभी दर्शन प्राचीन उद्भावकों या विचारकों के नाम से सम्बद्ध हैं। उदाहरणार्थ न्यायसूत्र-महर्षि गौतम, वैशेषिक सूत्र-कणाद, सांख्य-कपिल, योग-पतञ्जलि, मीमांसा-जैमिनी तथा वेदान्त-वादरायण व्यास से अनुलगित हैं।

वेदोक्त सिद्धान्तों को प्रामाणिक स्वीकारने वाले दर्शन जहाँ आस्तिक दर्शन कहलाते वहीं वेदनिन्दकों का दर्शन नास्तिक दर्शन से अभिहित होता है।

डॉ. गंगानाथ झा जी मूलतः मीमांसक थे किन्तु आस्तिक दर्शन के प्रायः सभी धरातल को आपने स्पर्शित किया। न्याय, सांख्य, मीमांसा, योग, वैशेषिक तथा वेदान्त से सम्बद्ध अतुलित साहित्य इस तथ्य के जीवन्त प्रमाण हैं। ये सभी दर्शन भारतीय सांस्कृतिक चेतना को रूपायित करते हैं। उदाहरणार्थ- न्याय दर्शन।

विक्रम पूर्व चौथी शती से लेकर आज तक न्याय दर्शन का अध्ययन अविच्छिन्न रुप से होता रहा है। न्याय दर्शन विषयक विशाल साहित्य इस अध्ययन परम्परा का प्रबल साक्ष्य है। प्राचीन न्याय तथा नव्य न्याय नाम से इस दर्शन की दो धाराएँ हैं। प्रथम शाखा के प्रवर्तक आचार्य हैं - गौतम। इसमें प्रमाण, प्रमेय, संशय, प्रयोजन, दृष्टान्त, सिद्धान्त, अवयव, तर्क, निर्णय, वाद, अल्प, वितंडा, हेत्वाभास, छल, जाति व निग्रह स्थान नामक सोलह पदार्थों की विवेचना की गयी है। इसी कारण इसे- 'पदार्थ मीमांसात्मक' कहा गया है।

द्वितीय धारा अर्थात् नव्य न्याय के आचार्य हैं मिथिला के आदरणीय गंगेश उपाध्याय। इसका उदय युग प्रवर्तक ग्रन्थ 'तत्वचिन्तामणि' से हुआ और इसमें धारा 'प्रमाण मीमांसात्मक' का विस्तृत एवं सूक्ष्म विवेचन किया गया है।

सर झा के मीमांसा विषयक ज्ञान के मूल प्रेरणा स्रोत गंगेश उपाध्याय ही रहे हैं। न्याय दर्शन में उक्त पोषण पदार्थों के यथार्थ ज्ञान के द्वारा निःश्रेयम्

का अधिगम मानव जीवन का परम लक्ष्य मानते हुए यही कहा गया है कि दीपक के प्रकाश से जिस प्रकार वस्तुओं का ज्ञान होता है उसी प्रकार ज्ञान के प्रकाश से पदार्थ के वास्तविक रूप का बोध होता है।

'ऋते ज्ञानान्न मुक्तिः।'

अर्थात् 'ज्ञान के बिना मुक्ति नहीं' का सर्वमान्य सिद्धान्त स्वीकार करते हुए भी शुद्ध ज्ञान प्राप्ति के साधन की यथार्थ मीमांसा न्याय-दर्शन में ही की गयी है। न्याय दर्शन द्वारा प्रस्तुत प्रमाणों एवं हेत्वाभासों के अत्यंत प्रामाणिक विवरणों का उपयोग अन्य दर्शन में भी पर्याप्त रूप से हुआ है। न्याय दर्शन में आत्मा का अत्यन्त हृदयग्राही विवेचन किया गया है। यहाँ आत्मा को शरीर, मन तथा बुद्धि से पृथक् एक स्वतंत्र पदार्थ सिद्ध किया गया है। ध्यान-धारणादि उपायों के द्वारा आत्मा का साक्षात्कार करना तथा चित्त की सुख-दुख से विरहित साम्यावस्था को प्राप्त करना ही न्याय दर्शन का परम लक्ष्य है।

वैशेषिक दर्शन

वैशेषिक दर्शन न्याय दर्शन के अधिक निकट है। नैकट्य के कारण ही ये समानतन्त्र भी कहलाते हैं। दोनों ही दर्शन बौद्धों के क्षणिकवाद का खण्डन करते हुए तथा सांख्य के विश्वरचना सिद्धान्त की उपेक्षा कर क्षिति, जल, तेज और पवन नामक चार तत्त्वों को विश्व-रचना के लिए उत्तरदायी मानते हैं। दोनों में जीव का लक्ष्य मोक्ष की प्राप्ति मानते हुए कर्मवाद को स्वीकार किया गया है किन्तु दोनों में अनेक विषमताएँ भी हैं। वैशेषिक दर्शन में सत्य की मीमांसा भौतिक विज्ञान की दृष्टि सामने में रखकर की गई है। जहाँ न्यायदर्शन का प्रधान लक्ष्य अतर्जगत और ज्ञान की मीमांसा है वहाँ वैशेषिक दर्शन का मूल लक्ष्य वाह्य जगत की विस्तृत समीक्षा है। वैशेषिक दर्शन का मूल विषय पदार्थ विचार ही है। यहाँ पदार्थों को भाव एवं अभाव नामक दो प्रधान वर्गों में विभाजित कर संसार में उपलब्ध वास्तविक आस्तिक वस्तुओं अर्थात् जीवित शरीरधारी वस्तुओं मन व आत्मा आदि को भाव तथा अनस्तित्व वस्तुओं को अभाव माना गया है। वैशेषिक दर्शन में पहले भाव को ही पदार्थ मानकर द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य, विशेष तथा समवाय नामक छः पदार्थों के अन्तर्गत ही विश्व की समस्त वस्तुओं का अस्तित्व स्वीकार किया गया है। वैशेषिक दर्शन में सात पदार्थों को स्वीकृति मिली है-

द्रव्यगुणस्तया कर्म सामान्यं साविशेषकम्।
समवायो भावश्च पदार्था सप्तकीर्तितः॥

यहाँ गुणों तथा कर्मों के आधार को द्रव्य कहा गया है तथा गुण व क्रिया से युक्त द्रव्य को पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, काल, दिक्, आत्मा व मन नामक नौ प्रकारों में विभाजित कर उन्हें पुनः सक्रिय द्रव्य तथा निष्क्रिय

द्रव्य नामक दो भागों में विभाजित किया गया है। वैशेषिक दर्शन में परमाणु को महत्ता प्रदान करते हुए उसे विभाज्य, सूक्ष्मतम, अवयवहीन और नित्य कहा गया तथा उन्हें विश्व का कारण स्वरूप समझा गया क्योंकि इन्हीं के संयोग से वस्तुओं का निर्माण होता है। गुण और कर्मों के समान धर्मों के योग का नाम सामान्य और वस्तुओं के पारस्परिक वैधर्म्य का ज्ञान विशेष कहा गया है। समवाय तथा विशेष जैसे नित्य पदार्थों का अन्य पदार्थों के साथ सम्बन्ध दिखलाने के लिए समवाय नामक नित्य सम्बन्ध की सत्ता भी स्वीकार की गयी है।

वैशेषिक दर्शन के अनुसार निष्काम कर्मों का सम्पादन भी नितान्त आवश्यक है। वस्तुतः ऐसे कर्मों का अनुष्ठान तत्त्वज्ञान की उत्पत्ति करता हुआ मोक्ष की उपलब्धि में महत्वपूर्ण कारण बनता है। वैशेषिक दर्शन अत्यन्त प्राचीन दर्शन है। इसके प्रवर्तक महर्षि कणाद् हैं। बाद में प्रशस्तपाद, व्यास शिवाचार्य, श्री धराचार्य, वल्लभाचार्य, पद्मनाभ मिश्र, जगदीश भट्टाचार्य, शिवादित्य मिश्र, विश्वनाथ आदि मनीषियों ने भी इस दर्शन पर भाष्य प्रस्तुत कर इसे कायिक रूप से सुपुष्ट किया।

सांख्य दर्शन

सांख्य दर्शन न्याय तथा वैशेषिक दर्शन से भी प्राचीन दर्शन है। इसके सिद्धान्त उपनिषदों में सहज ही उपलब्ध हो जाते हैं। द्वैत मत का प्रतिपादक रहने के कारण यह दर्शन प्रकृति तथा पुरुष को दो मूल-तत्त्व मानकर उनके परस्पर सम्बन्ध से जगत का आविर्भाव स्वीकार करता है। प्रकृति को यहाँ जड़ और पुरुष चेतन कहा गया है। प्रकृति सत्त्व, रज तथा तम नामक तीन गुणों की साम्यावस्था का परिणाम मानी गयी है। इन गुणों में वैषम्य होने पर भिन्न-भिन्न पदार्थों का उद्भव स्वीकार किया गया। प्रकृति से महान्, महान् से अहंकार, अहंकार से पाँच तन्मात्राएँ उत्पन्न होती हैं जिनमें पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ पाँच महाभूत और एक मन उत्पन्न होकर प्रकृति पदार्थों की संख्या चौबीस हो जाती है। पुरुष को मिलाकर यह संख्या पच्चीस हो जाती है। तत्त्वों की संख्या के कारण ही इस दर्शन का नामकरण सांख्य दर्शन हुआ है।

सांख्य दर्शन सत्कार्य वादी है। इस दर्शन के अनुसार कार्य अपने सार रूप कारण में पहले से ही विद्यमान रहता है। कार्य और कारण में केवल आकार का ही भेद है, अन्यथा तात्त्विक दृष्टि से दोनों अभिन्न है। यह दर्शन कार्य को कोई नवीन पदार्थ न मानकर कारण को ही एक व्यक्त रूप मानता है। उसकी दृष्टि में पुरुष तथा प्रकृति का विवेक न होने से ही संसार का अस्तित्व है। दोनों की विवेकावस्था में मोक्ष निश्चित है। सांख्य मतानुयायियों ने सत्कार्यवाद के समर्थन में अनेक युक्तियाँ दी हैं। सांख्यकारिका के अनुसार-

असद कारणाद् पादानग्रहणात् सर्व सम्भवा भावान्।
शक्तस्य शक्य करणात् कारण भावाच्च सत्कार्यम्॥

इसके उद्‌भावक ऋषि कपिल कहे जाते हैं। कपिल के शिष्य 'पंचशिखा' ने 'षष्ठितन्त्र' की रचना कर सांख्य तन्त्र को व्यापक स्वरूप प्रदान किया। प्रचलित सांख्य सिद्धान्तों के प्रतिपादक ग्रन्थ के रूप में विक्रम की प्रथम शताब्दी में लिखित ईश्वर कृष्ण की 'सांख्यकारिका' ही सर्वाधिक सम्मानित है। 'सांख्य-कारिका' की प्रसिद्ध व्याख्यायें हैं- भाष्टवृत्ति, उक्तिदीपिका तथा तत्त्वकौमुदी आदि।

योग दर्शन

योग दर्शन हिन्दुओं का सर्वाधिक प्राचीन और समीचीन दर्शन है। योग का अर्थ है मिलन तथा समाधि। भारतीय मान्यतानुसार एक ओर जहाँ भगवान को प्राप्त करना या उससे मिलना ही योग है वहीं दूसरी ओर सम्यक् प्रकार से भगवान से मिल जाना ही समाधि का वास्तविक अभिप्राय है। कामना, वासना, आसक्ति तथा संस्कारों का त्याग करने पर ही ईश्वर का मिलना संभव है। 'जीव और ब्रह्म' के बीच के स्वजातीय, विजातीय एवं स्वगतभेद को दूर कर उसमें मिल जाना ही योग है।

योग का तात्त्विक अर्थ चित्त की एकाग्रता पर इच्छा शक्ति का प्रयोग मात्र है। यहाँ इसका अर्थ चित्त की एकाग्रता अथवा समाधि हो जाता है। योगके भी दो प्रकार हैं। प्रथम में साधक अपनी सत्ता समाप्त करके ईश्वर या ब्रह्म में उसी प्रकार विलीन हो जाता है जैसे सागर की तरंगें अपनी सत्ता समाप्त कर उसी सागर में लीन हो जाती हैं । दूसरे में साधक अपनी कुछ स्वतन्त्र सत्ता में रहता है और वह पूर्ण रुप में ईश्वर में लय नहीं हो जाता।

योग दर्शन के अनुसार

'योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः।'

अर्थात् चित्तवृत्तियों का एकाग्र भाव से निरोध ही योग है। योगदर्शन का परम लक्ष्य ईश्वर का सान्निध्य प्राप्त करना ही है। इसमें ईश्वर को पाने के लिए मंत्रयोग, हठयोग, लययोग एवं राजयोग नामक चार साधनाओं का वर्णन किया गया है। इसके लिए आठ श्रेष्ठ मार्ग हैं-

यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, ध्यान, धारणा, तथा समाधि।

एक दर्शन के रूप में योग का सांख्य के साथ घना सम्बन्ध है। प्रारंभिक अवस्था में योग का उद्देश्य निस्सन्देह प्रायेण प्राणायाम, आसन और गंभीर चित्तैकाग्रता के अभ्यास द्वारा ऐसी लोकोत्तर शक्तियों को प्राप्त करना था जो

भारतीय विचारधारा में पूर्व से ही प्रख्यात थीं। किन्तु दर्शन के रुप में इसको सांख्य के प्रभाव के अन्दर ही विकसित किया गया है। सांख्य से इसका वास्तविक भेद केवल इतना ही है कि प्रारंभ से ही किसी देवता के साथ ऐक्य प्राप्ति की इच्छा से अनुवद्ध होने के फलस्वरूप योग सांख्य के पच्चीस तत्वों के रूप में उपास्यदेव या ईश्वर के लिए भी एक स्थान देने का आग्रह करता है। इस पुरुष या ईश्वर का सूक्ष्म प्रकृति के साथ नित्य सम्बन्ध रहता है और वह शक्ति, ज्ञान और कारुण्य का स्थान है। इसी के कारण योग को सेश्वर सांख्य और सांख्य को निरीश्वर सांख्य भी कहा जाता है।

योग दर्शन के प्रवर्तक आचार्य हैं पतंजलि। आपने विक्रम के दो सौ वर्ष पूर्व अपने सूत्रों में राज योग का विस्तृत वर्णन किया था। 'याज्ञवल्क्य स्मृति' के अनुसार 'हिरण्य गर्भ' योग के आद्यप्रकाशक थे और पतंजलि ने प्रतिपादित शास्त्र का उपदेश मात्र किया। किन्तु 'योगसूत्र' आज भी महर्षि पतंजलि के नाम से ही विख्यात है। इसे व्यास के नाम से प्रसिद्ध 'योग भाष्य' की सहायता से सुगमतापूर्वक समझा जा सकता है। योगसूत्र मुख्यतया चार भागों में विभक्त है। इन्हें क्रमशः समाधि का स्वरूप, उसका साधन, उसके द्वारा अलौकिक सिद्धियों की प्राप्ति तथा पूर्ण समाधि से प्राप्त कैवल्य आदि विषयों का निरूपण किया गया है। ईश्वर के साथ जीव के सम्बन्ध का निरूपण क्रिया योग अथवा योग की आचार-नीति के रूप में किया जाता है। अभीष्ट समाधि प्राप्ति के लिए जिन अभ्यासों की आवश्यकता होती उन पर योगीन्द्र की 'हठ योग प्रदीपिका' में विस्तृत विचार किया गया है।

मीमांसा दर्शन

भारतीय दर्शनों में मीमांसा दर्शन का अपना पृथक् महत्व है। यह दर्शन अत्यन्त प्राचीन है। मीमांसा दर्शन का उद्देश्य वैदिक कर्मकाण्ड के विधानों में दृश्यमान विरोधों का परिहार कर वैदिक उक्तियों के अर्थ का निरूपण करना है। श्रुतिकाल में ही इस दिशा में ऋषियों की दृष्टि गयी थी। वैदिक संहिताओं में प्रयुक्त 'मीमांसासते' आदि क्रियापद तथा मीमांसा आदि संज्ञापद इसी के प्रमाण हैं। मीमांसा दर्शन कर्म पर विशेष बल देते हुए वेद को अपौरुषेय एवं नित्य मानता है। मीमांसा विषयक साहित्य की प्रचुरता इसकी महत्ता के प्रतीक हैं। मीमांसा सूत्र का मौलिक लक्ष्य वैदिक कर्म काण्ड करने के प्रसंग में ग्रन्थों के व्याख्या विषयक नियमों का विन्यास है। मनुष्य का कर्तव्य है कि वह यथोचित रीति से यज्ञ का अनुष्ठान करे और इसके लिए वेद ही एक मात्र प्रमाण है। मीमांसा सूत्र एक पद्धति विशेष का विकास करता है जो सामान्यतः सभी भारतीय शास्त्रों में मान्य है। इसे धर्मशास्त्रियों की भी मान्यता प्राप्त है। इसमें विषय को उपस्थित किया जाता है। और संशय को उठाया जाता है, पूर्वपक्ष को रखा जाता है, तदन्तर सत्य निर्णय का उपवृंहण किया जाता है और

प्रकृति विषय का दूसरे सम्बद्ध सिद्धान्तों के साथ सम्बन्ध स्थापित किया जाता है। मेध तिथि से लेकर ऐसी धर्मशास्त्रीय कठिनाइयों के निर्णय में मीमांसा के नियमों का उपयोग किया जाता रहा है जो परस्पर विरुद्ध पर प्रमाण-भूत अनेक ग्रन्थों की धर्मशास्त्रीय सम्प्रदायों में मान्यता के कारण उठा करती थीं। यह ठीक उसी प्रकार होता था जैसे वैदिक ग्रन्थ मीमांसा का संकलन करनेवालों के सामने असंख्य असंगतियों को सामने लाते थे।

मीमांसा दर्शन के अनुसार मीमांसा सूत्रों की रचना विक्रम से पाँच-छः सौ वर्ष पूर्व महर्षि जैमिनि ने की थी। इसमें अन्य सभी दर्शनों के सूत्रों से अधिक सूत्र हैं।

महाभाष्य में काशकृत्स्न आचार्य विरचित मीमांसा का भी उल्लेख हुआ है किन्तु यह उपलब्ध नहीं है। विक्रम के तीन सौ वर्ष उपरान्त शबर स्वामी ने 'द्वादश लक्षणी मीमांसा' पर विस्तृत और प्रामाणिक भाष्य लिखकर मीमांसा दर्शन को व्यापकता प्रदान की। शाबर भाष्य के तीन प्रमुख टीकाकार हैं कुमारिल भट्ट, प्रभाकर मिश्र तथा मुरारि मिश्र। इनके मत क्रमशः भट्टमत, गुरुमत तथा मुरारिमत कहलाते हैं। इन तीनों महापुरुषों ने अपने-अपने सम्प्रदायों में शिष्य-प्रशिष्यों की विशाल परम्परा दी है।

'श्लोक वार्तिक' पूर्व मीमांसा-सूत्र का प्रचलित भाष्य है। जनश्रुति के आधार पर विख्यात है कि कुमारिल भट्ट ने बौद्धों के संपीडन के लिए उत्तेजना दी थी, किन्तु इस विचार के समर्थन का आधार केवल वेदों के मुख्य शत्रु के रूप में बौद्धों के विरुद्ध उनकी कटु भावना ही हो सकती है। वे बुद्ध को सर्वज्ञ मानने के सिद्धान्त की हँसी उड़ाते हैं जिनको समझने की योग्यता उनका कोई भी समकालीन नहीं रखता था। बुद्ध का अनुसरण करनेवालों की भी वे हँसी करते थे। वे कहते हैं कि यदि दूसरों को सुख प्रदान होने से ही न्याय का निर्माण किया जा सकता तब तो गुरुपत्नी के सतीत्व का विलोप भी उसके लिए सुखप्रद होने के कारण महापाप के स्थान पर न्याय ही होगा।

दक्षिण भारतीय मनीषी कुमारिल का कहना है कि अवदान किये गए शब्दों के साथ संस्कृत प्रत्ययों का प्रयोग करना चाहिए। वे साहित्य और प्रचलित रीतियों का भी सविस्तर उल्लेख करते हैं। कुमारिल की प्रतिभा अत्यन्त महान् है।

प्रभाकर से कुमारिल के पर्याप्त मतभेद हैं किन्तु आप दोनों शबरस्वामी के साथ इस मान्यता में सहमत हैं कि जीवात्मा नित्य है। दोनों विद्वान् मात्रा के सिद्धान्त को अस्वीकार करते हैं। प्रभाकर मिश्र उद्भट विद्वान् थे। मण्डन मिश्र,

शंकर मिश्र, माधव, नारायण भट्ट आदि मीमांसक निज विशेषताओं के लिए सुविख्यात हैं।

उत्तर मीमांसा

वेदान्त दर्शन को ही उत्तर मीमांसा से अभिहित किया जाता है। वेदान्त शब्द का अर्थ है उपनिषद्। उपनिषदों को वेदों के सिद्धान्त के प्रतिपादक होने के कारण ही वेदान्त कहा गया है। उपनिषद् अनेक हैं और उनके सिद्धान्तों में ही आपाततः विरोध प्रतीयमान होता है। इस विरोध के परिहार के लिए महर्षि बादरायण व्यास ने जिन सूत्रों की रचना की उन्हें ब्रह्मसूत्रों के नाम से पुकारा जाता है।

वेदान्त दर्शन भारतीय आध्यात्म चिन्तन का मुकुटमणि है। पूर्व मीमांसा और उत्तर मीमांसा के सूत्रों के निर्माण की समकालीनता स्पष्ट है। जहाँ पूर्व मीमांसा आत्रेय, वादरि और बादरायण का निर्देश करती है वहीं उत्तर मीमांसा सूत्र के क्रम जैमिनि, आत्रेय, काशकृत्स्न और स्वयं वादरायण का भी उल्लेख मिलता है। स्पष्ट है कि दोनों सूत्रों की रचना स्वयं वादरायण या जैमिनि ने नहीं वरन् उनके विचारों को जाननेवाले सम्प्रदायों ने की। पूर्व मीमांसा ने जिन प्रश्नों पर पर्याप्त विचार किया गया है उन्हें ब्रह्मसूत्र में छोड़ दिया गया है। ऐसा इसलिए भी हो सकता है कि वेदान्त सम्प्रदाय वाले पूर्व मीमांसा की बातों को यथेच्छ अपनाने में दार्शनिक सिद्धान्तों को विशेष समुन्नत करने के साथ-साथ जैमिनि के उन विचारों को जो उन्हें रुचिकर नहीं थे, छोड़ने के लिए अपने आप के स्वतन्त्र समझते थे। वेदान्त के अभिनव सम्प्रदायों के नाम हैं-

१. शंकर - शारीरिक भाष्य - अद्वैत मत

२. भास्कर - भास्कर भाष्य - भेदाभेद

३. रामानुज - श्री भाष्य - विशिष्टाद्वैत

४. मध्व - पूर्व प्रज्ञ - द्वैत

५. निम्बार्क - वेदान्त पारिजात - द्वैताद्वैत

६. श्री कंठ - शैव भाष्य - शैव विशिष्टाद्वैत

७. श्री पति - श्री कर भाष्य - वीर शैव विशिष्टाद्वैत

८. वल्लभाचार्य - अणुभाष्य - शुद्धाद्वैत

९. विज्ञान भिक्षु - विज्ञानामृत - अविभाग द्वैत

१०. बलदेव - गोविन्द भाष्य - अचिन्त्य भेदाभेद

मूल ब्रह्मसूत्र में पाँच सौ सूत्र हैं किन्तु प्रायः सभी सूत्र इतने सूक्ष्म हैं कि बिना किसी भाष्य या व्याख्या के उनका अर्थ स्पष्ट नहीं हो पाता। इसी कारण आचार्य ने अपनी-अपनी दृष्टि के अनुरूप इन सूत्रों की विस्तृत व्याख्यायें लिखी हैं। वेदान्त साहित्य की मान्यता निर्विवाद है।

महामहोपाध्याय गंगानाथ झा मूलतः मीमांसक थे। कौलिक परम्परा भी तद्वत आचरण की ही अनुमति देती थी। मीमांसक आचार्यों से प्राप्त ज्ञान गंगाबाबू के निकट आकर मौलिक उद्भावनाओं के रूप में विकसित हुआ। आप पूर्व मीमांसा के अपूर्व पण्डित हुए। मिथिला की सुविख्यात परम्परा को इस दिव्य प्रतिभासम्पन्न मीमांसक से अपूर्व बल मिला। प्रभाकर से प्रभावित सर झा ने 'प्रभाकर स्कूल आफ़ पूर्व मीमांसा', 'प्रभाकर थ्योरी आफ एरर', पूर्व मीमांसा इन इट्स सोर्सेज, न्याय फिलासफी आफ गौतम, वैशेषिक दर्शन, शांकर वेद्रान्त, ए नोट आन दि शाबर भाष्य जैसी कालजयी कृतियों की रचना की।

अपने अभिन्न मित्र जिन्हें सर झा ने **'The guiding Spirit of my life'** माना है उन्हीं गोविन्ददास जी के सहयोग से आप 'थियोसाफिकल सोसाइटी' के सम्पर्क में आए। यहीं आपकी भेंट कर्नल आलकॉट तथा श्रीमती एनी बेसेंट से हुई। अठारह वर्ष पूरा होते ही आप थियोसाफिकल सोसाइटी के सदस्य बन गये। अपने आपको सर झा कट्टर थियोसाफिस्ट मानते थे। आपने स्वीकारा है कि-

'जिस प्रकार का जीवन मैंने व्यतीत किया है वह गोविन्ददास और थियोसाफिकल सोसाइटी के सौजन्य से ही सम्भव है।'

Theology या अध्यात्म विद्या में सर झा की आत्यन्तिक अभिरुचि थी। इस विद्या का प्रायेण वेदान्त के विचारों से घनिष्ठ सम्बन्ध है। वेदान्त सम्बन्धी विकासों की तरह जो सांख्य में अतिशयेन प्रभावित है और जिसकी उन विचारों के साथ प्रबल समानताएँ हैं जिनकी व्यवस्थित व्याख्या योगदर्शन में पर्यवसित होती है, ऐसी अध्यात्म विद्या-सम्बन्धी और रहस्यवाद सम्बंधी विमर्श की यहाँ प्रभूत सामग्री विद्यमान है।

'योग वाशिष्ठ' इस विद्या का प्रमुख ग्रन्थ है। अहिर्बुधन्य संहिता, ईश्वर-संहिता तथा वृहद्ब्रह्मसंहिता अन्य महत्वपूर्ण सहयोगी ग्रन्थ हैं। सर झा ने इसी विचारधारा से प्रभावित होकर 'दि फिलोसाफिकल डिसिप्लिन' एवं 'योगदर्शन' जैसी कृतियों की रचना की।

हिन्दू लॉ इन इट्स सोर्सेज, योगदर्शन, वेदान्त दीपक, प्रिन्सिपुल्स ऑफ हिन्दू रेलिजियोसोशल रीजेनरेशन, श्लोक वार्तिक आदि सर झा की अन्य महत्वपूर्ण कृतियाँ हैं। अपने प्रकाण्ड वैदुष्य के कारण सर झा भारतीय तथा यूरोपीय विद्वत्मण्डली में [illegible] भाव से आदृत रहे। महामहोपाध्याय पण्डित

जयदेव मिश्र और पं. शिवकुमार मिश्र के इस शिष्य का संस्कृत जगत ने सदैव अभिनन्दन किया। मित्र गोविन्ददास का स्नेह, पत्नी इन्दुमती की प्रेरणा, पं. बच्चा झा जैसे नैयायिक का आशीर्वाद, डॉ. भेनिस से प्राप्त अनुशासित अध्ययन क्षमता और पण्डित धरानाथ झा जी से प्राप्त आध्यात्मिक संस्कार ने इस नक्षत्र को अपना आलोक प्रसरित करने का दिव्य आधार प्रदान किया। अंगरेजी तथा संस्कृत के प्रकाण्ड पण्डित, प्राध्यापक, प्राचार्य, कुलपति, समाजसेवी, विनियामक, गायत्री भक्त सर गंगानाथ झा का व्यक्तित्त्व अत्यधिक विराट् है। शिक्षा जगत में कोई ऐसा सम्मानित पद नहीं जिसे सर झा ने सुशोभित न किया हो। पं. मदनमोहन मालवीय के मित्र रूप में बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय के निर्माण में प्रत्यक्ष तथा परोक्ष सहयोगी डॉ. गंगानाथ झा को शिक्षा जगत विस्मृत नहीं कर सकता। प्रयाग विश्वविद्यालय में सबसे पहले हिन्दी तथा उर्दू का पाठ्यक्रम पृथक् करने की अनुशंसा कर आपने जो हिन्दी की सेवा की उसके लिए समस्त हिन्दी जगत आपका ऋणी रहेगा। लेजिस्लेटिव काउन्सिल के सम्मानित सदस्य के रूप में आपने पुरुषोत्तम दास टंडन के साथ मिलकर हिन्दी को सम्मानित करने का विनम्र प्रयास किया था।

संस्कृत शिक्षकों को अंग्रेजी अध्यापकों के समान सम्मान तथा वेतन निर्धारण के लिए प्रथम संघर्ष सर झा ने ही किया। भारतीय संस्कृति के सम्पोषक सर झा का सम्पूर्ण जीवन एक आध्यात्मिक निधि है। इनमें गायत्री का तेज, वेद की गरिमा और उपनिषद् की चारुता है। विशाल साहित्यिक कृतियाँ, समृद्ध भाषा कोश, वैदुष्यपूर्ण छात्र परम्परा, पारिवारिक संस्कार और विश्वव्यापी ख्याति हमें आभास नहीं होने देते कि सर झा अब नहीं हैं। १८७१ ई. में उदित इस नक्षत्र का वर्ष १९४१ ई. में अस्त हो गया। किन्तु उसका दिव्यालोक आज भी कोई अध्येता सहज ही अनुभव कर सकता है। सर झा के व्याख्यानों में, उनकी वाणी में युग का सत्य अनुस्यूत है, और वस्तुतः सत्य से ही पृथ्वी धारण की जाती है, सत्य से ही सूर्य धारण किया जाता है, सत्य से ही वायु चलती है और सत्य पर ही सब कुछ प्रतिष्ठित है-

सत्येन धार्यते पृथ्वी सत्येन धार्यते रविः।
सत्येन वाति वायुश्च सर्वं सत्ये प्रतिष्ठितम्॥

*

II

डॉ. गंगानाथ झा : एक व्यक्ति और एक परम्परा

अज्ञानतिमिरान्धस्य ज्ञानाऽजनशलाकया।
चक्षुरुन्मीलितं येन तस्मै श्रीगुरवे नमः॥

मिथिला में आध्यात्मिक चेतना का प्रचार प्रसार अत्यन्त प्राचीन काल से ही होता रहा है। महाराज हरिसिंह देव ने जब तेरह अत्युच्च कुलीन ब्राह्मणों को 'अवदात' कहकर श्रेष्ठता प्रदान की तो इन्हीं में से एक कुल के लोग दरभंगा से दस मील पश्चिमोत्तर दिशा में पाली नामक ग्राम में जाकर बस गए। ये सभी पलिबाड़ नाम से जाने गए। कालान्तर में यही परिवार दरभंगा से तीस-पैंतीस मील दक्षिण-पूर्व महिसी नामक ग्राम में जा बसा। तभी से उनके वंशज 'पलिबाड़ महिसी' मूल के रुप में विख्यात हैं। इस परिवार पर भगवती भारती की बड़ी कृपा रही है। महान् वेदज्ञों का यह परिवार श्रोत्रिय परिवार के नाम से जाना जाता था। श्रोत्रिय उपाधि इस बात का प्रमाण है कि उपाधिधारी व्यक्ति ने वेद की किसी न किसी शाखा का सांगोपांग अध्ययन अवश्य किया है।

आपस्तम्ब कहते हैं-

'वैदस्यैकैकां शाखामधीत्य श्रोत्रियो भवति।'[१]

महाभारत के आरणेय पर्व में यक्ष युधिष्ठिर से प्रश्न पूछते हुए कहता है-

केनस्विच्छ्रोत्रियो भवति केनस्विद् विन्दते महत्।

अर्थात् हे राजन्! मनुष्य श्रोत्रिय किससे होता है और महत् पद को कैसे प्राप्त करता है?

युधिष्ठिर ने सादर कहा-

श्रुतेन श्रोत्रियो भवति तपसा विन्दते महत्।

---

१ महाभारत - आरर्णेय पर्व

अर्थात् हे यक्ष ! वेदाध्ययन के द्वारा मनुष्य श्रोत्रिय होता है और तप के द्वारा महत्पद की प्राप्ति करता है।

वेदाध्यायी रहने के कारण पलिबाड़ महिषी मूल के अध्यवसायियों पर लक्ष्मी की अकृपा बनी रही। अठारहवीं शताब्दी में महाराज दरभंगा ने 'अवदातों' की विभिन्न शाखाओं को दरभंगा जिला के बीस मील की परिधि के भीतर बसाने का आदेश दिया। पलिबाड़ महिषी के पं. लक्ष्मीदेव झा पुराण प्रसिद्ध गाँव सरिसब में आ बसे। इस ग्राम-तीर्थ की महिमा सर्वविदित थी। इस अक्षय तीर्थ को प्रणाम कर आपने अपने लिए नवीन परिवेश का निर्माण किया। वासभूमि से प्राप्त शाक-सब्जियों तथा अन्न-कन्दों से ही इन वेदाध्यायियों का जीवन निर्वाह होता था। बाद में महाराज दरभंगा के द्वारा ऐसे सभी अवदातों को विशेष आर्थिक सहयोग प्रदान किया गया। मुसलमानों के आक्रमण से त्रस्त परिवार ने सरिसब-पाही में विभिन्न सुरक्षित स्थानों पर गृह निर्माण किया। वैयाकरण पण्डित अमृतनाथ झा अपने प्रकाण्ड पाण्डित्य के लिए सुविख्यात थे। आपको अतिविशिष्ट पण्डित होने का पुरस्कार भी प्राप्त हुआ था। उस समय राज परिवार द्वारा वितरित इस उपाधि के बिना अतिरिक्त सम्मान प्राप्त करना कठिन था। यह वह समय था जबकि परिसर के मीमांसक मात्र की संख्या शताधिक थी। यह पूरा परिवार सरल जीवन और सदाचार का दुराग्रही था। इनके पौत्र पण्डित तीर्थनाथ झा में भी इन्हीं गुणों का विकास हुआ। वाल्यावस्था से ही व्यायाम और पूजा-अर्चना की ओर इनका विशेष ध्यान था। आप अर्द्धांग जल में रहकर नित्य सहस्र गायत्री का जाप करते थे। पं. तीर्थनाथ बाबू का ही प्रचलित नाम था पं. धरानाथ झा। समाज में आपकी बड़ी प्रतिष्ठा थी। कठोर व्यायाम से सुडौल शरीर और गायत्री जाप के कारण भव्य ललाट किसी को भी आकर्षित करने के लिए पर्याप्त था।

महाराज माधव सिंह के पश्चात् उनके द्वितीय पुत्र रुद्रसिंहजी महाराज हुए। माधव सिंह के प्रथम पुत्र का असमय ही देहावसान हो गया था। छोटे पुत्र वासुदेव सिंह को पुत्र की प्राप्ति नहीं हुई। मात्र चालीस वर्ष की आयु में आपका देहावसान हो गया। तीन पुत्रियों में सबसे बड़ी पुत्री का नाम था रामकाशी। काशी में राम घाट पर जन्म होने के कारण उनका नाम रामकाशी रखा गया। रामकाशी में शुरू से ही मैथिल संस्कार थे। मृत्यु से पूर्व महाराजकुमार वासुदेव सिंह ने अपनी धर्मपत्नी से कहा था कि कुमारी रामकाशी का विवाह सरिसब के पं. धरानाथ झा से हो। कालान्तर में महाराज कुमार के आदेश की रक्षा हुई और रामकाशी का व्याह पं. धरानाथ झा से हो गया। रामकाशी देवी के रूप में मानों साक्षात् लक्ष्मी का ही पदार्पण हुआ। घर का स्वरूप ही बदल गया। धरानाथ बाबू ने मूल आवास से दक्षिण हटकर एक भव्य हवेली का निर्माण किया। इसके प्रवेश द्वार पर कुलदेवी तारा का सुन्दर मन्दिर बनवाया।

तारा मन्दिर आज भी उस युग पुरुष का पावन स्मरण दिलाने के लिए यथावत् है। यह पूरा परिवार भगवती तारा का उपासक रहा है-

> **वरं देहि महातारे कोलिका प्रियमानसे।**
> **स्वांशं देहि परां शक्ति देहिमह्यं परोत्तमे॥**
> **स्वांशो दत्तो नीलयां तु नेत्रवेशेषु राजते।**
> **यावत्तारुण्यभूमिस्थात्तावदंशो वतिष्ठते॥**[१]

कहते हैं इस परिवार में विद्या वैभव की समृद्धि के मूल में भगवती माँ तारा की असीम अनुकम्पा ही रही है। पं. धरानाथ झा और स्वनाम धन्य रामकाशी देवी का जीवन आदर्श दाम्पत्य का दिव्य स्वरूप लिए हुए था। प्रथम पुत्र विन्ध्यनाथ झा तथा द्वितीय पुत्र गणनाथ झा के उपरान्त दोनों पति-पत्नी को एक पुत्री की प्रतीक्षा थी। किन्तु तृतीय सन्तान के रूप में भी जब दिव्य बालक का जन्म हुआ तो तात्कालिक निराशा हुई। धीरे-धीरे बालक की प्रतिभा सम्पन्नता को देखकर यह निराशा जाती रही। इस बालक का नाम पड़ा गंगानाथ। पिता धरानाथ बाबू और माता रामकाशी देवी दोनों को गंगाजल से अतीव प्रेम था। परिवार के कुछ सदस्य गंगा स्नान से लौटे ही थे। गंगानाथ में शुरु से ही एक सबसे सुन्दर गुण दिखाई देने लगे थे। तीनों भाई अद्भुत प्रतिभाशाली थे। गंगानाथ देखने में सबसे सुन्दर थे। मातामही के निकट गन्धवारि में ही तीनों का लालन-पालन होने लगा। स्व. कुमार वासुदेव सिंह के आश्रित पण्डितों तथा मनीषियों ने इन बालकों की प्रतिभा सम्पन्नता का सहज ही अनुमान लगा लिया।

उस समय तक मैथिल समाज में प्राचीन विचारधाराओं का ही आधिपत्य था। ज्येष्ठ भ्राता विन्ध्यनाथ बाबू का जब यज्ञोपवीत संस्कार हुआ तभी आदरणीयाँ नानी ने उनका विवाह करा दिया। विन्ध्यनाथ झा में प्रारंभ से ही एक अतिरिक्त प्रौढ़ता थी। दोनों भाइयों के बीच पाँच वर्षों के अन्तराल ने उनके अंग्रज स्वरूप को सदैव बनाये रखा। अनुजों पर उनका स्नेह अपूर्व था। दूसरे भाई गणनाथ झा और गंगानाथ झा में अत्यधिक स्नेह था। दोनों भाई साथ सोते, साथ उठते, साथ खाते, साथ पढ़ते और साथ ही खेलते थे। बालसुलभ चेष्टा के क्रम में जब गन्धवारि में गणनाथ ने मिट्टी खा ली तो दण्डस्वरूप उनके मुख में पीसा हुआ मिर्च डाल दिया गया था। मातामही अनुशासन को सर्वोपरि मानती थी। गंगानाथ जब पाँच वर्ष के हुए तो अक्षरारंभ संस्कार कराया था। उस समय तक स्लेट-पेन्सिल से लोग प्रायः नहीं लिखते थे। कुम्हार की मिट्टी को कूटकर उन्हीं से शलाका तैयार की जाती थी। यही शलाका भाठा कहलाती थी। इसी भाठा से अक्षरारंभ हुआ और गुरु ने अन्त में कहा कि इसे हाथ से पोछकर हाथ

---

१ तारा सहस्रनामः सं.डा. गंगानाथ झा.

में लगे अंश को शरीर पर मल लो। बालक गंगानाथ को ऐसा प्रतीत हुआ कि शायद इसीसे विद्या शरीर में प्रविष्ट हो जाती होगी।

गन्धवारि में ही दो ऐसे गुरु मिले जिनसे बाद में काशी में विशिष्ट शिक्षा प्राप्त करने का भी अवसर मिला। श्लोक-कंठस्थ करने का अभ्यास गंगानाथ को अत्यन्त प्रिय प्रतीत हुआ। दोनों भाई घंटों अभ्यास हो चुके श्लोकों से अन्त्याक्षरी खेलते थे। इस विशिष्ट रुचि को आपने जीवन पर्यन्त बनाए रखा। १८७१ ई. में अवतरित इस दिव्य प्रतिभाशाली बालक ने धीरे-धीरे परिजनों पर अपनी धाक बना ली। इस बालक को सभी प्यार करते थे। धीर-गंभीर और वाक्पटु गंगानाथ माता, पिता तथा माँतामही के विश्वासपात्र बन गए। बाल्यावस्था से ही सूर्याराधना में आपकी अतिरिक्त आस्था थी। धार्मिक अनुष्ठानों में पढ़े जानेवाले सभी स्तोत्र आपको कंठस्थ थे। विद्वानों को भी अपनी चमत्कृत प्रतिभा से चकित करनेवाले विन्ध्यनाथ, गणनाथ तथा गंगानाथ के लिए विशेष रूप से अध्यापन की व्यवस्था हुई°।

अंग्रेजी शिक्षक और बेंत

उन दिनों आभिजात्य परिवारों में संस्कृत के साथ अंग्रेजी तथा फारसी शिक्षा का भी प्रचलन था। अंग्रेजी पढ़ाने के लिए एक महोदय आने लगे। पहले दिन ही आपने विद्या की जगह बेंत से अपना प्रभाव जमाना चाहा। उनके मन में अंग्रेजी जन्य अनुशासन की विचित्र भावना थी। अंग्रेजों की भाँति अंगरेजी का अर्थ भी वे शासन ही समझते थे। अनावश्यक रूप से उनके हाथ उठ जाया करते थे। जब वे अपना बेंत उठाते थे तो उन पर एक वहशीपन सा सवार हो जाता। कहने-सुनने का भी उन महोदय पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा। कारण यह था कि तीनों छात्र असाधारण प्रतिभा वाले थे। अशुद्धियों के लिए दंडित करना संभव नहीं था और आदत से वे लाचार थे। अंग्रेजी का भूत उन पर सवार रहता था। दुर्योग से जब यही विन्ध्यनाथ दरभंगा राज के एक अधिकारी नियुक्त हुए उस समय यही महोदय उनसे सहायता की याचना करने आए। गंगानाथ ने परिहास करते हुए पूछा- 'महोदय। आपका वह बेंत कहाँ है ?' अत्यन्त लज्जित स्वर में अपनी भूल स्वीकारते हुए आपने कहा- 'आप यदि बाल्यावस्था के उन क्षणों को स्मरण रखेंगे तो मेरे लिए अत्यन्त दुर्भाग्यपूर्ण होगा। सचमुच मैं अनुचित आचरण करता था।'

जीवन पर्यन्त विन्ध्यनाथ बाबू अंग्रेजी के शिक्षक की सहायता करते रहे।

वाहिद एक, सानी है दूजा।
बुतखाना मण्डप, परस्त है पूजा।

फारसी पढ़ाने के लिए एक खलीफा जी आने लगे। आपका पहनावा अत्यन्त चुस्त रहता था। बड़े नेक दिल और सरल स्वभाव के थे वे। किन्तु

संस्कृत पण्डितों की परम्परागत संस्कार के कारण किसी में भी फारसी सीखने की ललक नहीं थीं। इस बैठक को गंगानाथ मनोरंजन के रूप में गिनते थे। शिक्षक का आदर गुरु शिष्य परम्परा के अनुसार ही होता किन्तु भावुक खलीफाजी इन बालकों को 'अलिफ' और 'बे' के अतिरिक्त और कुछ न सिखला सके। खलीफा साहब की अध्यापन शैली अत्यन्त आकर्षक और शायराना थी। फारसी हिन्दी शब्दों का परिचय कराने के क्रम में आप कहते-

> **वाहिद एक सानी है दूजा।**
> **बुतखाना मण्डप परस्त है पूजा।**

गंगानाथ की गंगा यात्रा

वर्ष १८७८-७९ में धर्म परायणा मातामही ने काशी जाने का निर्णय लिया। कट्टर हिन्दुत्व के कारण आपने रेल से कभी यात्रा नहीं की। अनेक नावों की व्यवस्था हुई। चमथा घाट जाकर वहाँ से नाव द्वारा गंगा-यात्रा आरंभ हुई। फाल्गुन माह का समय जल-यात्रा के लिए उत्तम माना जाता है। इस यात्रा में परिजनों के अतिरिक्त अनेक पण्डित, ज्योतिषी और सेवकादि भी थे। रानी द्वारा पाली गयी गायें भी साथ चल रहीं थीं जिन्हें वे अपने हाथों से खिलाती थीं। अपने शिष्यों के साथ महामहोपाध्याय पं. जयदेव मिश्र तथा महामहोपाध्याय राजनाथ मिश्र भी एक नाव में यात्रा कर रहे थे। बाढ़, पटना, आरा, बक्सर, जमनियाँ और गाजीपुर होते हुए एक माह में बनारस पहुँचकर यात्रा की परिसमाप्ति हुई। यात्रा मध्य सभी सामान्य दैनन्दिनी के पालन का प्रयास करते थे। घने कुहासे के कारण पूर्वाभिमुख स्नान करने वालों को दिशा निर्णय लेने में कठिनता होने लगी। कुहासे के कारण ज्योतिषीय गणना पर भी विश्वास नहीं किया जा सकता था। लोगों की परेशानी सुनकर मातामहीजी ने कहा- 'व्यर्थ माथापच्ची न करें और जाकर गंगा से पूछें। वह जो कह दे उसी को प्रामाणिक मानकर स्नानादि करें।' मातामही प्रारंभ से ही इस बालक को अद्वितीय मानती थीं। गंगानाथ ने जिधर निर्देश किया सब ने उसी दिशा की ओर अभिमुख होकर स्नान, जप आदि किया। कुछ घड़ी बाद उसी ओर से भगवान भास्कर रथारूढ़ हुए। पण्डितों को भी इस बालक के भीतर एक मनस्वी पुरुष के दर्शन हुए।

पण्डित सभा और पं. बाल शास्त्री

काशी प्रवास में मातामही ने पारम्परिक रूप से पण्डितों की सभा बुलायी। गंगानाथ इस समय मात्र सात वर्ष के थे और संस्कृत व्याकरण का विशेष अभ्यास कर रहे थे। यह सभा उनके लिए विशेष आकर्षण की बात थी। इस सभा में काशीस्थ लगभग पाँच सौ पण्डित उपस्थित हुए। प्रत्येक पण्डित का यथोचित सत्कार हुआ था। इसी सभा में सुविख्यात पण्डित बाल शास्त्री भी अपने शिष्यों के साथ पधारे थे। शास्त्री जी का दर्शन एक दिव्यानन्द का विषय

था। उनके साथ उनके प्रिय शिष्य पं. शिव कुमार मिश्र, पं. दामोदर शास्त्री, पं. गंगाधर शास्त्री तथा पं. तात्या शास्त्री भी थे। बाद में ये चारों शिष्य न केवल विख्यात महामहोपाध्याय हुए वरन् अपने-अपने क्षेत्रों में अपूर्व ख्याति अर्जित की। पं. धरानाथ झा की धर्मपरायणता पर विमुग्ध होकर पुनः पं. बालशास्त्री उनके दर्शनार्थ आए हुए थे। बालक गंगानाथ पर पं. शास्त्री का अत्यधिक प्रभाव पड़ा किन्तु दुर्भाग्य से जब वे अध्ययनार्थ पुनः काशी गये तब तक शास्त्री जी का देहावसान हो गया था।

काशी नरेश और उनकी दोस्ती

काशी नरेश राजा उदित नारायण सिंह अत्यन्त प्रतिभाशाली राजा थे। दरभंगा महाराज रुद्रसिंह के साथ उदित नारायण सिंह की अपूर्व मित्रता थी। दोनों ने गंगाजल में बैठकर गंगा माई को साक्षी बनाकर मित्रता का व्रत लिया था। गंगा की कृपा से इस दोस्ती में कभी कोई विलगाव नहीं आया। राजा उदित नारायण सिंह के दत्तक पुत्र महाराजा ईश्वरी प्रसाद नारायण सिंह गद्दी पर बैठे। उस समय ये ईश्वरी प्रसाद ही काशी नरेश थे। राजा ईश्वरी प्रसाद और महाराज कुमार वासुदेव सिंह में सदैव पारिवारिक सदस्य का सा सौहार्द्र रहा। इन्हीं राजा ईश्वरी प्रसाद सिंह ने काशी यात्रा पर आये तीनों भाइयों को रामलीला देखने के लिए आमंत्रित किया। तीनों भाइयों का उत्साह देखते ही बनता था। दशाश्वमेध पर नरेश द्वारा प्रेषित नाव पर बैठकर तीनों भाई रामलीला देखने जाते। हौदा कसे हुए हाथियों पर बैठकर अद्‌भुत रामलीला-दर्शन का अतुलित आनन्द कभी भुलाया न गया।

महाराजकुमार वासुदेव सिंह संस्कृत के प्रकाण्ड पण्डित थे। गन्धवारि में अनेक विद्वान् इनके आश्रम में रहते थे। एक बार आपने पण्डितों की सभा बुलाकर श्रुति के एक उल्लेख को समस्या रुप में रखा और पण्डितों से समस्यापूर्ति का अनुरोध किया। समस्या थी-

अशून्यं तु करं कुर्यात् हिरण्यरजतैः कुशैः।

यहाँ 'हिरण्यरजतैः' पद हिरण्य और रजत शब्द से निर्मित द्वन्द्व समास है इसलिए द्विवचनान्त होना चाहिए बहुवचनान्त नहीं। पण्डित मण्डली में से किसी ने भी इसका संतोषप्रद उत्तर नहीं दिया था। इस घटना का महाराजकुमार ने खेदपूर्वक उल्लेख किया था। इसे पढ़कर गंगानाथ के मन में समाधान की जिज्ञासा जगी। बाद में विस्तृत अध्ययन के उपरान्त जब इसका सही समाधान मिला तो गंगानाथ को लगा कि आज यदि मातामह जीवित होते तो मुझ पर पुरस्कारों की वर्षा कर देते।

तर्जन्यां रजतं धार्यं स्वर्णं धार्यमनामिकया।
एष एव कुशः शाक्ते न च वन्यकुशः कुशः ॥
अशून्यं तु करं कुर्याद् हिरण्यरजतैः कुशैः ॥

यहाँ 'हिरण्य रजतमयैः' का अर्थ सोना चाँदी से बना हुआ है और बहुवचन संज्ञा 'कुशैः' इसका विशेषण है। यहाँ वास्तव में बहुवचनान्त होना चाहिए। शाक्त के लिए कुश वन्य नहीं स्वर्ण-चाँदी का होना चाहिए।

एक वर्ष के काशी प्रवास ने गंगानाथ को अपूर्व शक्ति से समन्वित किया। बड़े-बड़े पण्डितों, मनीषियों को देखकर-सुनकर कुछ विलक्षण करने की प्रेरणा मिली। वापसी में चमथा घाट पर रुककर मातामही ने गंगा किनारे कुछ दिनों तक रुकने का निर्णय लिया। यहाँ गंगानाथ की शिक्षा के प्रसंग में महत्वपूर्ण निर्णय लिया गया। महाराज दरभंगा शिकार से लौट रहे थे। उन्हें जब स्व. बाबू वासुदेव सिंह की पत्नी द्वारा कल्पवास किये जाने की सूचना मिली तो आप कुशलादि जानने के लिए घाट तक गए और वहाँ विश्राम भी किया। तीनों मेधावी बालकों ने उनका मन मोह लिया। आपने सादर कहा कि यदि मातामही आदेश दें तो तीनों बालकों की शिक्षा का प्रबन्ध दरभंगा में हो सकता है। सोत्साह महाराज ने शेष सम्पूर्ण दायित्व निर्वाह का अभिवचन दिया। लड़कों के भविष्य का प्रश्न था। हँसकर राजमहिषी ने इसकी स्वीकृति देदी।

राज स्कूल और दरभंगा

तीनों भाई जब दरभंगा आए तो महाराज ने स्वयं अभिरुचि लेकर इनके लिए शिक्षा का प्रबन्ध किया। दरभंगा राज स्कूल में राज-परिवार के छः सदस्यों के साथ आपलोग भी सम्मिलित हो गए। वर्ष १८७९ तक यह उच्चविद्यालय नहीं था। महाराज के सत्प्रयास से वर्ष १८८० में इसे उच्च विद्यालय के रूप में मान्यता मिल गई। स्कूली जीवन में दो बार गंगानाथ को कक्षोन्नति मिली। महाराज स्वयं अपने परिजनों की शिक्षा में विशेष ध्यान देते थे। वार्षिक परीक्षाफल निकलने के उपरान्त वे सभी सफल छात्रों को यथेष्ट पुरस्कार प्रदान करते थे और असफल छात्रों को टोकते भी नहीं थे। सात वर्षों तक गंगा बाबू दरभंगा राज स्कूल के छात्र रहे। सभी शिक्षक इन्हें पुत्रवत् स्नेह देते थे। ऐसा छात्र मिलने का गौरव वर्षों बाद गुरुओं ने अनुभव किया था।

घुड़सवारी और व्यायाम

बाल्यावस्था से ही गंगानाथ में स्थूलता के लक्षण दिखाई देने लगे थे। महाराज ने जैसे ही अनुभव किया उन्हें नियमित व्यायाम शाला जाने का निर्देश दिया। गंगानाथ व्यायाम करने से परहेज करते थे। फलस्वरुप उनका शरीर मुटापे की ओर बढ़ता जा रहा था। महाराज को जब इसकी सूचना मिली तो

आपने घुड़सवारी के लिए गंगानाथ को एक अच्छा घोड़ा दिया। किन्तु गंगानाथ का घोड़ा कभी पैदल यात्री से अधिक तीव्र न चल सका। स्वयं गंगानाथ ने उसे तेज दौड़ने की अनुमति नहीं दी थी। महाराज को इसकी भी सूचना मिली तो एक दिन स्वयं घोड़ा मँगवाकर गंगानाथ को बैठाया और एक अभ्यस्त बालक को साथ बैठाकर कहा कि- 'हाँको फर्दबाल।' गंगानाथ इतना सुनते ही लगाम छोड़कर रोने लगे। महाराज ने तत्काल ही घुड़सवारी छुड़ा दी और अपने प्रधान पहलवान शिवनन्दन झा को व्यायाम द्वारा गंगानाथ को शारीरिक सुडौल स्वरूप देने का आदेश दिया। यह प्रयास भी जब विफल हो गया तो स्वयं महाराज ने कहा कि यह बालक अध्ययन छोड़ कहीं ध्यान नहीं दे सकता। बौद्धिक व्यायाम की ही व्यवस्था की गई।

महाराष्ट्री अध्यापक से मुक्ति

दरभंगा राज में कार्यालय लिपिक के रूप में कार्यरत महाराष्ट्री सज्जन वेदाध्यायी थे। उनमें योग्यता से अधिक आडम्बर था। महाशय का नाम था पं. भोलानाथ बाल्हे। महाराज ने बौद्धिक व्यायाम के लिए इन्हीं सज्जन को चुना और वेद पढ़ाने के लिए आदेश दिया। बाल्हे साहब परम्परागत शैली से वेद पढ़ाने लगे। मेधा बल पर कुछ ही दिनों में गंगानाथ स्वरांकन प्रणाली से अवगत हो गये और एक अभ्यस्त वेदपाठी की भाँति वेद पढ़ने लगे। एक दिन जब बाल्हे साहब वेद पढ़ा रहे थे तो गंगानाथ को कुछ सन्देह हुआ। बाल्हे साहब राज सेवा में रहने के कारण स्वाध्याय के लिए समय नहीं निकाल पाते थे। गंगानाथ ने कहा कि महाशय आप जैसे पढ़ा रहे हैं पुस्तक में इसके लिए उससे भिन्न स्वर-संकेत है। बाल्हे साहब वर्षों पूर्व वेद से गंभीर सम्बन्ध त्याग चुके थे। गंगानाथ ने जिस आधिकारिक स्वर में कहा था तद्वत पुस्तक निकालकर भी प्रमाणित कर दिया। मलिन मुख बाल्हे साहब ने कहा कि ठीक है आप उसी प्रकार पढ़ें जैसा पुस्तकों में है। बात महाराज तक गई। पूछने पर गंगानाथ ने कहा कि 'हे महाराज ! जिस अध्यापक को विषय का पूर्ण ज्ञान नहीं उनसे पढ़ना अनुचित है।' बाल्हे साहब को तुरंत इस विशिष्ट सेवा से मुक्ति मिल गई।

मल्ल विद्या और नियमित मिष्टान्न

उस समय गंगानाथ बाबू राज स्कूल के छात्र थे। एक दिन गंगानाथ से उम्र और लम्बाई में बड़े एक बालक को लेकर उसके पिता दरबार में आये। महाराज का यथोचित अभिनन्दन कर आपने अपने पुत्र की प्रशंसा में विशेषणों की झड़ी लगा दी। उन्होंने कहा राजन् ! मेरा यह बालक अद्वितीय प्रतिभा का स्वामी है। यह नियमित शताधिक दंड-बैठक करता, अनेक क्लिष्ट व्यायाम करता और छः गायों का दुग्ध पान करता है। इसका शरीर लौह कवच की भाँति है और अपने से दुगुने बालकों को भी पल भर में यह पराजित कर सकता है।

'उसके पिता के बोलने का क्रम चल ही रहा था। दरबार में पिता द्वारा पुत्र की अतिरंजित प्रशंसा महाराज को अनुचित प्रतीत हुई। निकट ही बैठे गंगानाथ को बुलाकर आपने धीरे से कहा-' क्या तुम इस बालक से मल्ल युद्ध करोगे ? 'गंगानाथ ने उस बालक की विशाल काया को देखकर अस्वीकार की मुद्रा बना ली। राजा नें फिर निकट बुलाकर कान में कहा कि देखो गंगानाथ। यह बालक शरीर का बली अवश्य है किन्तु ध्यान दो यह मंद बुद्धि है। यदि तुम फुर्ती से प्रारंभ में ही इसे लंगड़ी मार सको तो यह धराशायी हो जाएगा। यदि तुम ऐसा कर सके तो नित्य तुम्हें आधा सेर रसगुल्ला मिला करेगा।' महाराज ने कुछ ऐसा जादू किया कि गंगानाथ कुश्ती के लिए तैयार हो गए। विशेषज्ञों के समक्ष इसका आयोजन हुआ। बालक और उसके पिता थुलथुल शरीर वाले गंगानाथ को देखकर हँस रहे थे। जैसे ही दोनों मैदान में आए और पंजा मिलाया राजबुद्धि का उपयोग कर गंगानाथ ने उसे चित्त कर लिया। साधुवाद प्राप्त कर वे विजयी भाव लिए लौटे। लगातार तीस वर्षों तक यह रसगुल्ला उन्हें नियमित रूप से प्राप्त होता रहा। अपने भावी जीवन के लिए भी उचित समय पर उचित आचरण के राज मंत्र को आपने स्वीकार लिया। गंगानाथ ने प्रत्यक्ष देख लिया था कि 'बुद्धिर्यस्य बलं तस्य।' वर्ष १८८६ ई. में आपने एन्ट्रेन्स परीक्षा में उत्तीर्णता प्राप्त की। इसी वर्ष अग्रज विन्ध्यनाथ बाबू एफ. ए. परीक्षोत्तीर्ण हुए। विन्ध्यनाथ बाबू के शिक्षकों में डा. भेनिस, प्रो. उमेशचन्द्र सान्याल, विख्यात रसायनशास्त्री प्रो. अभयचन्द्र सान्याल तथा संस्कृत साहित्य के उद्‌भट आचार्य पं. विन्ध्य प्रसाद उनसे अत्यधिक प्रभावित थे। विन्ध्यनाथ बाबू ने जब गंगानाथ की अद्‌भुत मेधा के प्रसंग में बातें कहीं तो डा. भेनिस ने कहा कि किसी तरह उसे भी काशी ले आओ। यहाँ उन्हें यकीनन अच्छी शिक्षा मिल सकेगी। विन्ध्यनाथ बाबू के अनुरोध पर महाराज ने गंगानाथ को काशी जाकर अध्ययन करने की अनुमति दे दी।

क्वींस कालेज और डा. थीबो

मिथिला की मेधा को काशी के पाण्डित्यपूर्ण वातावरण में आकर अपूर्व आनन्द का अनुभव हुआ। वर्ष १८८६ ई. के जुलाई माह में आपका विधिवत नामांकन हो गया। दो माह की अल्पावधि में ही शिक्षकों तथा क्वींस कालेज के प्राचार्य डा. थीबो ने इस अद्‌भुत अपूर्व प्रतिभाशाली छात्र की पात्रता को परख लिया। उस समय छात्रों की संख्या सहस्र में नहीं थी। वर्ष १८८६ में क्वींस कालेज की छात्र संख्या थी-

स्नातकोत्तर - १

स्नातक (चतुर्थ वर्ष) - ४

स्नातक (तृतीय वर्ष) - ४

अन्तरस्नातक (द्वितीय वर्ष) - १२

अन्तरस्नातक (प्रथम वर्ष) - ३०

जिस समय गंगानाथ को क्वींस कालेज में प्रवेश मिला उस समय तृतीय वर्ष की कक्षा में स्वयं विन्ध्यनाथ बाबू भी सम्मिलित थे। सुविख्यात प्राच्यविद् डा. थीबो और अनुभवी विद्वान् प्राध्यापकों के कारण क्वींस कालेज का वातावरण अत्यन्त गरिमापूर्ण था। गंगानाथ ने यहाँ आकर अतिरिक्त उत्साह का अनुभव किया। वरुणा और अस्सी नदी के मध्य अवस्थित वाराणसी में गंगानाथ का मन रम गया। धार्मिक वातावरण, गंगा का सामीप्य लाभ, विश्वनाथ की नगरी, पण्डितों का साक्षात्कार और अध्ययन के लिए उपयुक्त परिवेश में मितभाषी गंगानाथ को लगा कि माता रामकाशी देवी के आशीर्वाद को फलित करने के लिए यहीं रमना होगा। इसी शिवपुरी में पं. शिव कुमार मिश्र और पण्डित जयदेव मिश्र जैसे प्रकाण्ड पण्डितों का अधिवास था। प्रथम संयुक्त परीक्षा में जब युक्त प्रान्त में गंगानाथ प्रथम आए तो डा. वेनिस दंग रह गये। छात्र प्रतिभाशाली है यह वे जान गए थे ! किन्तु सरल चित्त वाले इस मैथिल छात्र में इतनी मेधा है इसे वे भी न जान सके थे। सभी छात्रों ने गंगानाथ की प्रतिभा को मुक्त कंठ से स्वीकार लिया। ईर्ष्या जन्य मनोमालिन्य भाव जाता रहा। उस परीक्षा में गंगानाथ के अंक इस प्रकार थे-

अंगरेजी - ५९% (उच्चतम अंक)

गणित - ६८%

इतिहास - ७१%

संस्कृत - ७३%

आजकल छात्रों को प्राप्त होनेवाले अंकों से इस अंक की तुलना नहीं की जा सकती। उस समय का पाठ्यक्रम अत्यन्त क्लिष्ट था। एफ. ए. की कक्षा में जिन विषयों को पढ़ना होता था उसमें अंग्रेजी साहित्य में मिल्टन, वर्ड्सवर्थ, कॉपर, मेकॉले, और एडिसन के साथ-साथ आठ पुस्तकें थी। संस्कृत पत्र में रघुवंश के छः सर्ग और दशकुमार चरित का अंश विशेष पढ़ना होता था। तृतीय पत्र में यूनान और रोम का इतिहास, चतुर्थ पत्र में तर्कशास्त्र, पंचम पत्र में भौतिकी और षष्ठ पत्र में गणित पढ़ना होता था। गणित भी उच्चतम स्तर का था जिसमें घानाकी सिद्धान्त का बीजगणित, त्रिकोणमिति, क्षेत्रमिति और शंकु - परिच्छेद सम्मिलित था। आजकल के छात्रों को इन विषयों को पढ़ने का सौभाग्य नहीं प्राप्त है। स्नातक स्तर के पाठ्यक्रमों में विज्ञान अथवा कला में से किसी एक का चयन करना होता था। वैज्ञानिक पाठ्यक्रम 'बी' श्रेणी और साहित्यिक पाठ्यक्रम 'ए' श्रेणी में परिगणित होता था। द्वितीय वर्ष समाप्त होने के बाद

गंगानाथ एफ. ए. में कलकत्ता विश्वविद्यालय की परीक्षा में सम्मिलित हुए। सम्पूर्ण पश्चिमोत्तर प्रान्त में आपका स्थान प्रथम रहा। इस सफलता के लिए जहाँ छात्रवृत्ति मिली वहीं उच्चअंक प्राप्ति के लिए स्वर्णपदक भी मिले।

स्नातक स्तर में वर्ष १८८९ में यह विचारणीय हो गया कि आप पटना जाकर कलकत्ता विश्वविद्यालय की परीक्षा में सम्मिलित होवें या प्रयाग विश्वविद्यालय द्वारा आयोजित परीक्षा में सम्मिलित हों। गुरुजन तथा मित्रों सहित विन्ध्यनाथ बाबू ने भी काशी रहकर ही अध्ययन करने का विचार दिया। विन्ध्यनाथ बाबू को प्रथम मैथिल स्नातक होने का गौरव प्राप्त है। दरभंगा महाराज द्वारा अपनी सेवा में बुला लिये जाने के कारण उनकी स्नातकोत्तर कक्षा वाधित हो गयी। उसके बाद जीवन पर्यन्त विन्ध्यनाथ बाबू ने राज दरभंगा की सेवा की। दूसरे भ्राता गणनाथ बाबू को चक्षुदोष हो गया था। वर्ष १८८७ में आपने कलकत्ता विश्वविद्यालय से प्रथम श्रेणी में एन्ट्रेन्स परीक्षा पास की। पारिवारिक कार्य के लिए उन्हें गाँव बुला लिया गया। इसी कारण आप आगे नहीं पढ़ सके। स्वयं गंगानाथ बाबू ने स्वीकारा है कि मेधा और बौद्धिक क्षमता में गणनाथ बाबू सर्वोपरि थे। बाद में स्वाध्याय के बल पर उन्होंने ज्योतिष और तन्त्र में विशेष दक्षता प्राप्त की। जीवन के अन्तिम वर्षों को आपने काशी रहकर एकान्तवास के रूप में बिताया।

स्नातक स्तर में गंगानाथ ने अंग्रेजी, संस्कृत और दर्शनशास्त्र के साथ 'ए' श्रेणी पाठ्यक्रम का चयन किया। इसी समय वर्ष १८८७-८८ में प्रयाग विश्वविद्यालय की स्थापना हुई। डा. थीबो क्वींस कालेज से स्थानान्तरित होकर म्योर सेन्ट्रल कालेज चले गए। आपके बाद एक वर्ष तक चार्ल्स डॉड प्राचार्य बनकर आए।

प्रो. डब्लू. एच. राइट और इन्साइक्लोपीडिया

चार्ल्स डॉड के उपरान्त म्योर कालेज के अंगरेजी के प्राध्यापक प्रो. डब्लू. एच. राइट स्थायी प्राचार्य बनकर पधारे। राइट साहब परम दयालु और सुयोग्य शिक्षक थे किन्तु उनमें एक विचित्र आदत थी। अपनी कक्षा में आप इनसाइक्लोपीडिया के सभी खण्डों को तथा सभी उपलब्ध वृहत्काय अंग्रेजी शब्दकोशों को सामने टेबुल पर रखा करते थे। 'पैराडाइज लास्ट' अध्यापन के समय वे इन ग्रन्थों से लम्बे चौड़े नोट्स लिखाते थे। शब्दकोशों की टिप्पिणियाँ भी लिखाना नहीं भूलते थे। कई छात्र इसे अनावश्यक मानते थे। किन्तु राइट महोदय की दृष्टि में ऐसे नोट्स अध्यापकों और छात्रों के लिए अत्यधिक उपयोगी और अनिवार्य थे।

एक दिन लेखनी जन्य अवरोध के कारण गंगानाथ उनका नोट्स नहीं लिख रहे थे। ध्यान जाते ही राइट महोदय ने कहा- 'यदि आपने यह नोट्स नहीं

लिखा तो कदापि प्रथम श्रेणी नहीं पा सकेंगे।' गंगानाथ ने जब सादर अपनी स्थिति विशेष से उन्हें अवगत कराया तो राइट महोदय ने भी खेद प्रकाश किया। राइट साहब विद्वान् थे और छात्रों के प्रति अत्यधिक सदय थे। जब गंगानाथ झा ने दर्शनशास्त्र में प्रतिष्ठा के साथ स्नातक में प्रथम स्थान प्राप्त किया तो प्रसन्न होकर राइट साहब ने कहा- 'तुम जैसे छात्रों से हम प्राध्यापक अपने को गौरवान्वित अनुभव करते हैं।' बाद में आनेवाले छात्रों से वे सगर्व कहते थे कि गंगानाथ झा मेरे छात्र रह चुके हैं।

आप जैसे छात्र के योग्य नहीं: डा. भेनिस

डा. भेनिस अंगरेजी भाषा के निष्णात व्याख्याता थे। प्राचार्य के साथ आप भी स्नातक स्तर में अंगरेजी पढ़ाते थे। अंग्रेजी के अतिरिक्त आप दर्शन शास्त्र की भी कक्षा लिया करते थे। इन दोनों विषयों में डा. भेनिस से योग्य शिक्षक की कल्पना भी नहीं की जा सकती। अपने छात्रों को प्रोत्साहित करने का उनका ढंग निराला ही था। साक्षात् या प्रत्यक्ष प्रशंसा को वे छात्रों के लिए अहितकर मानते थे। सामयिक उत्तर-पुस्तकाओं का वे अत्यन्त गंभीरतापूर्वक मूल्यांकन करते थे और अन्त में अपनी अभ्युक्ति भी लिखते थे। गंगानाथ की प्रतिभा सम्पन्नता और कुशाग्र बुद्धि को वे जानते थे। उनकी एक उत्तर-पुस्तिका का मूल्यांकन कर उच्चांक देते हुए भी आपने लिखा-

'आप जैसे छात्र के योग्य नहीं।'

वास्तव में यह टिप्पणी पीठ ठोक कर प्रशंसा करने से कहीं अधिक महत्वपूर्ण थी। अपनी अभ्युन्नति में गंगानाथ बाबू सर्वाधिक श्रेय डा. भेनिस का ही मानते हैं।

संस्कृत प्राध्यापक पं. दूबे जी और मलार की तान

संस्कृत के अध्यापक पं. विन्ध्यप्रसाद दूबे जी अत्यन्त मेधावी किन्तु सरल चित्त के व्याख्याता थे। वे प्रकृति प्रेमी थे। लगातार चलनेवाली कक्षा में जब वे संस्कृत पढ़ाने आते तो छात्रों का अनुरोध होता कि वे शांतिपूर्वक छात्रों को संस्कृत श्लोकाभ्यास की अनुमति प्रदान करें। दूबे जी कहते कि- 'भला ये कैसे हो सकता ? बड़े साहब नाराज न होंगे।' छात्रों का यह उत्तर कि- 'उन्हें हमलोग पूर्व पाठ का अभ्यास कर रहे हैं, ऐसा कहा जाएगा' सुनकर वे कहते- 'तथास्तु' अभ्यास किया जाय।' छात्रों से उनका व्यवहार पूर्णतया पारिवारिक था। उनके अध्यापन काल में यदि विद्युल्लता के साथ वर्षा की बूंदे पड़ने लगती तो अध्यापन मध्य में ही रोककर आप कहते-

'तनिक ठहरो ! अभी थोड़ी देर मलार की तान ले लें।'

दूबे जी सिपाही विद्रोह की कथा को मार्मिक ढंग से सुनाते थे कि किस प्रकार ग्रिथिथ साहब के प्रमाण-पत्र ने ब्रिटिश सैनिकों से उनकी रक्षा की थी। गोरों की फौज को वे 'घाघरे वालों की पल्टन' कहा करते थे।

परीक्षाफल के आधार पर कला पक्ष में जितने पुरस्कार मिलते थे सबके अधिकारी होते गंगानाथ। स्नातक परीक्षा में प्रथम स्थान प्राप्त कर गंगानाथ अपने प्राध्यापकों के भूषण बन गए। पिता के दिवंगत हो जाने के कारण अनेक पारिवारिक विसंगतियों ने उन्हें घेर लिया। उस समय क्वींस कालेज में एम. ए. पढ़ाई की व्यवस्था नहीं थी। आपसे कहा गया कि यदि म्योर महाविद्यालय में नामांकन करावें तो छात्रवृत्ति अवश्य मिलेगी। म्योर महाविद्यालय में अन्य विषयों की अपेक्षा संस्कृत अध्यापन का स्तर अत्युच्च नहीं था। यह बात गंगानाथ झा स्वयं जानते थे।उस समय ७५ प्रतिशत अंक प्राप्त करने पर ही उस विषय में प्रतिष्ठा मिलती थी। गंगाबाबू को दर्शनशास्त्र में और उनके मित्र सतीशचन्द्र बनर्जी को अंग्रेजी में प्रतिष्ठा मिली थी। एम.ए. में दर्शनशास्त्र रखने पर आप एक वर्ष में ही एम.ए. की परीक्षा दे सकते थे किन्तु सांस्कृतिक परिसर के इस संस्कृत भक्त का ध्यान मूलतः संस्कृत पर ही टिका हुआ था। क्वींस कालेज के प्राचार्य महोदय ने विशेष नियमों के आधार पर महाविद्यालय छात्र के रूप में उत्प्रेषित करने का आश्वासन दिया। अब गंगानाथ देवनागरी में देवभाषा संस्कृत का अध्ययन करने लगे। स्नातकोत्तर स्तर में सर्वाधिक सहायक हुए परमादरणीय आचार्य पंडित जयदेव मिश्र।

क्षीयन्ते खलु भूषणानि सततं वाग्भूषणं भूषणम्

महामहोपाध्याय पं. जयदेव मिश्र बाबू वासुदेव सिंह के आश्रय में रहकर अध्ययन कर चुके थे। गन्धवारि ड्योढ़ी का उन पर बहुत बड़ा ऋण था। गंगानाथ जैसे मेधावी और प्रतिभा सम्पन्न छात्र को पाकर जहाँ वे धन्य हुए वहीं उन्हें राज परिवार के प्रति आभार प्रकट करने का भी अवसर लाभ हुआ। गंगाबाबू नित्य महामहोपाध्याय से जाकर पढ़ने लगे किन्तु प्राचीन पण्डितों की अध्यापन-शैली में पारस्परिक दुराग्रह के कारण कठिनाइयाँ भी हुई। परीक्षकों में अधिकांश यूरोपीय थे जो छात्रों से तदनुरूप उत्तर की अपेक्षा रखते थे। कतिपय व्यवधानों के उपरान्त आप एम.ए. की परीक्षा में सर्वोच्च अंक के साथ उत्तीर्ण हुए। परीक्षकों में से एक थे पण्डित आदित्यराय भट्टाचार्य। काव्यशास्त्र और अलंकारशास्त्र में अनेक प्रश्नों का समुचित उत्तर पाकर आप गंगानाथ से बहुत प्रभावित हुए और अपने विषय में सर्वोच्च ७०% अंक प्रदान किया।

एम.ए. में उत्तीर्ण होने के पश्चात महाराज की इच्छा थी कि गंगानाथ कानून का व्यवस्थित रूप से अध्ययन करें। तदनुरूप एल.एल.बी. की परीक्षा के लिए पढ़ाई शुरूकी। कानून की कक्षा में अध्यापक थे बाबू वीरेश्वर मित्र। आप

काशी के शीर्षस्थ वकीलों में से थे। उनका व्याख्यान विद्वत्तापूर्ण और उपयोगी होता था किन्तु गंगाबाबू को यह विशेष लाभ न पहुँचा सका। आपने विन्ध्यनाथ बाबू को पत्र लिखा कि कानून में उनकी कोई अभिरुचि नहीं। उनका मत न्याय-मीमांसा और आध्यात्म-दर्शन की त्रिवेणी में ही चक्कर काटता रहता है। इसलिए कृपापूर्वक महाराज से अनुरोध करें कि वे गंगानाथ को संस्कृत में विशेष अध्ययन का आदेश दें। उदार चरित महाराज ने वांछित आदेश देते हुए कहा कि व्यय की चिन्ता छोड़ जब तक अध्ययन की इच्छा हो पढ़ें। यह सूचना पाकर गंगानाथ धन्य हुए। काशी रहकर संस्कृत के विशेष अध्ययन की उनकी योजना स्वरूप ले चुकी थी।

कठोर दिनचर्या

स्वयं गंगानाथ ने अपने मित्र के सहयोग से अपने लिए एक कठोर दिनचर्या का निर्धारण किया। प्रातःकाल सात से नौ बजे तक दरभंगा पाठशाला के प्रकाण्ड पण्डित महामहोपाध्याय शिवकुमार मिश्र से पढ़ने जाते थे। मिश्र जी अपने वैदुष्य के लिए अखिल भारतीय ख्याति प्राप्त कर चुके थे। आवास आकर नौ से दस बजे तक पढ़े गए मुख्य पाठों का अंग्रेजी अनुवाद करते थे। दस बजे महामहोपाध्याय पण्डित जयदेव मिश्र से व्याकरण और न्याय पढ़ने जाते थे। यथेष्ठ अध्ययनोपरान्त वहाँ से काशी के वयोवृद्ध पण्डित महामहोपाध्याय कैलाश शिरोमणि भट्टाचार्य के यहाँ जाकर दर्शन शास्त्र पढ़ते थे। यदा-कदा महान् शास्त्रज्ञ पं. गंगाधर शास्त्री से भी शास्त्र-चर्चा करने जाते थे। दिन भर जो पढ़ते थे रात्रि विश्राम से पूर्व उसे अंग्रेजी में लिखते थे। पारिवारिक गतिरोध के कारण यह दिनचर्या अधिक दिनों तक नहीं चल सकी।

पाठो विवाहावधिः

वर्ष १८८९ ई० में पण्डित हर्षनाथ झा की कन्या से गंगानाथ झा का विवाह होना तय हो गया। 'अष्टवर्षा भवेत् गौरी' की परम्परा को मानने वाले हर्षनाथ बाबू ने इस वर्ष को विवाह के लिए उत्तम माना। गाँव आकर धूमधाम से आपका विवाह सुसम्पन्न हुआ। पत्नी इन्दुमती अत्यन्त धर्मपरायणा और विदुषी थी। मृत्यु पर्यन्त आप सर झा के साथ ही रहीं। शादी के उपरान्त जब गंगाबाबू काशी गये तो मित्र गोविन्ददासजी ने पूछा-

'कहिये आपकी कठोर दिनचर्या का क्या हुआ ?' हँसते हुए गंगानाथ झा ने उत्तर दिया आपको ज्ञात नहीं- 'पाठो विवाहावधिः'।

आपका दाम्पत्य जीवन अत्यन्त सुखी रहा। पत्नी से सर झा का कैसा लगाव था यह उनकी मृत्यु के उपरान्त लिखी गई कविता के इस अंश से स्पष्ट हो जाता है-

सभ के त्यागि कतय गेलि
कत गेलि प्राण पियारि
कोन विधि जिवन निमाहब
बिनु सहचरि सुकुमारि ।।

विवाह के एक वर्ष के भीतर ही परिवार के तीन सदस्यों का अवसान गंगानाथ बाबू को विचलित कर गया। मात्र सोलह वर्ष में बहन को वैधव्य की पीड़ा का भोग करना पड़ा। इसी समय बड़ी भाभी का भी देहावसान हो गया था।

पिता पं. धरानाथ झा की अन्तिम काशी यात्रा

स्नातक की परीक्षा से ठीक एक माह पूर्व विन्ध्यनाथ बाबू का तार आया कि- 'एक आवास की व्यवस्था करके रखें, वे पिताजी को साथ लेकर आ रहे हैं।' यह सूचना गंगानाथ के लिए अत्यन्त दुःखद थी।

पं. धरानाथ बाबू का स्वास्थ्य काफी दिनों से क्षीण चल रहा था। पहले जब परिजनों ने कहा कि आपका स्वास्थ्य प्रतिकूल है इसलिए आप काशी जाकर रहें तो उन्होंने कहा था कि- 'इसके लिए में यथासमय निर्देश दूँगा।'

कुछ दिनों के उपरान्त एकाएक आपने अपने ब्राह्मण परिचारक से कहा कि काशी की अन्तिम यात्रा का प्रबन्ध किया जाय। यह यात्रा मेरी महायात्रा के निमित्त है इसलिए तदनरूप वस्तुओं का यथाशीघ्र संग्रह कर लिया जाय। दरभंगा जाने पर महाराज ने स्थानीय सिविल सर्जन से स्वास्थ्य परीक्षण करवाया तो उन्होंने कहा कि तीन वर्षों तक इन्हें कुछ नहीं होगा। महाराज ने सानुरोध कहा कि- जब सिविल सर्जन कह रहे हैं तब अभी काशी जाने की क्या आवश्यकता ? धरानाथ बाबू स्वयं पण्डित थे। हँसते हुए कहा- महाराज आपके सिविल सर्जन कुछ नहीं जानते हैं। काशी के लिए आह्वान हो चुका है।

काशी में मुंशीघाट स्थित महाराज की कोठी में ही वे ठहराये गये। इसी को दरभंगा घाट के नाम से भी जाना जाता है। यहाँ से गंगा एकदम साफ दिखाई देती हैं। कुछ ही दिनों बाद एकाएक आपने कहा कि- 'विन्ध्यनाथ मुझे मणिकर्णिका ले चलो।' आदेशानुसार उन्हें मणिकर्णिका ले जाया गया। वहाँ उन्हें श्वासावरोध हो रहा था। अत्यधिक पीड़ा के लक्षण दिखाई देने लगे थे। प्रयाग से आते ही गंगानाथ उनके निकट गए। अपने इस पुत्र के प्रति पिता का अपार स्नेह था। गंगाबाबू ने पूछा कि- कुछ खाने की इच्छा हो रही है ? उत्तर में वे मौन रहे। अपने साथ लाये विशिष्ट आम की जब उन्होंने चर्चा की तो पिता ने स्वस्ति दे दी। गंगानाथ ने स्वयं चैत माह का दुर्लभ आम और दही का आहार दिया। यही उनका अन्तिम पार्थिव भोजन था।

मध्याह्ने मणिकर्णिकास्नपनजं पुण्यं न वक्तुं क्षमः

उस समय काशी में एक वयोवृद्ध मैथिल पण्डित रहते थे। उनका नाम था पं. मनोहर झा जी। वे महायात्रा के विशेषज्ञ माने जाते थे। उन्हें सम्पूर्ण काशी खण्ड कंठस्थ था। वे धरानाथ बाबू को देखने के लिए आए। लक्षणादि देखकर कहा कि महापुरुष का देहावसान मध्याह्न काल में होगा। उस समय मणिकर्णिका की पुण्यकारिता चरम पर होती है। उन्हें देखने के लिए काशी नरेश के दरबारी पण्डित भी आए। उन्होंने भी लगभग यही समय कहा। धरानाथ बाबू का कष्ट बढ़ गया था। ठीक मध्याह्न वेला में वे ही महाशय पं. मनोहर झा जी तीव्र गति से आये और काशी खंड का जोर-जोर से पाठ आरंभ किया। काशी महात्म्य पूरा होते ही शरीर से पीड़ा के लक्षण समाप्त हो गए। उन्हें भूमि पर दाहिने करवट लिटाया गया था। मनोहर बाबू ने कहा कि- 'गंगानाथ इन्हें शीघ्रता से बायें करवट कर दें। मैं सूक्ष्म दृष्टि से अत्यन्त विलक्षण दृश्य देख रहा हूँ। अहा ! स्वयं शिव इन्हें मुक्ति मन्त्र देने के लिए पधार चुके हैं। दायाँ कान उपर कीजिए देवाधिदेव महामन्त्र प्रदान करेंगे।'

सचमुच चमत्कार हुआ। जैसे ही पार्श्व परिवर्तन हुआ शरीर शिथिल हो गया और देहावसान हो गया।

यहाँ दो और आश्चर्यजनक घटनाएँ हुईं। जब तक शव को स्नानादि से निवृत्त कराया गया तब तक एक विषधर नाग फण काढ़े वहाँ बैठा रहा। जब उन्हें चिता पर लिटाया गया उसी समय एक साधु वेषधारी पुरुष वहीं एक शिला खण्ड पर आकर बैठ गया। वह शव के गले से रुद्राक्ष की माला माँग रहा था। ऐसा नहीं होने पर भी वह अन्तिम प्रहर तक चिता को देखता रहा। अपने पिता के अवसान का गंगानाथ को अत्यधिक कष्ट हुआ।

अभिन्न मित्र गोविन्ददास जी

जिस समय गंगा बाबू ने क्वींस महाविद्यालय में प्रवेश लिया उस समय गोविन्ददास द्वितीय वर्ष के परम मेघावी छात्र थे। प्रथम साक्षात्कार में ही दोनों ने अनुभव किया कि उन्हें अपना मनचाहा मित्र मिल गया है। फिर तो गंगानाथ का अधिकांश समय दुर्गाकुण्ड में ही बीतने लगा। गोविन्ददास और उनके अनुज भगवानदास का स्नेह पाकर गंगानाथ धन्य हुए। गोविन्द दास के यहाँ अनेक विद्वान् आते रहते थे। यहीं पण्डित हरिनाथ से भी परिचय हुआ जो बाद में सन्यास ग्रहण कर मनीषानन्द तीर्थ बने। गोविन्ददास में अद्‌भुत प्रतिभा थी। वे अक्सर सायंकालीन व्यायाम के उपरान्त विशद् साहित्य-चर्चा करते थे। वहाँ मेघदूत और अन्य संस्कृत श्लोकों का सस्वर पाठ भी होता था। गोविन्ददास की प्रेरणा से ही गंगानाथ ने 'थियोसाफिकल सोसाइटी' में जाना प्रारंभ किया।

कहते हैं काशी को महर्षि व्यास का शाप है कि यहाँ आरंभ की गई मित्रता तीन पीढ़ियों तक नहीं रहती। किन्तु गंगानाथ और गोविन्ददासजी के प्रसंग में इस धारणा का कोई महत्व नहीं रहा। अभी तक दोनों परिवारों के सदस्यों में एक परिवार के सदस्यों का-सा सौहार्द्र है। पण्डित हरिशास्त्री मानेकर के साथ दोनों मित्र घंटों वाद-विवाद किया करते थे। एक बार ग्रीष्मावकाश बिताने के लिए दोनों ने हरिद्वार जाने का निर्णय लिया। हरिद्वार में गंगा किनारे बैठकर किसी सांस्कृतिक चर्चा में इस प्रकार लिप्त हुए कि पूरे बीस घंटे वहीं बैठे रहे। बाद में दोनों ने अपने-अपने संस्मरणों में लिखा कि- 'उस रात हरिद्वार में हमने जो पाया वह असाधारण है।'

व्यास और गणेश

दोनों मित्र एक दूसरे को व्यास और गणेश कहते थे। हरिद्वार में ही गंगा तट पर गोविन्ददास ने व्यास-गणेश शैली में अपनी एक पुस्तक गंगानाथ झा से लिपिबद्ध कराई थी। दुर्योग से उसका प्रकाशन गोविन्ददासजी के अवसानोपरान्त ही संभव हुआ। दोनों में अभिन्न मैत्री भाव था। गोविन्ददास ने अपनी एक पुस्तक गंगानाथ को समर्पित करते हुए लिखा है- 'More than my brothers are to me.' वास्तव में सोदर भ्राता से भी बढ़ कर स्नेह था उनका। और जब गंगाबाबू को अपने आदरणीय मित्र के प्रसंग में लिखने का अवसर मिला तो आपने लिखा-

' The guiding spirit of my life'

आपने अपने मित्र को जीवन पथ पर आरूढ़ होने के लिए प्रथम पथ प्रदर्शक तक कहा है। यह मनीषियों की मित्रता थी। दुख-सुख में गोविन्ददास का साथ कभी न छूटा। काशी से लौटने में अत्यधिक खेद के लिए सबसे महत्वपूर्ण कारण थे गोविन्ददास और उनका सौहार्द्र।

स्वामी मनीषानन्द तीर्थ

दुर्गाकुण्ड की सांस्कृतिक गोष्ठियों में नियमित आनेवाले में पं. हरिनाथ भी अग्रगण्य थे। दार्शनिक विषयों पर पण्डित हरिनाथ और भगवान दास में जो चर्चा होती थी उसे सभी गंभीरतापूर्वक सुनते थे। भगवानदास उस समय दर्शनशास्त्र में एम.ए. की तैयारी कर रहे थे। यह प्रमादालाप कभी-कभी मध्य रात्रितक चलता रहता था। विशेष रूप से उस दिन जब मेघदूत और नैषध के

पदों का सस्वर पाठ किया जाता था। मेघदूत के श्लोक को पढ़ते हुए पण्डित हरिनाथ भाव विह्वल हो जाया करते थे-

> **तस्मिन्नद्रौ कतिचिदबलाविप्रयुक्तः स कामी**
> **नीत्वा मासान्कनकवलय-भ्रंशरिक्तप्रकोष्ठः।**
> **आषाढ़स्य प्रथमदिवसे मेघमाश्लिष्टसानुं**
> **वप्रक्रीडापरिणतगजप्रेक्षणीयं ददर्श ॥**[१]

पं. हरिनाथ ने स्वाध्याय के बल पर अपूर्व ज्ञान अर्जित किया था। पं. हरिनाथ अत्यन्त मितभाषी थे। वर्ष १८९० में सूचना मिली कि आप सन्यासी हो गए। तीनों मित्र उनसे मिलने गुफाबाग उद्यान गए। घटना सत्य व्यवस्था हो। सन्यास के नियमानुसार आप अपने परिवार से कुछ ग्रहण नहीं कर सकते थे। गंगाबाबू ने अपने मित्रों के साथ मिलकर व्यवस्था की जिसके अनुसार तैयार फलाहार सामग्री गोविन्ददासजी के घर से नियमित आता था। उसी दिन पं. हरिनाथ नाम का तिरोभाव हुआ और स्वामी मनीषानन्दतीर्थ का आविर्भाव हुआ। वे पूर्णतया सन्यासी हो गए। कुछ गुरुजनों तथा मित्रों की उपेक्षा के कारण ही आपने सन्यास ग्रहण कर लिया। जीवन के कटु-मधु अनुभवों ने केवल स्वाध्याय को ही प्रेरित किया। बाद में काशी नरेश द्वारा प्रदत्त एक घर में वे रहने लगे। जीवन पर्यन्त काशी नरेश उन्हें स्वाध्याय के लिए तीस रुपये प्रतिमाह प्रदान करते रहे। सन्यास ग्रहण के एक वर्ष के उपरान्त गोविन्ददास के दुराग्रह पर आपने गंगाबाबू को 'छान्दोग्य उपनिषद्' का एक अंश पढ़ाना स्वीकार किया। किन्तु वे पूर्णतः पारम्परिक शैली में शिक्षा देते थे। हाथ में कुश लेकर स्वीकारना होता था-

> **'समित्पाणिः श्रोत्रियं ब्रह्मनिष्ठमुपससाद।'**

मेधा की उस मूर्त्ति को अध्यापन का अवसर मिलता तो वे किसी भी अध्यापक से बीस प्रमाणित होते। किसी भी विषय पर अपने विचार वे इस प्रकार प्रस्तुत करते थे। कहीं कोई प्रश्न शेष नहीं रह जाता। दुर्भाग्य, उस विद्वान् मनीषी को सन्यासी बनना पड़ा जो दिव्य ज्ञानी और अध्यवसायी थे।

कविवर पं. रघुवीर प्रसाद

स्नातक स्तर में आपको एक अद्भुत प्रतिभा से परिचय हुआ। आप थे आरा जिला के मसौढ़ी निवासी पं. रघुवीर प्रसाद मिश्र। मिश्र जी भी

---

१ मेघदूत पूर्वमेघ- कविकुल गुरु कालिदास, श्लोक सं. ॥ २ ॥

महामहोपाध्याय जयदेव मिश्र के प्रिय शिष्य थे । रघुवीर मिश्र अंग्रेजी पढ़ने के अभिलाषी थे । स्वयं जयदेव मिश्र गंगानाथ के भाषाधिकार की चर्चा किया करते थे । रघुवीर मिश्र के अनुरोध पर नित्य आधा घंटा आप उन्हें अंगरेजी पढ़ाने लगे । पं. रघुवीर मिश्र आशु कवि थे । श्लोक रचना की उनमें जन्मजात प्रतिभा थी । उन्हीं से प्रेरणा प्राप्त कर गंगानाथ झा ने १८८० ई. में 'कतिपय दिवसोद्गम प्ररोहः' शीर्षक से पचास स्वरचित श्लोकों का संग्रह प्रकाशित किया । जीवन के अन्तिम प्रहर में पण्डित रघुवीर प्रसाद मिश्र ने गंगा बाबू से कहा कि 'छात्र जीवन में मैंने आपको जिस पद्य रचना की शिक्षा दी उसमें आप निष्णात हुए और इस विद्या में सदैव आगे बढ़ते गए । किन्तु बन्धु ! आपकी अंग्रेजी को मेरा पण्डित संस्कार चाहकर भी ग्रहण न कर सका । अब तो सब धुला-पुछा प्रतीत होता है ।'

दरभंगा आगमन तथा राजसेवा

राजसेवा - मनुष्याणामसिधारावलेहनम् ।
पञ्चाननपिरिष्वङ्गो व्यालीवदनचुम्बनम् ।।'

सत्य है कि विद्वान् मनुष्य के लिए राज सेवा कृपाण की धार चाटने, सिंह का आलिंगन करने और सर्प के मुख को चूमने के समान है ।

गंगाबाबू के व्यक्तित्व निर्माण में दरभंगा राज के योगदान को अनदेखा नहीं किया जा सकता । आप पर स्वयं महाराज की बड़ी कृपा थी । पश्चात् हुए मनोमालिन्य के अनेक कारण थे । महाराज ने जब गुप्त रूप से ईंगलेण्ड जाने की योजना बनाई थी तो उनके तीन सलाहकारों में एक सर झा भी थे । महाराज इनकी मेधा को जानते थे । उनकी इच्छा थी कि दरभंगा में एक विश्व स्तर का पुस्तकालय बने । इसके लिए सर्वथा सुयोग्य व्यक्ति की आवश्यकता थी । पुस्तकालय का लघु रूप राज-प्रासाद में सुरक्षित था । महाराज जानते थे कि प्रतिभा सम्पन्न होते हुए भी गंगानाथ बाबू का ध्यान प्रशासनिक सेवा की ओर नहीं है । इस पाण्डित्य- मूलक कार्य के लिए गंगानाथ झा सर्वोपयुक्त प्रतीत हुए। गंगाबाबू एक सौ रुपया प्रतिमाह की वृत्ति पर राज पुस्तकालय के पुस्तकाध्यक्ष नियुक्त हुए । यह कार्य उनकी अभिरुचि के सर्वथा अनुकूल था । यहाँ पर सर्वाधिक अध्ययन का सुयोग भी प्राप्त हुआ । प्रातःकाल सात बजे पुस्तकालय पहुँचकर अपराह्न तक नवीन पुस्तकों की सूची तैयार कर गंगाबाबू आवास लौट जाते थे । सायंकाल कंदुक क्रीड़ा में सम्मिलित होकर दरबार में बैठते थे । दरभंगा में अध्ययन के लिए समय और सामग्री का अभाव नहीं रह गया ।

डॉ. भेनिस का विश्वास

यूरोपीय शिक्षकों में एक बात अवश्य थी कि वे अपने छात्रों की मेधा शक्ति के आकलन में कोई भूल नहीं करते थे। जिस छात्र पर उन शिक्षकों का विश्वास जम जाता, जीवन पर्यन्त उसे विस्मृत नहीं करते। गंगानाथ जैसी प्रतिभा काशी से लौट जाय यह डा. भेनिस की इच्छा नहीं थी। गंगाबाबू जब पुस्तकाध्यक्ष रूप में दरभंगा राज में कार्यरत थे उसी समय डा. भेनिस का पत्र प्राप्त हुआ। उस पत्र में आपने पूछा था कि- 'क्या आप कुमारिल के ग्रन्थों का अनुवाद कर सकते हैं ?'

महामहोपाध्याय चित्रधर मिश्र

इस प्रस्ताव-पत्र ने काशी के मनस्वी गंगानाथ के छात्र रूप को जगा दिया। वही कठोर दिनचर्या फिर से लागू हुई। उस समय दरभंगा राज के पण्डितों में महामहोपाध्याय पं. चित्रधर मिश्र की अत्यधिक ख्याति थी। वयोवृद्ध पण्डित में मेधावी छात्रों के प्रति अतिरिक्त अनुराग था। दरबार के इस प्रधान पण्डित से जब गंगानाथ बाबू ने अनुरोध किया कि कृपा करके उन्हें कुमारिल के सभी ग्रन्थ पढ़ा दें तो उनकी सहर्ष स्वीकृति मिल गई। बूढ़े पण्डित की अनुभवी आँखों ने गंगानाथ की मेधा का सहज ही आकलन कर लिया। इस मनस्वी के आचार्य होने का लाभ कौन नहीं प्राप्त करना चाहेगा ? वे स्वयं गंगाबाबू के आवास पर आकर तीन-तीन घंटा तक 'श्लोकवार्तिक' का अध्यापन करने लगे। गंगानाथ की कुशाग्रता और उत्साह को देखकर वे अतिरिक्त समय भी देने लगे। गुरु को जब अपनी इच्छा के अनुकूल शिष्य मिलता तो वास्तविक विद्या दान की इच्छा का सहज ही विकास होता। उपयुक्त पात्र को देखकर पं. चित्रधर मिश्र ने अपनी सम्पूर्ण निधि गंगानाथ को सौंपने का निर्णय कर लिया। किन्तु मिश्र जी का अध्यापन के लिए गंगाबाबू के निवास तक आना स्वयं गंगाबाबू को प्रिय नहीं लगा। कभी जो मिथिला एक समय में नौ सौ मीमांसकों की भूमि रही थी वहाँ उस समय मात्र तीन मीमांसक थे। गंगाबाबू ने महामहोपाध्याय से निवेदन किया कि आपने मुझ पर बड़ी कृपा की है। कृपा कर अपने आवास तक आकर अध्ययन करने की अनुमति प्रदान करें। आपका यहाँ आकर अध्यापन करना मर्यादा विरुद्ध है। अब तो मीमांसक गुरु को यह विनयशील व्यक्तित्व कुछ और ही प्रतीत होने लगा। नित्य प्रातःकाल जाकर गंगाबाबू उनसे 'तन्त्रवार्तिक' पढ़ने लगे। समय हो जाने पर वहीं से वे पुस्तकालय चले जाते थे। दिन भर अध्ययन कर रात में पठित अंशों का अंगरेजी अनुवाद करते थे। वर्ष १९०२ में लगातार परिश्रम के उपरान्त 'श्लोकवार्तिक' और 'तन्त्रवार्तिक' का अनुवाद पूरा हुआ। डा. भेनिस महोदय की इच्छा का अनुपालन कर गंगानाथ ने मानो अपना श्रद्धा सुमन समर्पित किया।

सुविख्यात भाषाविद् पं. हर प्रसाद शास्त्री

इस समय तक भाषावैज्ञानिक हर प्रसाद शास्त्री की ख्याति चतुर्दिक फैल गई थी। शास्त्री जी कलकत्ता संस्कृत महाविद्यालय के संस्कृत विभागाध्यक्ष थे। पं. हर प्रसाद शास्त्री ने अपने एक सहयोगी को संस्कृत ग्रन्थ के हस्तलेखों से सम्बद्ध अनुसन्धान के लिए दरभंगा प्रेषित किया। सहयोगी विद्वान् को निर्देश था कि वह दरभंगा में विद्वान् पुस्तकाध्यक्ष गंगानाथ झा जी से मिलकर इस कार्य के लिए आवश्यक जानकारी तथा सहयोग प्राप्त करे। सहयोगी सज्जन जब गंगानाथ झा जी से मिले तो उन्हें आपका पूरा सहयोग मिला। प्रभूत नवीन सूचनाओं, संपादित कार्य के साथ जब वे कलकत्ता लौटे तो शास्त्रीजी अत्यधिक प्रसन्न हुए। गंगाबाबू पर उनकी आस्था पहले से ही थी। अब अतिरिक्त आदर भाव भी रखने लगे। अनेक दुर्लभ ग्रन्थों पर गंगानाथ झा की टिप्पणी शास्त्रीजी को अत्यन्त उपयोगी प्रतीत हुईं। इसी समय 'श्लोकवार्तिक' और 'तन्त्रवार्तिक' के कुछ अनूदित अंश को गंगाबाबू ने हरप्रसाद शास्त्री को प्रेषित करते हुए लिखा कि- 'कृपापूर्वक अपना अभिमत प्रेषित करें। साथ ही इस बात पर विचार करें कि क्या इसका प्रकाशन संभव है ?'

कुछ ही दिनों बाद इस सुविख्यात भाषाविद् का पत्र आया। शास्त्रीजी ने समीक्षोपरान्त लिखा था कि दोनों ग्रन्थ इतने उपादेय हैं कि एसियटिक सोसाइटी ऑफ बंगाल इसे सहर्ष प्रकाशित कर सकता है।

उस समय पं. शास्त्री सोसाइटी के अवैतनिक भाषावैज्ञानिक सचिव थे। सम्पूर्ण पाण्डुलिपि मंगवाकर दोनों ग्रन्थों को आपने प्रकाशित करवाया और इस प्रकार प्रकाशन से प्राप्त प्रथम ख्याति और सम्मानजनक राशि शास्त्री जी के सहयोग से ही प्राप्त हुई। यह राशि उस समय दस सहस्र लगभग थी जो किसी भी लेखक को उत्साहित करने के लिए पर्याप्त थी। पं. हरप्रसाद शास्त्रीजी का यह उपकार गंगाबाबू जीवन पर्यन्त विस्मृत न कर सके।

दरभंगा प्रवास के क्रम में ही आपने 'योगसार संग्रह' और 'योग भाष्य' का अनुवाद किया।'प्रसन्नराघव' नाटक पर 'भक्तिकल्लोलिनी' नाम की संस्कृत टीका भी लिखी।

निर्भीक चिकित्सक डा. जे.एम. कोट्स

महाराज लक्ष्मीश्वर सिंह अनन्य शिक्षा प्रेमी थे। विद्वानों और मनीषियों का आश्रयस्थल था दरभंगा राज। दुर्योग से प्रतिभा सम्पन्न और भारतीय संस्कृति के संपोषक राष्ट्रप्रेमी महाराज को एक जीर्ण रोग हो गया। चिकित्सकीय भाषा में इसे 'ब्राइट्स डिजीज' कहा जाता था। उनकी चिकित्सा कलकत्ता मेडिकल कालेज के प्राचार्य डा. जे.एम. कोट्स कर रहे थे। कोट्स महोदय अत्यन्त सरल

चित्त के प्रतिभाशाली चिकित्सक थे। सेवा-निवृत्त होने के उपरान्त महाराज ने आपको अपना निजी चिकित्सक नियुक्त कर लिया। कोट्स महोदय की चमकीली आँखों में व्यक्ति को परखने की अपूर्व क्षमता थी। ईसाई होते हुए भी आप विभिन्न धर्मों का सम्मान करते थे। पारस्परिक गुण-दोष की समीक्षा से आपको कोई परहेज नहीं था। एक दिन हास्य प्रसंग में ही गंगाबाबू और श्री नन्दनजी (बाबू जनेश्वर सिंह) ने कोट्स महोदय से कहा कि- 'ईसाई धर्म है अत्यन्त सुविधाजनक। मात्र इसी धर्म में यह सुविधा है कि नाना प्रकार के पापों का भोग कर ईसामसीह से क्षमा माँग लीजिए।'

पादरी द्वारा प्रायश्चित्त करवाने की परिपाटी पर किये गये व्यंग्य को कोट्स महोदय ने गंभीरतापूर्वक लिया और इस समस्या पर भारतीय दृष्टिकोण की समीक्षा की। अत्यधिक ईमानदार, धार्मिक, सत्यव्रती और कर्तव्यनिष्ठ होने के कारण अंग्रेज अधिकारीगण कोट्स महोदय से जलते थे। आयरलैंडवासी कोट्स भारतीय संस्कृति के उपासक और भारत भक्त थे। उस समय महाराजा ने अपनी राजनैतिक छवि को काफी विस्तार दिया था। जमिन्दारों में सर्वाधिक लोकप्रिय तथा आदरणीय महाराज दरभंगा ही थे। सोनपुर मेला पहले और भी अधिक प्रसिद्ध था। उस मेला में विभिन्न अधिकारियों सहित बड़ा लाट और छोटा लाट भी पधारते थे। उस समय बंगाल के छोटा लाट थे सर चार्ल्स। सर चार्ल्स का दरभंगा महाराज से वैमनस्य हो गया था। विगत यात्रा में आपने पूर्व परम्परानुरूप महाराज का आतिथ्य स्वीकारने से इन्कार कर दिया था। दरभंगा आकर छोटा लाट अन्यत्र टिकें इसे महाराज ने अपना अपमान माना।

मेला के समय सर चार्ल्स मुजफ्फरपुर आ रहे थे। मुजफ्फरपुर में उनके टिकने लायक एक भी उपयुक्त बंगला नहीं मिला। जिला प्रशासन ने ऐसी स्थिति में महाराज दरभंगा से मुजफ्फरपुर स्थित अपना बंगला देने का अनुरोध किया। महाराज को अपना अपमान स्मरण हो आया। आपने छोटा लाट के लिए अपना बंगला देने से यह कहकर इन्कार कर दिया कि 'जब वे दरभंगा आकर अन्यत्र ठहर सकते हैं फिर मुजफ्फरपुर में मेरे आतिथ्य स्वीकारने का प्रश्न ही कहाँ उठता।' इस विषय को लेकर अधिकारियों में काफी उत्तेजना थी।

डा. कोट्स, विन्ध्यनाथ बाबू, बाबू जनेश्वर सिंह तथा पुस्तकाध्यक्ष गंगाबाबू नित्य प्रातःकाल साथ टहलते थे। कभी टहलते हुए राज उद्यान की ओर निकल जाते तो कभी पशुशाला जाकर उनकी क्रीड़ा का आनन्द लेते। इसी क्रम में एक दिन दरभंगा के कलक्टर डॉल्टन महोदय मिल गए। उन्होंने कोट्स महोदय को रोककर पूछा कि-

'कोट्स महाशय, आपके महाराज इस प्रकार का अनुचित व्यवहार क्यों कर रहे हैं ?' डा. कोट्स को बात समझते देर न लगी। आपने तत्काल ही संयत

किन्तु दृढ़ स्वर में कहा- 'क्यों ! मुझे तो उनका व्यवहार संगत और उचित प्रतीत होता।'

इस प्रतिवाद पर डॉल्टन ने अत्यधिक क्रुद्ध होकर कहा- 'महाराज सदैव सरकार के प्रति निष्ठाहीन रहे हैं और मैं देख रहा हूँ कि जबसे आप उनकी सेवा में आयें हैं वे और भी निष्ठाहीन हो गए हैं।' अब निर्भीक स्वभावशाली कोट्स महोदय भी अपने स्वर को संयमित न रख सके। विशिष्ट द्वन्द्व मुद्रा बनाकर आपने कहा- वाह रे डरपोक अधिकारी ! आप सदैव मिथ्या सम्भाषण करते हैं। महाराज दरभंगा कभी भी सरकार के प्रति निष्ठाहीन न हुए। महाशय ! व्यक्ति और सरकार में बहुत अन्तर है। महाराजा तो अपने देश के कल्याणार्थ ईमानदारी से अपने हृदय की बात व्यक्त करते हैं। और सुनिये मेरी बात ! आप जैसे मिथ्यावादी और निष्ठाहीन अधिकारियों के कारण ही भारत में ब्रिटिश राज का सत्यानाश होगा।'

भारतीय नागरिकों के सम्मुख ऐसी फटकार सुनकर डाल्टन महोदय पुनः प्रतिवाद करने का साहस नहीं जुटा सके।

डा. कोट्स की निर्भीकता ने सबका मन मोह लिया। महाराज के प्रति आपकी निष्ठा और डॉल्टन प्रसंग की सूचना महाराज को पटना भेज दी गई। उस समय हेनरी महोदय, जो महाराज के मित्र रह चुके थे, पुलिस महानिरीक्षक थे। हेनरी महोदय को पत्र लिखकर महाराज ने सम्पूर्ण घटना की सूचना दी और राज दरभंगा के साथ-साथ कोट्स महोदय के प्रति किये गये अभद्र व्यवहार का भी उल्लेख कर दिया। हेनरी महोदय नें पत्र को गंभीरता से लिया और चार्ल्स इलियट को महाराज की भावना से अवगत कराया। सम्पूर्ण स्थिति जानकर सर चार्ल्स ने डाल्टन को फटकारा और स्वयं दरभंगा और मुजफ्फरपुर जाकर महाराज का आतिथ्य स्वीकारा। गंगाबाबू और श्रीनन्दनजी ने इस निर्भीक प्रतिवाद के लिए कोट्स महाशय को साधुवाद दिया।

कुछ दिनों तक चिकित्सोपरान्त जब महाराज के स्वास्थ्य में विशेष सुधार दृष्टिगोचर न हुआ तो कोट्स महोदय ने उन्हें कार्ल्सबाड जाकर चिकित्सा कराने का परामर्श दिया। धार्मिक कट्टरता के कारण कार्ल्सबाड जाना सहज नहीं था। गुप्त परामर्श करके योजना बनाई गई। इटालियन स्टीमर रुबालीनों में आरक्षण के बाद भी यात्रा पर जाना अनुचित मानकर महराज ने गंगाबाबू से कहा कि- 'मैं नहीं चाहता कि मेरी यात्रा से गुरुजनों और परिजनों की भावना आहत हो। आप जाइये और कोट्स महोदय से पूछिये कि आरक्षित जहाज का उपयोग कर क्या वे सपरिवार यात्रा करना चाहेंगे ?'

कोट्स महोदय इस प्रस्ताव के लिए प्रस्तुत नहीं थे। वे जान गए थे कि कार्ल्सबाड नहीं जाने से महाराज अधिक दिन जीवित नहीं रह सकेंगे किन्तु परिस्थिति को देखते हुए ससम्मान आपने महाराज का आदेश मान लिया। दरभंगा राज को फिर कभी ऐसा पदाधिकारी नहीं मिला। महाराज को शुभ-कामनाएँ देकर कोट्स महोदय यात्रा के लिए निकल पड़े।

अभिन्न मित्र और सहयोगी बाबू जनेश्वर सिंह (श्री नन्दन जी)

महाराज रुद्र सिंह के तृतीय पुत्र बाबू नेत्रेश्वर सिंह के कनिष्ठ पुत्र बाबू जनेश्वर सिंह अत्यन्त प्रतिभाशाली और शीलवान् पुरुष थे। महापुरुषों के समस्त लक्षणों से आप युक्त थे। श्री नन्दन जी आपका प्रचलित नाम था। श्री नन्दनजी महाराज लक्ष्मीश्वर सिंह के चचेरे तथा मौसेरे भाई थे। वाल्यावस्था में ही श्रीनन्दन जी के पिता का देहावसान हो गया था। अग्रज रघुनन्दन जी और अनुज श्री नन्दन जी के संरक्षक स्वयं महाराज थे। श्री नन्दन जी महाराज के विशेष प्रीतिभाजन बने। आप सत्यनिष्ठ, निर्लोभी और स्पष्टवादी थे। प्रवाद था कि महाराज अपना उत्तराधिकारी श्री नन्दनजी को ही बनाएंगे। अध्ययनोपरान्त श्री नन्दनजी महाराज के आप्त सचिव बने। श्री नन्दनजी गंगाबाबू की मेधा से परिचित थे। और शुरू से चाहते थे कि वे दरभंगा आकर राज सेवा करें। दोनों में अद्‌भुत स्नेह था। श्रीनन्दन जी भी अत्यन्त मेधावी थे। कलकत्ता में जब ये सेंटजेवियर के छात्र थे उस समय महान् वैज्ञानिक फादर लाफान्ट को इनका गृह शिक्षक नियुक्त किया गया था। संस्कृत पढ़ाने के लिए दरभंगा से महामहोपाध्याय पं. चित्रधर मिश्र साथ ही भेजे गए थे। श्री नन्दनजी के साथ गंगाबाबू की घनिष्ठता धीरे-धीरे पल्लवित होती गई। अध्ययन में दोनों की आत्यन्तिक अभिरुचि थी। दोनों साथ व्यायाम करते, खेलते, वाद-विवाद करते और अध्ययम करते थे। राज-सेवा में आने के उपरान्त यह मित्रता और प्रगाढ़ हुई। इसी समय कोट्स महोदय का पदार्पण हुआ था। डा. कोट्स ने श्रीनन्दन जी को स्वेच्छया अंग्रेजी साहित्य की सामान्य विशेषताओं से अवगत कराया। विभिन्न विषयों पर डा. कोट्स की अवधारणा बहुत साफ थी। उनकी वाणी में अभूतपूर्व आकर्षण था। डा. कोट्स का सम्बल पाकर दोनों मित्र की जिज्ञासा दिनानुदिन बढ़ती ही जा रही थी।

तारा जगत के प्रति आकर्षण

दरभंगा प्रवास के समय गंगाबाबू को खगोल विज्ञान और वनस्पतिशास्त्र के अध्ययन की इच्छा हुई। श्री नन्दनजी की भी नक्षत्र जगत में अद्‌भुत रुचि थी। इसके लिए श्रीनन्दन जी के साथ मिलकर दो उपकरणों की व्यवस्था हुई। एक तो आवर्धक (मैग्नीफाइंग लेन्स) और खगोल विज्ञान के लिए एक छोटा दूरवीक्षण यन्त्र। वनस्पति विज्ञान में दोनों मित्र विशेष प्रगति न कर सके किन्तु

खगोल विज्ञान में उत्साहवर्द्धक सफलता मिली। यन्त्र था तो छोटा किन्तु शक्तिशाली था। इसमें वृहस्पति के उपग्रह और शनि वलयों के दर्शन अत्यधिक उत्साहित करने वाला प्रमाणित हुआ। घंटों तारा जगत का अवलोकन अपूर्व आनन्द प्रदान करता था। कुछ ऐसा ही आनन्द मित्र गोविन्दासजी के साथ हरिद्वार में अनुभव हुआ था। श्रीनन्दनजी और गंगाबाबू जैसे खगोलशास्त्र के नव अध्येताओं के लिए ये रंग- बिरंगे दृश्य बहुत महत्व रखते थे। बाद में खगोलशास्त्र से सम्बद्ध सभी उपलब्ध पुस्तकों को मंगाकर दोनों मित्रों ने गंभीर अध्ययन किया।

पाँच वर्षों तक गंगाबाबू और श्रीनन्दनजी का जीवन अत्यन्त सुखमय रहा। इसमें बदलाव तब आया जब १७ दिसम्बर, १८९८ ई. को महाराज लक्ष्मीश्वर सिंह दिवंगत हो गए। इसका दुःखद प्रभाव सम्पूर्ण राज्य पर पड़ा। महाराज लक्ष्मीश्वर सिंह अत्यन्त उदार और सत्यनिष्ठ थे। महाराज के निधन के पश्चात अनुज महाराज रमेश्वर सिंह उनके अधिकारी हुए। आप में लक्ष्मीश्वर सिंह की भाँति लोगों को स्वयं परखने की शक्ति का अभाव था। संकुचित हृदय वाले अधिकारियों की अब बन आयी। इस दुष्ट-क्रीड़ा के प्रथम शिकार हुए गंगाबाबू के अभिन्न मित्र श्रीनन्दनजी। दो तीन वर्षों के उपरान्त यह वैमनस्य खुलकर सामने आ गया। अधिकारीगण की मूर्खता ने वैमनस्य भाव को और भी उद्दीप्त किया। अन्दर ही अन्दर टूटते स्नेह सूत्र का बाह्य प्रभाव परिलक्षित होने लगा। मामला जब अदालत में पहुँचा तो महाराज ने काशी नरेश और ढाका के नवाब से सहायता की याचना की। दोनों दरभंगा राज के मित्र परिवार में माने जाते थे। अन्ततः सौमनस्यपूर्ण समाधान ढूँढ़ लिया गया किन्तु श्रीनन्दनजी के मित्र रहने के कारण राजकोप के भाजन हुए पुस्तकाध्यक्ष गंगानाथ झा।

महाराज रमेश्वर सिंह का कोप

वर्तमान परिस्थिति को आकलित कर गंगानाथ झा को आभास हुआ कि पौराणिक मान्यता असत्य नहीं कि-

राजसेवा मनुष्याणामसिधारावलेहनम्।
पञ्चाननपरिष्वङ्गो व्यालीवदनचुम्बनम्॥

महाराज रमेश्वर सिंह जब गद्दी पर बैठे तभी से उनके व्यवहार में बदलाव परिलक्षित होने लगा था। उन्हें ज्ञात था कि गंगाबाबू अध्यवसायी हैं किन्तु आपने जानबूझकर उन्हें रुचि के सर्वथा प्रतिकूल कार्य सौंपा। इस आदेश के अनुसार सुदूर देहाती क्षेत्र में जाकर बेदखली का तहकीकात करना था। गंगाबाबू ने महाराज से निवेदन किया कि ऐसे कार्यों में उनकी कोई रुचि नहीं और इससे राजकीय क्षति की ही संभावना है। महाराज इस अवज्ञा पर अप्रसन्न तो हुए किन्तु तत्काल अपना निर्णय बदलकर तन्त्र तथा दर्शन सम्बन्धित विशेष

अध्ययन की अनुमति दे दी। मन ही मन वे गंगाबाबू और श्रीनन्दनजी की मित्रता से कुपित थे।

तन्त्र विषयक ग्रन्थादि का विशद अध्ययन

प्राचीनकाल में जब बौद्ध धर्म में तान्त्रिक उपासना पद्धति का प्रवेश हुआ तो बंगाल की भाँति मिथिला में भी इसका प्रचार प्रसार हुआ। मिथिला में प्राचीनकाल से ही तन्त्रोपासना की प्रधानता रही। यहाँ अनेक ख्यातिनाम तान्त्रिक हुए जिन्होंने अपने योगबल तथा मन्त्रबल से लोगों को चकित कर एहिलौकिक तथा पारलौकिक मार्ग प्रशस्त किया। यहाँ के एक तान्त्रिक पण्डित मदन मिश्र का भींगा हुआ वस्त्रखण्ड आकाश में सूखता था। इसी प्रकार पं. कृष्णदत्त नामक तान्त्रिक किसी से भी घंटों शास्त्रार्थ की क्षमता रखते थे। प्रसिद्ध है-

कृते श्रुत्युक्तमार्गः स्यात् त्रेतायं स्मृतिसंभवः।
द्वापरे तु पुराणोक्तः कलावागम- संभवः॥

अर्थात् सतयुग में वेदानुसार, त्रेता में स्मृति के अनुसार, द्वापर में पुराणानुसार और कलियुग में आगम अर्थात् तन्त्र के अनुसार कार्य करना चाहिए। तन्त्रशास्त्र में प्रवृत्ति एवं निवृत्ति दोनों मार्ग हैं । इसमें मारण, मोहन, उच्चाटन, स्तम्भन, वशीकरण, वाजीकरण, आकर्षण, भूत-प्रेत, पिशाचादि के निवारणादि की चर्चा मिलती है। तन्त्र में भी ब्रह्मवाद माना गया है। वस्तुतः प्रकृति एवं पुरुष के एकात्मभाव का नाम ही ब्रह्म है। यथा-

शिवः प्रधानः पुरुषः शक्तिश्च परमा शिवा।
शिवशक्त्यात्मकं ब्रह्म योगिनस्तत्त्वदर्शिनः॥

इसके प्रधान पुरुष शिव हैं और परमाशक्ति शिवा अर्थात् दुर्गा हैं। शिव तथा शक्ति का सम्मिलित रूप ही ब्रह्म है। योगी ही इस तत्त्व को जान सकते हैं जो वास्तव में एक ही हैं-

त्वमेकां द्वित्वमापन्ना शिवशक्तिप्रभेदतः।[१]

काशी में पण्डित मनोहर झाजी ने कहा था कि कलिकाल में तन्त्रोपासना को सर्वश्रेष्ठ स्वीकारा गया है। पं. झा जी कहते थे-

कलावन्योदितैर्मार्गैः सिद्धिमिच्छति यो नरः।
तृषितो जाह्नवीतीरे कूपं खनति दुर्मतिः॥

---

१ काशीखण्ड.

कलिकाल में तन्त्र को छोड़ अन्य मार्ग से मुक्ति का प्रयत्न करनेवाले लोग उसी प्रकार मूर्ख हैं जैसे गंगा किनारे रहने वाला व्यक्ति पिपासा-शान्त्यर्थ कुँआ खोदता है ।

ऐसे कतिपय निबन्धों तथा पुस्तकों को गंगानाथ झा ने पढ़ा था जिसमें तन्त्र की महिमा का बखान करते हुए कहा गया था कि -

यत्रास्ति भोगो नहि तत्र मोक्षः यत्रास्ति मोक्षो नहि तत्र भोगः ।
श्री सुन्दरी-पूजनतत्पराणाम् भोगश्च मोक्षश्च करस्थ एव ।।

अर्थात् भोग और मोक्ष दोनों ही तन्त्रमार्ग से प्राप्त किया जा सकता है । इस मार्ग के पंचमकार का अर्थ समर्पित तन्त्रवेत्ता ही जान पाते हैं । तन्त्रमार्ग अत्यन्त कठिन और दुःसाध्य है । इस मार्ग के अधिकारी सभी नहीं हो सकते ।

महाराज लक्ष्मीश्वर सिंह अप्रकट भाव से एक तान्त्रिक के प्रभाव में आकर इस मार्ग के अनुयायी हो गए थे । कुत्सित तान्त्रिकों ने वामाचार फैलाकर महाराज को परोक्षरूप में वशीभूत कर लिया था । महाराज सहित अनेक चाटुकार दौवारिकों ने भी दीक्षा ग्रहण कर ली थी ।

पं. धरानाथ झा ने मृत्यु से पूर्व इस रहस्य का उद्घाटन करते हुए विन्ध्यनाथ बाबू को इस उपासना-पद्धति से वर्जित करते हुए कहा था कि वे लोग लाख प्रयास करें दीक्षा ग्रहण न करना । प्रयास करना कि इस परिवार का कोई भी सदस्य तन्त्राभिमुख न हो ।

कुछ ही दिनों बाद वास्तव में कुछ तान्त्रिकों ने जब विन्ध्यनाथ बाबू को दीक्षित होने का दुराग्रह किया तो उन्हें पिता की दूरदर्शिता पर अभिमान हुआ । विन्ध्यनाथ बाबू स्पष्ट वक्ता थे । उनकी फटकार सुनकर फिर कभी वे तान्त्रिक उनके निकट नहीं गए । निराश होकर वे दूसरे शिष्य को ढूँढ़ने लगे । गंगानाथ बाबू जब राज-सेवा में आये तो पूर्वपठित पुस्तकों तथा प्रवादादि के आकर्षण में तन्त्र तथा योगादि विषयक ग्रन्थों का विशेष अध्ययन प्रारंभ किया । संयोग से जिस दिन आप 'महानिर्वाणतन्त्र' का अध्ययन कर रहे थे उसकी सूचना तन्त्र प्रचारकों को मिल गई । उन्हें लगा कि गंगानाथ बाबू इस मार्ग की ओर अग्रसर हो रहे हैं । विविध ग्रन्थों को पढ़ने के बाद गंगाबाबू ने निर्णय किया कि वास्तव में तन्त्रमार्ग अत्यन्त कठिन है और असाधारण लोगों के लिए ही है । तन्त्रमार्ग में विहित अनुशासन इतना कठोर है कि अलौकिक शक्ति सम्पन्न व्यक्ति ही इसका पालन कर सकते हैं । एक दिन गंगानाथ झा के एक मित्र जो इस मार्ग में अभिरुचि रखते थे और प्रायः दीक्षित हो चुके थे, ने आकर कहा कि 'क्यों न आप दीक्षित हो जाते ! आप दोनों भाई यदि दीक्षित हुए तो राज के उच्च्व पदों को सुशोभित करना कठिन न होगा ।'

धीर-गंभीर होकर गंगानाथ बाबू ने कहा कि- 'मैंने तन्त्र विषयक अनेक ग्रन्थों का अवलोकन किया है। मैं इस निष्कर्ष पर पहुँचा हूँ कि यह मार्ग मुझ साधारण जनों के लिए नहीं है। यह मार्ग दुःसाध्य है।'

यह सुनते ही मित्र पण्डित ने कहा कि बात तो आप यथार्थ कह रहे हैं किन्तु कौन तान्त्रिक आजकल कठोर तांत्रिक नियमों का अनुपालन करते हैं ? इस मंडली के लोग तो मद्य का सेवन कर आनन्द लाभ करते हैं।

गंगानाथ झा ने कहा कि अब तो आपने स्वयं इस मार्ग की दुरूहता को स्वीकार लिया है। मैं ब्रह्मविद्या के पवित्र नैतिक सिद्धान्तों में बँधा हुआ व्यक्ति हूँ। किसी प्रलोभन से शास्त्र विशेष का अध्ययन या दीक्षा ग्रहण मेरे संस्कार में नहीं है। उसके बाद आप भी तंत्रमार्गियों के लिए अपात्र मान लिये गए।

गणेशपूजा और राज-सेवा से मुक्ति

गंगाबाबू के मित्र श्री नन्दनजी प्रतिवर्ष गणेश चतुर्थी के दिन गणेशपूजा करते थे। वर्षों से गंगानाथ बाबू गणेशपूजा की मनौती माँगे हुए थे। गंगाबाबू ने जब कहा कि मैं भी गणेश पूजा करने की सोच रहा हूँ तो मित्र श्रीनन्दनजी बहुत प्रसन्न हुए। आपने कहा कि जब हम और आप साथ-साथ रहते हैं फिर हमारे गणेश भी एक ही साथ एक ही स्थान पर पूजित होंगे। प्रस्तावानुसार दोनों मूर्तियों का पूजन शुभंकरपुर में ही होना तय हुआ। इसकी सूचना जब महाराज को मिली तो उन्होंने अग्रज विन्ध्यनाथ बाबू से कहा कि गंगानाथ बाबू सीमातिक्रमण कर रहे हैं।

महाराज के चाटुकारों ने इस प्रसंग को इतना दूषित किया कि स्वयं महाराज ने भी गणेश पूजन का निर्णय ले लिया। दुष्ट दौवारिकों के प्रस्तावानुरूप महाराज ने राजकीय पूजा का दायित्व लिखित रूप से गंगानाथ बाबू को सौंप दिया। गंगाबाबू ने तत्काल ही महाराज को पत्र द्वारा सादर सूचित किया कि- 'मैंने भक्ति के उद्रेक में निश्चय कर लिया था कि शुभंकरपुर में ही पूजा करूँगा।'

आशय यह था कि राजकीय पूजा के लिए वे उपलब्ध नहीं हो सकेंगे। गंगानाथ बाबू के पत्र से दरबार में तीव्र प्रतिक्रिया हुई और उन्हें एक फरवरी को पेश करने का आदेश दिया गया। पूजा का समय निकट आया तो यथा नियम गंगाबाबू ने अपने से उच्चतर अधिकारी राज के जेनरल मैनेजर आर.एस. किंग महोदय को अवकाश के लिए आवेदन देकर शुभंकरपुर जाने की अनुमति माँगी। स्वीकृति प्राप्त कर गंगाबाबू शुभंकरपुर चले गए। श्रीनन्दनजी ने महाराज से अनुरोध किया था कि गणेशपूजन के लिए राजपण्डित को शुभंकरपुर जाने दिया जाय। महाराज ने शालीनता पूर्वक इसकी सहमति दे दी। दुष्टों को यही अवसर

उपयुक्त प्रतीत हुआ। राज्यादेश की अवहेलना दिखाकर महाराज को क्रोध दिलाया गया। श्रीनन्दनजी का अहित तो वे कर नहीं सकते थे इसलिए सारा क्रोध पुस्तकाध्यक्ष गंगानाथ पर ही केन्द्रित हो गया।

शुभंकरपुर में पूजा व्यवस्था में दोनों मित्र व्यस्त थे। तभी राजपण्डित आए और गंगाबाबू को दुःखद सूचना दी- 'आपको महाराज ने बर्खास्त कर दिया है।' श्रीनन्दनजी बहुत क्रोधित हुए किन्तु गंगाबाबू ने उत्साहपूर्वक पूजा समाप्त करने का निश्चय किया। दूसरे ही दिन डाक से तद्विषयक औपचारिक आदेश प्राप्त हो गया। महाराज ने लिखा था कि- 'गंगानाथ बाबू चाहें तो खुशी से श्रीनन्दनजी की सेवा में रह सकते हैं। यदि श्रीनन्दनजी इससे पूर्व भी ऐसा प्रस्ताव करते तो मुझे सहर्ष मान्य होता। किन्तु वर्तमान परिस्थिति में मैं नहीं चाहूँगा कि जब मुझे मुख्यालय में उनकी आवश्यकता हो, वे अन्यत्र रहें। विवश होकर मैं गंगानाथ बाबू को अपनी सेवा से मुक्त करता हूँ।' आगे गंगानाथ बाबू के लिए निर्देश था कि- 'आप अंगरेजी पुस्तकालय का प्रभार बाबू केशी मिश्र और संस्कृत पुस्तकालय का प्रभार पं. परमेश्वर झा जी को सौंप दें।'

महाराज ने सोचा था कि आम व्यक्ति की भाँति राजकीय सेवा के लिए गंगानाथ बाबू पुनः प्रयत्नशील होंगे और अपनी भूल के लिए क्षमा याचना करेंगे किन्तु गंगाबाबू को इस पत्र से अत्यधिक राहत मिली थी। शिखर पर चढ़ने के अभिलाषी व्यक्ति को जमीन अधिक देर बाँधे नहीं रख सकती। पूजनोत्सव के बीच ही गंगाबाबू ने महाराज के पत्र का उत्तर तैयार कर लिया। आपने लिखा-

श्रीमान् की सेवा में मेरा यह अन्तिम पत्र है। श्रीमान् के मन में मेरे प्रति जो भ्रान्ति है उसका निराकरण मैं आवश्यक मानता हूँ। सर्वप्रथम यह कि मैं श्रीनन्दनजी के आह्वान पर शुभंकरपुर आया था यह असत्य है। मनौती पूरा करने के लिए ही मैं यहाँ आया हुआ हूँ। श्रीमान् ने लिखा है कि मैं श्रीनन्दनजी की सेवा में रहना चाहूँ तो रह सकता हूँ। मैं ऐसा कोई विचार नहीं रखता। हमारी मित्रता उस कोटि की है जहाँ आर्थिक लाभ का कोई प्रश्न ही नहीं उठता।

जिस दिन से मैंने यह सुना कि आपने कहा है कि मैं पुस्तकालय में मनोयोगपूर्वक कार्य नहीं करता और जो कार्य मैं करता हूँ उसे बीस रुपया पानेवाला कोई किरानी भी कर सकता है, मेरी अन्तरात्मा मुझे धिक्कार रही थी। मैं स्वयं पद-मुक्ति का अभिलाषी था। आपका कृपापूर्ण आदेश मेरे लिए परम कल्याणकारी होगा। मैंने जिस दिन सेवारंभ किया था यहाँ मात्र बारह आलमारी पुस्तकें थीं। आज इनकी संख्या शताधिक है। संग्रहित पुस्तकों पर मेरा पुत्रवत् ममत्व है। कृपया इनके समुचित रख रखाव की स्वयं निगरानी रखेंगे। महाराज लक्ष्मीश्वर सिंह जी द्वारा आरंभ संस्कृत ग्रन्थमाला का प्रकाशन यदि वांछनीय लगे तो कृपया किसी सुयोग्य व्यक्ति को इसका दायित्व सौंपेंगे।'

प्रकाशन विषयक कुछ अन्य सुझावों के साथ पत्र पूरा हुआ। इस पत्र में वर्तमान राज्य व्यवस्था के प्रति गंगाबाबू का आक्रोश स्पष्ट है। वास्तव में दरभंगा राज के ग्रह विपरीत होने शुरू हो गए थे। दरभंगा आकर गंगाबाबू ने विन्ध्यनाथ बाबू को दोनों पत्र दिखलाया। प्रथम की सूचना उन्हें भी मिल चुकी थी। विन्ध्यनाथ बाबू से अनुमति प्राप्त कर पत्र महाराज की सेवा में प्रेषित कर दिया गया। महाराज को जब यह पत्र मिला तो क्षण भर के लिए उन्हें अपने अनुचित आचरण का भान हुआ। उन्होंने विन्ध्यनाथ बाबू से कहा कि- 'मैं गंगाबाबू की योग्यता से परिचित हूँ। यदि अब भी वे रास्ता बदल दें तो मैं आदेश रद्द कर दूँगा।'

विन्ध्यनाथ बाबू जान चुके थे कि गंगानाथ को जिस विशाल क्षेत्र और उदार परिवेश की तलाश है वह यहाँ नहीं। फिर प्राप्त सूचनानुसार प्रयाग में गंगाबाबू की नियुक्ति सुनिश्चित थी। महाराज के क्रोध को उद्दीप्त करने के लिए विन्ध्यनाथ बाबू ने उदासीन स्वर में कहा- 'वास्तव में श्रीनन्दनजी के साथ उनकी मित्रता बहुत बढ़ चुकी है।' महाराज ने उसके पश्चात् कुछ न कहा।

परोक्ष रूप से शुभेच्छुओं ने गंगाबाबू को रोकने का भरसक प्रयास किया। दोनों महानुभाव जिन्हें पुस्तकाध्यक्ष का प्रभार लेना था, नहीं चाहते थे कि गंगाबाबू सेवामुक्त हों। एक ने अनिच्छापूर्वक और दूसरे ने बलात् प्रभार ग्रहण किया। गंगाबाबू ने उनके सम्मुख चाभी दी और कहा कि- 'आप इन्हें सँभाले या फेकें मैं इससे मुक्त हो गया।'

महारानियों की व्यथा

गंगाबाबू दोनों विधवा महारानियों के प्रमुख सलाहकार थे। अंतःपुर में और राजसभा में गंगाबाबू का प्रभाव देखकर दुष्ट लोग जलते थे। महारानियों के प्रसंग में गंगाबाबू की स्पष्टवादिता को चाटुकार दौवारिक महाराज को बढ़ा चढ़ाकर कहते। गंगाबाबू के निर्णय से सर्वाधिक क्लेश उन महारानियों को ही हुआ जिन्हें गंगाबाबू पर सोदर भ्राता की भाँति विश्वास था। गंगाबाबू ने कभी कोई ऐसा विचार न दिया था जो राज या उनलोगों के हित में न हो। अब ऐसा कोई नहीं रह गया था जिनसे वे अपनी व्यथा कह सकें।

महाराज लक्ष्मीश्वर सिंह स्मारक

महाराज रमेश्वर सिंह और श्रीनन्दनजी के बीच सन्देह के बीज का पल्लवन हो चुका था। एक ही दिन कलकत्ता और दरभंगा में स्वर्गीय महाराज लक्ष्मीश्वर सिंह के सम्मान में सार्वजनिक स्मारक-सभा का आयोजन किया गया था। महाराज नहीं चाहते थे कि दरभंगा में स्मारक बने। श्रीनन्दनजी महाराज के साथ कलकत्ता गये। वहाँ की सभा अधिक व्यवस्थित और महत्वपूर्ण थी।

वहाँ स्व. महाराज की प्रतिमा स्थापित करने का भी प्रस्ताव था। दरभंगा में प्रमंडल आयुक्त मि. बोर्डिला की अध्यक्षता में विशाल सभा का आयोजन हुआ जिसे आशातीत सफलता मिली। यहाँ के आयोज़कों में प्रमुख थे गंगानाथ झा। महाराज को इस प्रसंग में इस आशय से सूचित किया गया कि उन्हें प्रसन्नता होगी किन्तु सभा की सफलता से उन्हें प्रसन्नता न हुई।

दरभंगा स्मारक निर्माण समिति के अध्यक्ष थे माननीय आर. डब्लू. कार्लाइल और सचिव थे गंगानाथ झा। चन्दा रूप में अत्यन्त सहजतापूर्वक तीस सहस्र राशि जमा हो गयी थी। इसी बीच कलकत्ता स्मारक समिति के सचिव वैरिस्टर एच.ई.ए. कॉटन का एक पत्र प्राप्त हुआ जिसमें कहा गया था कि कलकत्ता में स्व. महाराज की संगमरमरी प्रतिमा स्थापित करने का निर्णय लिया जा चुका है। इसके लिए सुविख्यात ब्रितानी मूर्तिकार आंसलोफोर्ड को अनुबन्धित किया गया है। प्राक्कलित राशि चालीस सहस्र है जिसमें से तैंतीस सहस्र जमा किया जा चुका है। परिपत्र के अन्त में प्रस्ताव किया गया था कि दरभंगा स्मारक समिति द्वारा एकत्र राशि कलकत्ता स्मारक समिति को ही सौंप दी जाय।

कार्लाइल महोदय के स्थानान्तरण के उपरान्त माननीय एच. ह्वीलर का पदस्थापन हुआ था। हेनरी ह्वीलर के सम्मुख जब गंगानाथ बाबू ने परिपत्र रखा तो वे अचंभित हुए। विद्वान् हेनरी महोदय ने कहा कि इस परिपत्र के आधार पर कलकत्ता स्मारक की निधि में मात्र सात सहस्र रुपये की कमी है। अतः मात्र यही राशि प्रेषित करना समीचीन होगा। बाद में दरभंगा स्मारक समिति के निर्णयानुसार धर्मशाला का निर्माण हुआ जिसका विधिवत् उद्‌घाटन बंगाल के तत्कालीन लेफ्टिनेंट गवर्नर सर जॉन उडबर्न ने किया। कलकत्ता में डलहौजी स्क्वायर में स्व. महाराज की भव्य प्रतिमा का अनावरण हुआ।

दरभंगा स्मारक के आयोजन ने गंगाबाबू के प्रति महाराज के पूर्वाग्रह को बद्धमूल कर दिया। इस उद्‌घाटन के एक माह के उपरान्त गंगाबाबू दरभंगा से गाँव चले आए।

पण्डितों की परीक्षा "धौत परीक्षोत्तीर्णता"

दरभंगा प्रवास के मध्य की यह घटना भी गंगाबाबू के प्रति महाराज के पूर्वाग्रह-ग्रस्त होने तथा गंगाबाबू के पाण्डित्य को प्रमाणित करती है।

दरभंगा राज के संस्थापक महाराज महेश ठाकुर के द्वारा एक विशिष्ट प्रथा की व्यवस्था हुई थी जिसमें राज्य के पण्डितों को एकत्र कर मौखिक परीक्षाओं के द्वारा श्रेष्ठ पण्डितों का चयन किया जाता था। श्रेष्ठ पण्डितों को धोती तथा दुशाला देकर सम्मानित किया जाता था। मिथिला के पंडित समाज में इस परीक्षा का बड़ा महत्व था। यहाँ के अधिवासी उसी पंडित को मान्यता देते थे जो इस

परीक्षा में उत्तीर्णता प्राप्त करते थे। इस परीक्षा का आयोजन राज परिवार के उत्सवादि के अवसर पर किया जाता था। महाराज लक्ष्मीश्वर सिंह के राज्यारोहण के उपरान्त सुदीर्घ काल तक ऐसा आयोजन संभव नहीं हुआ। इस परीक्षा का दायित्व गंगानाथ झा को ही सौंपा गया। सुखद संयोग था कि स्वयं गंगाबाबू ने भी परीक्षार्थी के रूप में आवेदन किया था।

परीक्षार्थी आवेदकों की तीन कोटियाँ निर्धारित की गई-

(क) ऐसे अभ्यावेदक जो बीस वर्ष पूर्व अध्ययन समाप्त कर चुके थे।

(ख) ऐसे अभ्यावेदक जो दस वर्ष पूर्व अध्ययन समाप्त कर चुके थे।

(ग) ऐसे अभ्यावेदक जिन्होंने दस वर्ष के भीतर अध्ययन समाप्त किया था।

श्रेष्ठ पंडितों में से प्राश्निक नियुक्त हुए। महाराज ने परीक्षा के लिए नवीन पद्धति अर्थात् लिखित पद्धति का आदेश दिया। प्राश्निक के रूप में पण्डित शिव कुमार मिश्र से सर्वाधिक सहयोग लिया गया। परीक्षा के लिए आवेदकों की संख्या लगभग तीन सौ थी। परीक्षा के विषय थे न्याय, व्याकरण, सांख्य, योग, साहित्य, ज्योतिष, हिन्दी तथा संगीत (सैद्धान्तिक)। इसमें सर्वाधिक प्रमुखता न्याय को दिया गया था। कभी जिस मिथिला में एक ही समय नौ सौ मीमांसक साथ-साथ पाण्डित्य प्रदर्शन करते थे वहाँ इस समय मीमांसकों की संख्या मात्र तीन हो गयी थी। ये मीमांसक थे पंडित चित्रधर मिश्र, पं. योग दत्त झा और पं. दिनेश्वर झा।

प्रश्न पत्र छपवाने, वितरित करवाने तथा परीक्षा संचालन का सम्पूर्ण दायित्व गंगाबाबू पर ही था। महाराज ने संदेही प्रवृत्ति के कारण गंगाबाबू की परीक्षा के लिए मौखिक पद्धति का सुझाव दिया। गंगानाथ झा ने इसे अस्वीकार किया और कहा कि यदि यही माध्यम उचित है तो सबके लिए हो। अन्ततः आपके लिए विशेष लम्बा प्रश्न पत्र तैयार करने का आदेश दिया गया जिसमें महत्वपूर्ण प्रश्नों के साथ महत्वहीन (व्यावहारिक) प्रश्न भी रहे। प्राश्निक थे पं. शिव कुमार मिश्र तथा पं. बच्चा झा। आप अत्यन्त क्लिष्ट प्राश्निक और कृपण परीक्षक (मूल्यांकक) माने जाते थे। किन्तु गंगा बाबू की उत्तर पुस्तिका में चाहकर भी वे कोई अशुद्धि न ढूँढ सके। गंगाबाबू की भाषा और विश्लेषण-क्षमता से आप इतने प्रभावित हुए कि दो सौ अंकों में सर्वोच्च एक सौ सन्तानवे अंक प्रदान किया। गंगानाथ बाबू पंडितों की इस परीक्षा में न केवल उत्तीर्ण हुए अपितु पंडित समुदाय को ज्ञात हो गया कि आने वाले समयों में मिथिला क्षेत्र का प्रतिनिधित्व करनेवाले नक्षत्र ये ही गंगानाथ होंगे। गंगानाथ झा की इस सफलता से महाराज को प्रसन्नता नहीं हुई। आपने प्राचीन परम्परानुसार उन्हें धोती तो प्रदान किया किन्तु नवीन पद्धति के अनुसार दुशाला नहीं दिया। कुछ पण्डितों के द्वारा आपत्ति करने पर आपने कहा कि गंगाबाबू संस्कृत के विद्वान्

भले हों किन्तु उनका रुझान अंग्रेजी की ओर ही है। गंगाबाबू ने इस सम्मान और अपमान को कभी विस्मृत न किया। आगे तो ऐसे दिन आए जब उपाधियाँ और पुरस्कार उनसे सम्मानित हुईं।

अहंकारी पण्डित बच्चा झा

पण्डितों की विशिष्ट परीक्षा में परीक्षक होनेवाले बच्चा झा प्रकाण्ड पण्डित थे। आपसे गंगानाथ झा शुरू से ही प्रभावित थे किन्तु बच्चा बाबू में नम्रता का अत्यन्त अभाव था। अपने पाण्डित्य के अभिमान में वे किसी को भी हीन समझने की भूल कर लेते थे। नम्रता और विनयशीलता जो पण्डितों का विशिष्ट लक्षण है उससे वे परहेज रखते थे। जिस समय गंगानाथ झा काशी रहकर अध्ययन करते थे उसी समय दुर्गाकुण्ड में यदा-कदा बच्चा झा से भेंट होती थी। उस समय महामहोपाध्याय दामोदर शास्त्री भारद्वाज काशी के दुर्द्धर्ष वैयाकरण माने जाते थे।

अहंकारी बच्चा झा अपना अहं भाव खुलेआम व्यक्त करते थे। काशी में जब-जब पण्डितों की सभा होती काशी के वैयाकरणों के सम्बन्ध में वे उपहास करते हुए कहते कि शब्द-खण्ड के प्रसंग में यहाँ के पंडित कुछ नहीं जानते। महाराष्ट्री पंडितों के सम्बंध में भी आपकी यही उक्ति थी। पं. दामोदर शास्त्री ने इसका प्रतिवाद किया और विद्वानों को लगा कि आवश्यकता है कि दोनों पुरुष-सिंहों के बीच शास्त्रार्थ हो। दरभंगा महाराज ने पण्डितों के सुझाव पर गुरुधाम में एक पंडित सभा का आह्वान किया। इसमें काशी के सभी प्रमुख पंडित सम्मिलित हुए। विशिष्ट अतिथि के रूप में हथुआ नरेश भी उपस्थित हुए। पंडितों की ओर से एक सरल प्रश्न समस्या के रूप में रखा गया। उसका नैयायिक पक्ष पं. बच्चा झा ने लिया और व्याकरण पक्ष पं. दोमोदर शास्त्री ने।

दामोदर शास्त्री ने अत्यन्त सरल शब्दों में शालीनता पूर्वक प्रश्न का उत्तर दे दिया। पश्चात् पं. बच्चा झा ने उसका गहन परिष्कार प्रारंभ किया। बच्चा झा के स्वाभाव से परिचित दामोदर शास्त्री इस परिष्कार में प्रविष्ट नहीं होना चाहते थे। विद्वानों में विवाद हुआ कि उनका प्रश्न प्रासंगिक है या नहीं। निर्णायक पं. कैलाश शिरोमणि भट्टाचार्य और महामहोपाध्याय पं. शिव कुमार मिश्र ने प्रश्नों को प्रासंगिक माना। बच्चा झा ज्यों-ज्यों आगे बढ़ते गए उनका उत्तर न केवल दामोदर शास्त्री बल्कि निर्णायकों के लिए भी अवोधगम्य हो गया। दोनों निर्णायक मध्य रात्रि तक बच्चा झा को सुनते रहे और उनका कथ्य समझने का प्रयास करते रहे। अन्ततः अनिर्णीत रखकर सभा को समाप्त किया गया। इन्हीं बच्चा झा को अपने अनुकूल पाकर गंगानाथ बाबू के मन में विश्वास जागा कि राज पुस्तकालय में अध्ययन का कुछ न कुछ लाभ अवश्य हुआ है। पं. बच्चा बाबू ने यहाँ गंगाबाबू को अपना अशेष आशीर्वाद भी दिया। इस

युगान्तरकारी नक्षत्र को पं. बच्चा झा ने देख लिया था, परख लिया था और तब अपनी अभ्युक्ति दी थी।

विजया दशमी के दिन काशी यात्रा

दरभंगा राज-सेवा से मुक्ति पाकर गंगानाथ बाबू सरिसब-पाही चले आए। यहाँ भगवती तारा की अभ्यर्थना की और दुर्गा पूजनोत्सव में दरभंगा के दुःखद प्रसंगों को भूलने का प्रयास करने लगे। शुभंकरपुर में ही मित्र गोविन्ददास का पत्र आया था कि पंडित आदित्यराम भट्टाचार्य सेवामुक्त हो रहे हैं और इस पद को पाने के लिए तत्काल उचित प्रयास की अपेक्षा है। गंगाबाबू ने डा. थीबो को इस आशय का पत्र लिखा और उत्तर की प्रतीक्षा करने लगे। डा. थीबो ने इंग्लैण्ड से आकर पत्रोत्तर देते हुए विलम्ब के लिए खेद प्रकट कर लिखा कि पं. आदित्यराम की सेवा-निवृत्ति के प्रसंग में सरकारी आदेश प्राप्त हो गया है। पंडितजी आगामी नवम्बर माह में सेवा निवृत्त हो रहे हैं। यदि उनके स्थान पर आपकी नियुक्ति हो जाती है तो मुझे सर्वाधिक प्रसन्नता होगी। आप लोक-शिक्षा-निदेशक को आवेदन के क्रम में यह भी लिख दे कि आप मेरे निर्देश पर आवेदन कर रहे हैं।

डा. थीबो का पत्र पाकर गंगाबाबू धन्य हो गए। निर्देशानुसार आवेदन देकर आपने विजयादशमी के दिन सपरिवार काशी के लिए प्रस्थान किया। संयोग से जिस ट्रेन से गंगाबाबू पटना जा रहे थे उसी में महाराज दरभंगा का सेलून भी जुड़ा हुआ था। अनेक स्टेशनों पर गंगाबाबू महाराज से मिलते रहे जिससे मालिन्य भाव प्रकट नहीं हो। स्वयं गंगाबाबू अभी तक इस निर्णय पर नहीं पहुँच सके थे कि इस कोप को राजदंड मानें या ईश्वर प्रदत्त पुरस्कार। बनारस पहुँचने पर प्रथमतः बाँसफाटक मुहल्ला में अपने पैतृक आवास में रह रही माता रामकाशी देवी से जाकर मिले। यहाँ सबका समावेश संभव नहीं था इसलिए मित्र गोविन्ददासजी के मकान 'लखी चबुतरा' में जाकर रहने लगे। 'लखी चबुतरा' का यह प्रवास अत्यन्त लाभप्रद रहा।

नियुक्ति की अधिसूचना

एक दिन गोविन्ददासजी ने प्रयाग चलने का आग्रह किया। गोविन्ददासजी बनारस नगर निगम परिषद् के अधिकृत प्रतिनिधि थे और एक विशिष्ट चुनाव के क्रम में उन्हें प्रयाग जाना था। इस चुनाव में राजा माधोलाल और कालाकाँकर के राजा रामपालसिंह में सीधा मुकाबला था। गंगाबाबू दुराग्रह को टाल न सके। जाने का प्रत्यक्ष लाभ हुआ कि डा. थीबो से भेंट हो गई। उन्होंने कहा कि 'आपका आवेदन मिल गया है और उसके प्रसंग में मुझसे और डा. भेनिस से पूछा गया है। हम दोनों में आपके लिये यथासंभव उपयुक्त टिप्पणी

दी है । अभी तक अन्तिम आदेश की प्राप्ति नहीं हुई है' ।डा. थीबो से मिलकर गंगाबाबू को बहुत राहत मिली ।

काशी की वापसी यात्रा के लिए जब आप स्टेशन पहुँचे तो एक मित्र बाबू मदन मोहन तपाक से मिले और उल्लसित भाव से कहा- 'बधाई हो बाबू गंगानाथ, हार्दिक बधाई । आपकी नियुक्ति से हमें सचमुच अत्यन्त आह्लाद हुआ है ।' चौंककर गंगा बाबू ने कहा कि 'बंधु मुझे तो इस बात की कोई सूचना नहीं है ।' उत्तर में मदनमोहन बाबू ने पॉयनियर अखबार में सूचना प्रकाशित होने की बात कही । गंगानाथ बाबू को जैसे मन की मुराद मिल गई । प्रथमतः काशी पहुँचकर आप कारमाइकेल पुस्तकालय जाकर पॉयनियर में प्रकाशित समाचार को स्वयं देखा और तब काशीनगरी के प्रति श्रद्धा सुमन अर्पित कर माता रामकाशी के पास पहुँचे । पुनः इसकी सूचना पत्नी इन्दुमती और मित्र गोविन्ददास को देने गये । उसी दिन तार द्वारा विन्ध्यनाथ बाबू को सूचित किया और अनुरोध किया कि महारानियों को, श्रीनन्दनजी को तथा आचार्यों तथा मित्रों को भी इसकी सूचना दे दें ।

दरभंगा राज में ऐसे पंडितों और विद्वानों का अभाव नहीं था जिन्होंने गंगानाथ के अपमान को आत्मिक धरातल पर अनुभव न किया हो । यह समाचार पाकर सभी हर्षातिरेक से झूम उठे । आप सभी हृदय से गंगा बाबू को चाहते थे । मैथिली रामायण के रचयिता कवीश्वर चन्दा झा जो गंगा बाबू के हितैषी थे और दरभंगा प्रवास में अपनी रचनाएँ उन्हें पढ़कर सुनाया करते थे - उन्होंने विन्ध्यनाथ बाबू को लिखा-

हर्षक विषय कहल नहिं जाय ।
विषय उचित विद्या-बल पाय ।।
कत गोट पुण्य त्रिवेणी स्नान ।
दैवक हाथ मान अपमान ।।[1]

आधिकारिक सूचना मिलते ही गंगानाथ बाबू सुविधाजनक आवास खोजने के लिए प्रयाग चले गए। वहाँ पण्डित मदनमोहन मालवीय तथा डा. अविनाशचन्द्र बनर्जी उनके अभिन्न मित्र थे। दो दिनों तक अविनाश बाबू के यहाँ रहकर बीस रुपया प्रतिमाह पर एक मकान लेना तय किया। मकान महाविद्यालय के निकट ही था । डा. थीबो से मिलकर सहयोग के लिए धन्यवाद दिया और सुदीर्घ बैठक में महत्वाकांक्षी विश्वकोश की योजना पर चर्चा की।

---

१ व्यक्तिगत पत्र से ।

महामहोपाध्याय पं. आदित्यराम भट्टाचार्य से मिलकर अध्यापन के लिए स्वीकृत ग्रन्थादि की सूचना प्राप्त कर काशी लौट गए।

२२ नवम्बर, १९०२ को सेवारंभ

काशी से सपरिवार प्रयाग आकर निर्धारित तिथि २२ नवम्बर को गंगाबाबू ने पद भार ग्रहण किया। गंगाबाबू को इससे अपूर्व आनन्द की प्राप्ति हुई। थीबो ने आग्रह किया कि पं. आदित्यराम की विदाई सभा में भी सम्मिलित होइये। इसी सभा में पंडित सुन्दरलाल के दर्शन हुए। पं. सुन्दरलाल जी गंगाबाबू पर अतिरिक्त सदय थे। वे गंगाबाबू की मेधाशक्ति से परिचित थे। आप पं. धरानाथ झा से भी प्रभावित थे। सुन्दरलाल जी ने आग्रह किया कि भारतीय विश्वविद्यालय अधिनियम पर आयोजित अनौपचारिक विचार गोष्ठी में सम्मिलित होकर अपना विचार प्रस्तुत करें। प्रयाग के नवीन परिवेश में गणितज्ञ प्रो. उमेशचन्द्र घोष तथा अंगरेजी के प्राध्यापक प्रो. अभयचरण मुखर्जी गंगा बाबू के प्रिय बन गए। मित्रवर पंडित मदन मोहन मालवीय ने नये आवास में हिन्दू वोर्डिंग हाउस से लकड़ी की आवश्यक वस्तुएँ भेज दी और इस प्रकार नवीन जीवन शैली का प्रारम्भ हुआ। प्रयाग आकर माता रामकाशी देवी बहुत प्रसन्न हुई थी। किन्तु यह प्रसन्नता अधिक दिनों तक सुख नहीं दे सकी।

माता रामकाशी देवी की महायात्रा

प्रयाग आकर पूरा परिवार प्रसन्न था। नवागत शिशु भवनाथ ने और भी आनन्दवृद्धि की थी किन्तु पारिवारिक प्रसन्नता को जैसे किसी की बुरी नजर लग गई। पुत्र भवनाथ को टायफायड हो गया और माता भी अत्यधिक बीमार हो गई। दोनों की चिकित्सा डा. अविनाश बाबू कर रहे थे। माता की हालत में कोई सुधार परिलक्षित नहीं होता था। २० दिसम्बर को उन्होंने विन्ध्यनाथ बाबू को तार देने का आदेश दिया कि आकर गाँव ले जावें। संयोग से गंगाबाबू के अनुज पं. विजयनाथ बाबू माँ से मिलने प्रयाग आये हुए थे। माता के गाँव जाने की अन्तिम इच्छा पूरी न हो सकी। २४ दिसम्बर को रामकाशी देवी ने नश्वर शरीर का त्याग किया। गंगाबाबू के लिए यह गंभीर विपदा की घड़ी थी। चिन्तित गंगा बाबू को दिव्य सहायक के रूप में पं. माधो प्रसाद तिवारी मिल गए। तिवारी जी ने छः ब्राह्मणों, पंडा और बढ़ई को बुलाकर सारी व्यवस्था कर दी। धर्म परायणा रामकाशी देवी को प्रयाग लाभ हुआ। संस्कारादि के उपरान्त प्रातःकाल सभी आवास लौटे। घटना अभी भी अविश्वसनीय प्रतीत होती थी। व्यवस्थादि के लिए भ्राता विजयनाथ अगले ही दिन गाँव लौट गए। ठीक अगले दिन तार मिलने पर विन्ध्यनाथ बाबू प्रयाग आए। आते ही माता से मिलने का प्रस्ताव किया। गंगाबाबू ने समझा था कि आप विजयनाथ से सूचनापाकर आये

हैं। आपने कहा कि 'लगता है विजयनाथ से आपकी भेंट न हो सकी। माता परसों रात में ही स्वर्गीया हो गयीं।'

पुत्र भवनाथ को पुनः ज्वर हो गया। गंगाबाबू चाहते थे कि श्राद्ध-कर्म प्रयागराज में ही हो किन्तु प्लेग की भयंकरता के कारण अविनाश बाबू ने शीघ्र सपरिवार गाँव चले जाने की सलाह दी। भवनाथ को दवा देकर गंगाबाबू मध्य रात्रि की पहली ट्रेन से गाँव के लिए चल पड़े। दरभंगा पहुँचते ही डा. मिस रैम्सवॉटम से भवनाथ को दिखलाया। उनसे निर्देश लेकर गाँव पहुँचे। माता रामकाशी देवी का श्राद्ध विधिवत सम्पन्न हुआ। आज माता का अभाव गंगानाथ बाबू ने पहली बार अनुभव किया।

पारिवारिक सम्पत्ति का विभाजन

भ्राता विन्ध्यनाथ बाबू अत्यन्त व्यावहारिक व्यक्ति थे। उन्होंने अनुभव किया कि पिता और माता के पश्चात् सम्पत्ति के लिए कहीं न कहीं से विवाद आरंभ होने की संभावना है। सम्पूर्ण सम्पत्ति को पाँच समान भागों में बाँट दिया गया। परिवार की सबसे छोटी बच्ची को क्रम से पुर्जा उठाकर देने को कहा गया। यह क्रम सबसे छोटे भाई से प्रारंभ होकर विन्ध्यनाथ बाबू तक पहुँचकर समाप्त हुआ। अगले ही दिन सबका निबंधन करा दिया गया। इस प्रकार का आपसी विभाजन प्रायः संभव नहीं होता। ऐसे ग्रामीण जो विशेष परिस्थिति में पंच बनने का स्वप्न देख रहे थे उन्हें इस शान्तिपूर्ण विभाजन से बड़ी निराशा हुई।

इस बार गंगाबाबू अकेले ही प्रयाग गए। प्लेग के भयंकर प्रकोप के कारण सुरक्षित आवास खोजना था। इसके लिए भी पुनः मालवीयजी से ही सहयोग मिला। स्वास्थ्यकर इलाका में मकान मिलना अब सहज नहीं रह गया था। नवीन आवास लाला रामचरणदास के भवन में मिला। जब तक प्लेग का प्रभाव रहा आप रविनाथ झाजी के साथ इस मकान में रहे।

वेतन विसंगति के लिए गंगा बाबू ने वर्षों तक अधिकारियों से पत्राचार किया। इसी बीच डा. थीबो के साथ मिलकर विद्यारण्य विरचित 'विवरण-प्रमेय-संग्रह' का अध्ययन प्रारंभ किया। विश्वकोष के लिए भी कार्यारंभ हो चुका था। इस एकान्तवास में प्रशस्तपाद भाष्य और उसकी विस्तृत टीका लिखी और न्यायकन्दली का अनुवादारंभ किया।

महाराष्ट्र विद्यार्थी सामाजिक सभा के संरक्षक

गंगानाथ बाबू महाराष्ट्र विद्यार्थी सामाजिक सभा के संरक्षक नियुक्त हुए। इस संस्था का संरक्षक होना अत्यन्त गौरव का विषय था। म्योर कालेज

के प्रति महाराष्ट्रिओं का अद्‌भुत आकर्षण था। महाराष्ट्री छात्र संस्कृत तथा संस्कृत के विद्वान् पण्डितों का अत्यधिक सम्मान करते थे।

इस समय अधिकांश मेधावी छात्र महाराष्ट्र के ही थे। दुर्भाग्य से संयुक्त प्रान्त जो आर्यावर्त्त का हृदयस्थल था, जिसकी सीमा उत्तर में हिमालय, दक्षिण में विन्ध्य, पश्चिम में कुरुक्षेत्र की सरस्वती नदी और पूर्व में प्रयाग है वहाँ के अधिवासियों का संस्कृत शिक्षा के प्रति आकर्षण क्षीण से क्षीणतर होता जा रहा था।

महाराष्ट्री छात्रों की यह सभा शिवकोटी में लाला रामचरण दास के नदी - तटवर्ती विशाल उद्यान-गृह में होती थी। इसमें संगीत, काव्य, हास्य, विनोदमय भाषण, रोचक वाद-विवाद आदि का विन्यस्त आयोजन सबका मन मोह लेता था।

एक संस्कृत स्वागत गीत लिखकर महाकवि का सम्मान

महाराष्ट्री छात्रों के एक दल ने अनुरोध पूर्वक गंगानाथ बाबू से कहा कि वे उनके उत्सव के लिए संस्कृत में एक स्वागत गीत लिख दें। कदाचित उन छात्रों के मन में आपके श्लोक निर्माण विषयक प्रवीणता की परीक्षा लेने का भाव भी रहा हो। गंगा बाबू ने यथा-समय एक सुन्दर गीत लिखकर उन छात्रों को दे दिया। छात्र समुदाय में इस कवित्वपूर्ण स्वागत गान की बहुत दिनों तक चर्चा रही। अवकाशोपरान्त एक प्रतिभाशाली छात्र जब महाराष्ट्र से लौटा तो गंगा बाबू को सादर प्रणाम कर कहा- 'महोदय आपका स्वागत गान दक्षिण के अनेक सांस्कृतिक गोष्ठियों में प्रस्तुत किया गया। हमारे यहाँ सभी की आम राय है कि इसके रचयिता अवश्य ही प्रतिभा सम्पन्न और महाकवि हैं। आपके गीत सबको प्रिय और सांस्कृतिक गरिमा के अनुरूप प्रतीत हुए।'

लोक-शिक्षा-निदेशक: डा. टी.सी. लेविस

डा. थीबो तथा डा. भेनिस गंगानाथ बाबू की योग्यता की चर्चा अपने मित्रों तथा उच्चाधिकारियों से करने में परहेज नहीं रखते थे। लोक-शिक्षा-निदेशक टी.सी.लेविस महोदयं अत्यन्त भद्र शिक्षाविद् थे। डा. भेनिस ने उनसे गंगानाथ बाबू के पांडित्य की चर्चा की। प्रथम साक्षात्कार में ही लेविस महोदय गंगा बाबू के प्रति कृपालु प्रतीत हुए। जब तक आप शिक्षा निदेशक रहे गंगानाथ झा जी से सलाह मशविरा लेते रहे। लेविस महाशय स्वयं विद्वान् थे इसलिए विद्वानों का सम्मान करना भी जानते थे। आपने 'फ्राम द ईस्ट एण्ड फ्राम द वेस्ट' शीर्षक से अपनी कविताओं का एक सुन्दर संकलन भी प्रकाशित किया था। गंगानाथ

बाबू की योग्यता के अनुरूप उन्होंने आपको प्रान्तीय पाठ्य पुस्तक समिति में सचिव का पद प्रदान किया।

हस्त लेख विशेषज्ञ

म्योर कालेज में सेवारंभ के कुछ समय बाद गंगाबाबू को एक समन मिला। आपको हस्तलेख विशेषज्ञ के रूप में इलाहाबाद न्यायलय में उपस्थित होना था। डा. थीबो से परामर्श लेकर आप न्यायालय में उपस्थित हुए। गंगाबाबू ने ज्वाइंट मैजिस्ट्रेट से कहा कि- 'महोदय मैं संस्कृत विषय का विद्वान् हूँ, हस्तलेख विशेषज्ञ नहीं। न्यायालय के सम्मानार्थ ही मैं उपस्थित हुआ हूँ।' आपकी सत्यनिष्ठा पर मैजिस्ट्रेट ने कहा कि- हाँ मैं जानता हूँ कि विद्वान् होने से स्वतः आप विशेषज्ञ भी हैं। कृपया सहज बुद्धि वाले गवाह के रूप में अपने साक्ष्य द्वारा न्यायालय की मदद करें।' फिर गंगाबाबू को दो हस्ताक्षर दिये गए और दोनों में अन्तर स्पष्ट करने को कहा गया। यथा निर्देश कार्य संपादन कर वे लौट आए। यह इस प्रकार का प्रथम और अद्भुत अनुभव था।

पाठ्य पुस्तक समितिः भारतीय संस्कार की रक्षा

प्रखर वक्ता और स्पष्ट आलोचना के लिए पाठ्यपुस्तक समिति में गंगा बाबू की ख्याति बढ़ी। इस सेवा के लिए जहाँ डा. भेनिस को प्रसन्नता हुई वहीं सी.एफ. डेलाफास महोदय के मन में गंगा बाबू के प्रति (अत्यधिक लोकप्रियता के कारण) दुर्भावना ने जन्म लिया। गंगानाथ झा के प्रतिवाद को वे व्यक्तिगत आक्षेप के रूप में लेने लगे। गंगा बाबू निर्भय होकर ईमानदारी से अपने दायित्व का निर्वाह करते रहे।

एक बार निम्न कक्षा के लिए इतिहास की एक पुस्तक अनुमोदनार्थ आयी। गंगानाथ झा ने देखा कि पुस्तक में अनेक विसंगतियाँ थीं। दुर्योग से उसका अंग्रेजी तथा उर्दू संस्करण अनुमोदित भी हो चुका था। इस पुस्तक में रामायण तथा महाभारत को 'निरी कहानियाँ' मात्र प्रमाणित किया गया था। इससे भी अधिक आपत्तिजनक यह था कि इसमें आर्य लोगों को वस्त्रहीन अवस्था में सूर्योपासना करते हुए दिखाया गया था। भगवान् बुद्ध के प्रसंग में लिखा गया था कि आपने मानवीय कष्टों को स्वप्नावस्था में देखकर अनुभव किया था। एक भारतीय के लिए एक-एक दोष अक्षम्य था। इस पुस्तक को जिस प्रकाशक ने प्रस्तुत किया था विभाग में उसकी बहुत पैठ थी। उपसमिति के गंगाबाबू सहित सभी सदस्यों ने सर्वथा प्रतिकूल प्रतिवेदन दिया। सामान्य समिति के सदस्यों को यह उचित प्रतीत नहीं हुआ। उनलोगों ने अपनी मान्यता दी कि उपसमिति के सदस्यों को केवल 'पुस्तक की भाषा ठीक है या नहीं' इसी पर विचार करना था।'

इस टिप्पणी पर पं. आदित्यराम जी अत्यधिक क्रुद्ध हुए। गंगा बाबू ने अपना पक्ष रखते हुए ओजपूर्ण स्वर में कहा कि- 'अध्यक्ष महोदय कृपया स्पष्ट करें कि हमलोगों को जो पुस्तकें समीक्षार्थ भेजी जाती हैं उनके प्रसंग में हमारा वास्तविक कर्त्तव्य क्या होना चाहिए ? हमें भाषा और विषय दोनों का मूल्यांकन करना है अथवा केवल भाषा पर ?' अध्यक्ष लेविस महोदय ने न्यायपूर्वक कहा कि- 'विद्वान् लोगों को पुस्तकें समीक्षार्थ भेजने का अर्थ है वे उसकी भाषा, विषयवस्तु तथा इतर दृष्टियों से उसका मूल्यांकन करें।'

डा. लेविस के आदेश से उपसमिति का सम्पूर्ण प्रतिवेदन पढ़ा गया। इस विचित्र और दोषयुक्त पुस्तक से अवगत होकर डा. थीबो ने कहा- 'हमें विद्वानों पर दोषारोपण के स्थान पर उन्हें धन्यवाद देना चाहिए जिनके सत्प्रयास से इस भयंकर भूलें की ओर हमारा ध्यान गया। पूर्व संस्करणों में इस दृष्टि की सदैव उपेक्षा होती रही है।'

आपत्तिजनक अंशों का परिष्कार कर पुनर्लेखन का दायित्व गंगानाथ झा जी को ही सौंपा गया। समिति में गंगाबाबू की जैसे-जैसे प्रतिष्ठा बढ़ती गई डेलाफांस का वैमनस्य बढ़ता गया।

विवेकानन्द का अध्ययन

लार्ड कर्जन ने इंग्लेंड की अंग्रेजी पत्रिका 'एथीनिअम' में प्रकाशनार्थ वार्षिक प्रतिवेदन के लिए पुस्तक समीक्षा लिखने का नवीन निर्देश पत्र प्रेषित किया। इसी कार्य के प्रसंग से गंगा बाबू ने विवेकानन्द व्याख्यान माला का अध्ययन प्रारम्भ किया। इस विस्तृत अध्ययन के उपरान्त प्रेषित प्रतिवेदनों की बड़ी प्रशंसा हुई। इस बीच डा. थीबो के साथ विश्व कोश का कार्य भी चलता रहा।

वेणीसंहार और सत्यहरिश्चन्द्र नाटक

पुत्र शिवनाथ के जन्म के उपरान्त गंगाबाबू १३, चर्च रोड स्थित नवीन बंगले में चले आए। यहाँ वसन्त पंचमी को एक भव्य समारोह का आयोजन हुआ। आयोजन का प्रमुख आकर्षण था संस्कृत का वेणीसंहार और हिन्दी का सत्य हरिश्चन्द्र नाटक। छात्रों तथा अध्यापकों द्वारा अभिनीत नाटकों ने प्रेक्षकों को अभूतपूर्व आनन्द प्रदान किया। सत्य हरिश्चन्द्र नाटक में सूत्रधार की भूमिका का निर्वाह किया था पुरुषोत्तमदास टंडन ने। इसी वर्ष प्रयाग में कुंभ मेला लगा हुआ था। विशाल दर्शक समूह के समक्ष इन उत्कृष्ट तथा भव्य नाटकों का सफल प्रस्तुतीकरण सबको मुग्ध कर गया।

पुलिस अधीक्षक डी. एम. स्ट्रेट

पॉयनियर के एक संपादक सी.बी. राटिरगन गंगाबाबू के पड़ोसी थे। आप अवकाश में गये तो उनके रिक्त बंगले में ई. एम. स्ट्रेट नामक एक पुलिस अधीक्षक महोदय रहने आए। भारतीय बच्चों की बाल सुलभ क्रीड़ाएँ आपको नहीं भाती थी। आंशिक शोरगुल भी उनके लिए वेदना स्वरूप था। यदा-कदा उनका उबाल प्रकट होने लगा। गंगानाथ झा जी यूरोपीय समाज में अत्यधिक लोकप्रिय थे। सबों ने पुलिस अधीक्षक महोदय की तीव्र भर्त्सना की लेकिन गंगाबाबू ने स्वयं ही आवास बदल लिया और ५, म्योर पथ पर एक बंगले में आकर रहने लगे। प्लेग से प्रभावित इलाका रहने के कारण अनेक भवन परिवर्तित कर आप लाला रामचरणदास के शिवकोटी वाले बंगले पर आ गए। यहाँ से गंगा की धारा अत्यन्त निकट थी।

इस बीच विन्ध्यनाथ बाबू का स्वास्थ्य क्षीण हो चला था। आपको लेकर गंगाबाबू हरिद्वार तथा ऋषिकेश की यात्रा पर भी गए किन्तु अब अग्रज में स्वयं सामान्य होकर चलने की भी शक्ति नहीं थी। इसी यात्रा में मित्र गोविन्ददास के साथ बाँस के बेड़े पर चढ़ने का आनन्द भी लिया। नदी किनारे घंटों बैठना गंगाबाबू को सर्वाधिक प्रिय था।

'इण्डियन थॉट' का प्रकाशन

डा. थीबो के साथ किये जाने वाले कार्य बहुत महत्त्वपूर्ण और समयसाध्य थे। इसी क्रम में अनेक संस्कृत पुस्तकों के अनुवाद की भी योजना बनी। विश्वकोश का कार्य भी प्रगति पर था। अनेक सरल तथा क्लिष्ट ग्रन्थों का अनुवाद किया गया। इसी बीच डा. थीबो म्योर कालेज के प्राचार्य पद से निवृत्त होकर कलकत्ता विश्वविद्यालय के कुलसचिव होकर कलकत्ता चले गए। कालान्तर में यहीं वैदिक संस्कृत के वरिष्ठ प्राध्यापक बनें और मृत्यु पर्यन्त इसी पद पर कार्यरत रहे। अब डा. थीबो चाहकर भी अवकाश नहीं निकाल पा रहे थे। पूर्व संपादित सभी कार्य 'इंडियन थॉट' नाम से त्रैमासिक जर्नल के रूप में प्रकाशित हुआ और इसे अपूर्व ख्याति मिली। डा. थीबो के कलकत्ता जाने के उपरान्त 'इण्डियन थॉट' का सम्पूर्ण दायित्व गंगानाथ झा जी ने ही संभाला।

डेलाफॉस महोदय के लोक शिक्षा निदेशक बनते ही गंगानाथ झा को अनेक विसंगतियों का सामना करना पड़ा। न्यायोचित वेतन विसंगतियों का परिहार करना, डेलाफॉस महोदय ने उचित न समझा। गंगा बाबू का पक्ष डा. थीबो तथा डा. लेविस लेते रहे किन्तु डेलाफॉस महोदय की पूर्वाग्रह-ग्रस्तता के कारण अपेक्षित अर्थिक लाभ नहीं मिल सका। सात वर्षों के उपरान्त सरकार ने खेद प्रकाश किया और आपको ५० रु. प्रतिमाह क्षतिपूरक भत्ता देने का प्रस्ताव किया।

सिनेट की सदस्यता प्राप्ति

वर्ष १९०५ ई. में गंगानाथ बाबू भारतीय विश्वविद्यालय अधिनियम १९०४ के अनुरूप सिनेट के सदस्य मनोनीत हुए। अल्पायु में इस प्रतिष्ठा की प्राप्ति विशेष महत्त्व रखती थी। उस समय कुलपति, मुख्य न्यायाधीश तथा लोक शिक्षा निदेशक सिंडिकेट के पदेन सदस्य होते थे। संयुक्त प्रान्तीय शिक्षा सचिव वटलर महोदय से डा. लेविस ने गंगाबाबू का परिचय कराकर उनकी अत्यधिक प्रशंसा की थी। यह सौभाग्य डा. लेविस की कृपा का ही सुपरिणाम था। सिण्डिकेट के सदस्यों में डा. थीबो, डा. भेनिस, पण्डित सुन्दर लाल, पंडित मदन मोहन मालवीय, कैनिङ कालेज के वार्ड, अलीगढ़ महाविद्यालय के थियोडोर मौरिस और काक्स जैसे विद्वान् विराजते थे।

सिनेट की पहली बैठक में ही गंगा बाबू ने अपने ओजपूर्ण विचार से सबको प्रभावित किया किन्तु काक्स और डा. भेनिस के मतान्तर के कारण प्रस्ताव तत्काल लौटा लिया गया।

गंगानाथ झा की ख्याति बढ़ती ही गयी। कुलपति जार्ज नॉक्स जो उच्च न्यायालय के जज रह चुके थे, ने गंगा बाबू की विद्वत्ता को आदर्श माना। नॉक्स महोदय गंगानाथ बाबू को बहुत सम्मान देने लगे। गंगाबाबू के सरल स्वभाव और गहन अध्ययनशीलता के कारण शिक्षक तथा अधिकारी उन्हें श्रद्धा की दृष्टि से देखने लगे। इसी समय सिण्डिकेट की सदस्यता के लिए भी आपका नाम प्रस्तावित हुआ।

जोन्स की मान्यता का विद्वत्तापूर्ण खण्डन

इंग्लैण्ड से भारत आने वाले अंग्रेज शिक्षकों की अवधारणा होती कि भारतीय छात्र अधम कोटि के होते और अंग्रेजी समझने की क्षमता उनमें नहीं होती। श्री कैमरॉन महोदय ने एक प्रस्ताव रखा कि अंगरेजी साहित्य को वैकल्पिक बना दिया जाय। उनका तर्क था कि भारतीय छात्र अंग्रेजी साहित्य का रसास्वादन नहीं कर पाते हैं। सिनेट में ठीक ऐसा ही प्रस्ताव जब आगरा कालेज के जोन्स ने रखा तो गंगानाथ बाबू ने इसका प्रबल विरोध किया।

गंगाबाबू ने अपनी ओजपूर्ण टिप्पणी में कहा कि- महाशय ! छात्र विषय का रसास्वादन करते या नहीं यह बहुत कुछ शिक्षक की अध्यापन क्षमता पर निर्भर करता है। मुझे स्मरण है कि जब मैं क्वींस कालेज का छात्र था तो एक प्राध्यापक ने वड्सवर्थ रचित 'ओड ऑन इम्मोर्टिलिटी' का अध्यापन इस तरह किया था कि आज भी मैं उसका यथावत् वर्णन कर सकता हूँ। उस कक्षा में कोई छात्र हिलते तक नहीं थे। संयोगवश ठीक यही कविता स्नातक की कक्षा में भी पढ़ना था। इस समय जिन अध्यापक को वह पढ़ाना था उनकी कक्षा में

छात्र जम्हाई लेते थे। इसलिए यह कहना कि छात्र रसास्वादन नहीं करते सर्वथा अनुचित है। इसके लिए दोषी शिक्षक होते, छात्र नहीं।'

गंगानाथ झा के इस गंभीर प्रतिवाद का प्रभाव पड़ा और प्रस्ताव को रोक दिया गया। पाठ्यक्रम सम्बन्धी आपके अनेक प्रस्ताव मान लिये गए और अन्तरस्नातक में विषय-विभाजन विषयक विवाद में भी वार्ड महोदय पराजित हुए। अपराजेय समझे जानेवाले वार्ड की पराजय पर प्रसन्न होकर लेविस महोदय ने लिखा- 'इस महान् विजय पर आपको धन्यवाद'। प्रिन्सिपल जेनिंग्स इसी दिन से उन्हें कुशल नीतिज्ञ मानने लगे और बधाई दी। इसी बीच आर्ट्स फैकल्टी में 'डाक्टरेट' उपाधि के लिये गंगाबाबू का संघर्ष भी सफल हुआ। इसके लिए आवश्यक विनियमावली के लिए बनी समिति के संयोजक आप ही बनाए गए। इस प्रस्ताव को सीनेट की मान्यता मिल गई। विस्तृत वाद-विवाद के उपरान्त मध्यम मार्ग का अनुसरण किया गया। इस प्रस्तावित उपाधि का नाम डी. लिट्. रखा गया। इस कार्य के लिये तीन शोध निर्देशकों, परीक्षकों को रखने का प्रस्ताव हुआ।

डी. लिट्. उपाधि की प्राप्ति

डा. थीबो का संकेत पाकर गंगानाथ बाबू ने डी. लिट् शोध के लिए 'पूर्व मीमांसा में प्रभाकर मत' का चयन किया। तीन निर्देशक-सह-परीक्षक हुए- डा. थीबो, पं. शिव कुमार मिश्र तथा महामहोपाध्याय पं. गंगाधर शास्त्री। अंग्रेजी में लिखित शोध-प्रबन्ध को पुनः संस्कृत स्वरूप भी देना पड़ा। तीनों परीक्षकों ने शोध-प्रबन्ध का सम्यक् रूपेण अनुमोदन किया। वर्ष १९०९ ई. में मौखिक परीक्षा का आयोजन हुआ। मुक्त मौखिकी में पं. सुन्दर लाल झा भी उपस्थित थे। पूछे गये प्रश्नों के उत्तर क्रमशः संस्कृत, अंग्रेजी तथा हिन्दी में दिये गए। इसी वर्ष नवम्बर माह में आपको डी. लिट्. उपाधि से अलंकृत किया गया। आपकी एक महत्वाकांक्षा पूरी हुई।

हिन्दी के लिए उर्दू से पृथक् पाठ्यक्रम का प्रस्ताव

डा. गंगानाथ झा ने एक प्रस्ताव रखा कि विश्वविद्यालयी परीक्षा के लिए देशी भाषा में निबन्ध और अनुवाद पत्र को अनिवार्य किया जाय। यूरोपीय तथा उर्दू शिक्षकों ने इस प्रस्ताव का विरोध किया। प्रकारान्तर से गंगाबाबू हिन्दी के लिए पृथक् पाठ्यक्रम का पक्ष प्रस्तुत कर रहे थे। ऐसा होने पर हिन्दी शिक्षकों की नियुक्ति का मार्ग सरल हो जाता। उर्दू प्रेमी हिन्दी को स्वतंत्र भाषा के रूप में पल्लावित होते हुए नहीं देखना चाहते थे। तीव्र विरोध के बाद भी गंगाबाबू ने देश भाषा से सम्बन्धित विस्तृत अभ्यावेदन प्रस्तुत किया। इसमें देशी भाषाओं के लिए गठित समिति में सदस्यों की संख्या में विस्तार करने तथा हिन्दी, बंगला,

गुजराती, मराठी, तेलगू, तमिल आदि भाषाओं के समुचित विकास की ओर विशेष ध्यान दिलाया गया था।

कला संकाय के डीन

विरोध और समर्थन के साथ गंगाबाबू की लोकप्रियता बढ़ती ही गई। संस्कृत के उद्‌भट विद्वान् को सम्मानित करने का अवसर मिला और आपको कला संकाय का डीन (संकायाध्यक्ष) प्रतिनियुक्त किया गया।

सिण्डिकेट की सदस्यता

पंडित आदित्यराम जब विश्वविद्यालय सेवा से निवृत्त हुए तो एक बार फिर गंगानाथ झा को सिण्डिकेट का सदस्य बनाने का नाम प्रस्तावित हुआ। इस बार प्रबल बहुमत से प्रस्ताव को मान्यता मिली और डा. गंगानाथ झा सिण्डिकेट के सम्माननीय सदस्य चुन लिये गये। यह एक बहुत बड़ा सम्मान था।

नवीन आवास और नवीन सम्मान

प्लेग के कारण बार-बार बंगला बदलने में अत्यधिक असुविधा हो रही थी। विचार आया स्वगृहंसुखमुत्तमम्'। कलक्टर के सहयोग से गंगानाथ बाबू ने भूमि का आवंटन करवाया और मित्रों तथा प्रकाशकों के सहयोग से अत्यल्प मानक समय में भवन बनकर तैयार हो गया। २४ अप्रैल को आपने सपरिवार नवीन भवन में प्रवेश किया। इसी समय डा. भेनिस की अनुशंसा पर सरकार द्वारा सर की विशिष्ट उपाधि से अलंकृत किया गया। आप अब डा. सर गंगानाथ झा हो गये। प्रथमतः इसकी सूचना तार द्वारा गंगाबाबू के मित्र राजा कीर्त्यानन्द सिंह ने कलकत्ता से दी थी। बाद में डेलाफॉस ने कहा कि मैंने उपाधि विशेष के लिए आपका नाम अनुशंसित किया है।

प्राच्यविद् सम्मेलन, शिमला

वर्ष १९११ ई. में जब बटलर महोदय भारत सरकार के शिक्षा-सदस्य हुए तो आपने शिमला में प्राच्यविदों का एक सम्मेलन बुलवाया। इसमें डा. थीबो, डा. भेनिस, सर रामकृष्ण भंडारकर, श्रीधर भंडारकर, पं. हरप्रसाद शास्त्री, डा. बुलनर, मौलवी शिब्ली, मौलवी कमालुद्दीन, डा. डेनिसन रॉस, शरतचन्द्र दास, ईकोल फ्रांकेस जैसे विद्वानों के साथ-साथ डा. गंगानाथ झा जी भी आमंत्रित किये गये थे। गंगाबाबू के लिए यह सम्मेलन कई दृष्टियों से महत्वपूर्ण प्रमाणित हुआ। तीन दिनों तक चलनेवाले इस सम्मेलन में संस्कृत को प्राचीन परम्परानुरूप पठन-पाठन के लिए विशेष रूप से संवर्द्धित करने का निर्णय लिया गया।

इस विषय पर गंगाबाबू ने एक अत्यन्त प्रभावशाली व्याख्यान दिया था। वर्त्तमान शिक्षा प्रणाली के दोषों को आपने ऐसे अकाट्य तर्कों के साथ प्रस्तुत किया कि सभी मुग्ध हो उठे। काशी के तीन महाविद्यालयों में आचार्योत्तर अध्येतावृत्ति का प्रावधान गंगाबाबू के प्रस्तावानुरूप ही हुआ। पं. हर प्रसाद शास्त्री तथा अनेक विद्वानों से यहाँ गंभीर वार्ता हुई। इस सम्मेलन में अमरनाथ बाबू भी साथ गए थे।

लोक सेवा आयोग के शैक्षिक प्रतिनिधि

नवगठित लोक सेवा आयोग ने प्रान्तीय स्तर पर तीन प्रतिनिधियों के मनोनयन का निर्देश दिया था। आयोग के अध्यक्ष थे लार्ड आइलिंगटन। संयुक्त प्रान्त में भारतीय शिक्षा सेवा से जेनिंग्स, ज्ञानेन्द्रनाथ चक्रवर्ती और सर गंगानाथ झा निर्वाचित हुए। चक्रवर्ती महोदय प्रशासनिक पक्ष और गंगानाथ झा शैक्षिक पक्ष के प्रतिनिधि हुए। बड़े पुत्र भवनाथ के साथ आयोग की बैठक में भाग लेने आप दिल्ली गए। वहाँ बाबू गोविन्ददास के एक परिजन ने आवासीय व्यवस्था की। आयोग के सचिव वटलर महोदय ने आयोग की प्रक्रिया से गंगाबाबू को परिचित कराया और कहा कि आप चाहें तो बैठकर प्रथम दिन की कार्यवाही भी देख सकते हैं। आयोग में गोखले, सर मूरे हैमिक, रैमजे मेक डोनाल्ड, सर थियोडोर मारिसन, चौबाल आदि विद्वानों से मिलने का अपूर्व योग मिला।

दूसरे दिन प्रान्तीय शिक्षा तथा शिक्षकों के सम्बन्ध में गंगानाथ बाबू से अनेक प्रश्न पूछे गए। निर्भीकता पूर्वक आपने एक-एक प्रश्न का समीचीन उत्तर दिया। शिक्षा जगत में व्याप्त विसंगतियों का मार्मिक आकलन भारतीय सदस्यों को उत्साहित करने के लिए पर्याप्त था। तभी मैकडोनाल्ड महोदय ने पूछा कि यूरोप से भारत आकर शिक्षक के रूप में काम करने वालों को भारतीय शिक्षकों से अधिक वेतन देना क्या उचित नहीं। उनका अधिक वेतन माँगना प्रथम दृष्टि में अनुचित प्रतीत नहीं होता। आपका क्या विचार है ?

डा. गंगानाथ झा स्वयं इस समस्या से प्रभावित थे और ऐसे भारतीयों का दर्द जानते थे जो अधिक कार्य क्षमता रखते हुए भी असमान वेतन पाते थे। आप बोले- 'महाशय सेवा करनेवाले अधिक माँगे यह सर्वथा उचित है किन्तु स्वामी यदि समान कार्य करने वाले सेवकों को असमान वेतन देकर उनमें भेद करे तो यह सर्वथा अनुचित है। यह सत्य है कि यूरोपीय शिक्षकों का वैयक्तिक व्यय अधिक है किन्तु भारतीयों का पारिवारिक दायित्व उनसे कहीं अधिक है।'

ग्रेडेशन या स्तरीयता के प्रश्न पर सौंपे गये प्रतिवेदन के विरोध में बोलते हुए गंगानाथ ने कहा कि- 'मैं ऐसा नहीं मानता। अभी संयुक्त प्रान्त में जितने यूरोपीय शिक्षक हैं उनसे भारतीय शिक्षकों की योग्यता किसी भी मायने

में कम नहीं है ।' प्रान्तीय अधिकारियों ने अपने प्रतिवेदन में लिखा था कि भारतीय शिक्षक अन्तरस्नातक कक्षा तक ही अध्यापन करते हैं । इस आशय का प्रमाण प्रस्तुत करते हुए गंगानाथ झा ने कहा कि - 'यह सूचना अयथार्थ है । मैं म्योर कालेज में उच्चतर कक्षाओं में अध्यापन करता हूँ और लगभग सभी शिक्षकों की यही स्थिति है ।'

अनेक सदस्य जहाँ गंगानाथ झा के इस स्पष्टीकरण से प्रसन्न हुए वहीं अनेक को यह मुखर विद्वान् अपने विरुद्ध प्रतीत हुआ । सत्य को बर्दाश्त करने की शक्ति सबमें नहीं होती ।

पटना विश्वविद्यालय स्थापना समिति तथा बिहार शिक्षा समिति

पटना विश्वविद्यालय तथा प्रान्त में शुद्ध संस्कृत शिक्षा प्रसार के लिए नवनिर्मित बिहार राज्य में एक प्रतिनिधि समिति का निर्माण हुआ । डॉ. थीबो तथा डा. गंगानाथ झा जी इसके माननीय सदस्य थे । गंगाबाबू ने बैठकों में महत्त्वपूर्ण विचार रखे और योजना निर्माण के लिए बहुमूल्य सुझाव दिये । संस्कृत शिक्षा सम्बन्धी प्रस्ताव को तत्काल ही स्वीकृति मिल गई तथा प्रारंभ में एक लघुकाय विश्वविद्यालय की स्थापना हुई ।

सेन्ट्रल हिन्दू कालेज और बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय

हिन्दू कालेज के प्रति अतिरिक्त उत्साह के कारण ही पं. आदित्यराम सरकार के कोपभाजन हुए थे । गंगानाथ झा को शिक्षा-सेवा में आते ही डॉ० थीबो ने सतर्क कर दिया था, क्योंकि हिन्दू कॉलेज के प्रति आपका भी प्रारंभिक लगाव वे देख चुके थे । हिन्दू कॉलेज काशी के विद्वानों के लिए अब प्रतिष्ठा का प्रश्न बन गया था । श्रीमती एनी बेसेंट के सहयोग से चिरप्रतीक्षित हिन्दू महाविद्यालय की स्थापना हुई । डा. भगवान दास ने इसकी सेवा के लिए डिप्टी कलक्टरी की अपनी नौकरी भी छोड़ दी । पं. आदित्यराम इसके रेक्टर बनाए गए । थियोसाफिकल सोसाइटी के सहयोग से हिन्दू कालेज ने द्रुतगति से विकास कर क्विंस कालेज की समकक्षता प्राप्त कर ली । इसके प्राचार्य के लिए डा. गंगानाथ झा जी के नाम का प्रस्ताव हुआ किन्तु इस समय वे स्वयं नहीं जा सके ।

पं. मदनमोहन मालवीय की महत्त्वाकांक्षी योजना बनारस हिन्दू विश्व-विद्यालय के लिए आयोजित विचार गोष्ठियों में गंगानाथ झा सक्रिय रुप से भाग लेते रहे । उच्चशिक्षा अधिकारियों से प्रस्ताव स्वीकृत कराने, पाठ्यक्रम तैयार करने तथा अन्य व्यवस्थादि में गंगानाथ झा जी ने महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई थी । विश्वविद्यालय की स्थापना पहले हिन्दू महाविद्यालय में ही हुई । कालान्तर में इसे नवनिर्मित विशाल भवन में ले जाया गया । इस विश्वविद्यालय

के प्रथम कुलपति हुए पं. सुन्दरलाल। जब तक सुन्दरलाल जीवित रहे तब तक सर गंगानाथ झा विश्वविद्यालय सलाहकार परिषद् के सदस्य बने रहे। इस विश्वविद्यालय की स्थापना के लिए सर झा को अपने अधिकारियों का कोप भाजन भी बनना पड़ा। विश्वविद्यालय में संस्कृत शिक्षक तथा अंग्रेजी शिक्षक को पृथक् वेतनमान दिये जाने का गंगाबाबू ने प्रखर विरोध किया.। अन्ततः उनके प्रस्ताव को मानना ही पड़ा। बाद में पं. सुन्दरलाल के देहावसान के उपरान्त मद्रास के सर वी.एस. शिवस्वामी अय्यर कुलपति पद पर सुशोभित हुए। पं. मालवीय जी के अतिरिक्त उत्साह और विचित्र कार्य-पद्धति के कारण अय्यर महोदय ने अपना पदत्याग दिया और स्वयं मालवीयजी इसके कुलपति बने। यूरोपीय समाज में गंगाबाबू का सम्मान देखकर मालवीय जी को शंका हो गई थी कि अब गंगानाथ बाबू सरकारी पक्ष ले रहे हैं। किन्तु ऐसा कभी नहीं हुआ। सत्यनिष्ठ डॉ. झा कभी सत्य से विचलित नहीं हुए।

वर्ष १९१५ ई. में भेनिस क्वींस कॉलेज और सरकारी संस्कृत कॉलेज के आचार्य पद से सेवा निवृत्त हो गए। कालान्तर में वे संस्कृत-शिक्षा अधीक्षक तथा कतिपय अन्य पदों पर आसीन हुए। इस बीच अनेक ऐसे प्रयास हुए जिससे डॉ. भेनिस और डॉ. गंगानाथ झा के बीच का सौहार्द्र भंग हो। किन्तु डॉ. भेनिस अपने इस शिष्य-मित्र को शुरू से ही जानते थे। भूतपूर्व छात्रों के द्वारा डॉ. भेनिस के सम्मान में आयोजित विदाई समारोह के अध्यक्ष थे राजा माधोलाल और विद्वत्तापूर्ण मानपत्र पढ़ा था डॉ. गंगानाथ झा ने।

विशिष्ट प्राध्यापकों का पलायन

अत्यधिक वेतन पाकर अध्ययन, अध्यापन तथा शोध से तटस्थ रहने वाले दो प्राध्यापकों प्रोफेसर जेमन्स और रशब्रक विलियम्स के विरोध में गंगानाथ झा ने सिनेट में अपना अभ्यावेदन दिया। आपने कहा था कि ऐसे विद्वानों को उच्चत्तर कक्षाओं में अध्यापन करने तथा छः माह पर अपना शोध प्रगति - पत्र प्रस्तुत करने का निर्देश दिया जाय। प्रस्ताव को स्वीकृति मिल गई। एक ने तत्काल और दूसरे महोदय ने कुछ ही दिनों में अपना स्थानान्तरण इतर पदों पर करा लिया।

डॉ. भेनिस ने अपने प्रभाव से अनेक प्रभाग स्वीकार लिया था। किसी के साथ भी वे न्याय नहीं कर पा रहे थे। संस्कृत शिक्षा अधीक्षक, संस्कृत कॉलेज के प्राचार्य, संस्कृत कालेज परीक्षा कुलसचिव, वैदिकोत्तर संस्कृत के विश्वविद्यालय प्रोफेसर आदि पर आप कार्यरत थे। दुर्योग से कुछ ही माह बाद कैंसर रोग के कारण डॉ. भेनिस का निधन हो गया। डॉ. झा इस सूचना से मर्माहत हुए। सरकारी आदेश द्वारा डॉ. भेनिस द्वारा गृहीत सभी पदों पर डॉ. गंगानाथ

झा का स्थानान्तरण कर दिया गया। किन्तु भारतीय रहने के कारण वह वेतन निर्धारित नहीं किया गया जो डॉ. भेनिस पाते थे।

काशी यात्रा

काशी जाने से पूर्व म्योर कॉलेज में भव्य विदाई समारोह का आयोजन हुआ। भीषण वर्षा में भी अनेक शिक्षक तथा छात्र गंगाबाबू को छोड़ने प्रयाग स्टेशन तक आये। काशी पहुँचने पर मित्र गोविन्ददास तथा मैथिल समुदाय के साथ पं. मुरलीधर झा स्वागतार्थ उपस्थित थे। इस समय तक अमरनाथ झा जी ने म्योर कालेज में अंग्रेजी व्याख्याता पद पर कार्यारंभ कर लिया था। डा. भेनिस की भाँति सरस्वती-भवन पुस्तकालय में आवासीय सुविधा आपको नहीं मिली। यहाँ गंगाबाबू का वेतन ५००/- प्रतिमाह निर्धारित हुआ जबकि इन्हीं सेवाओं के लिए डा. भेनिस दो सहस्र से ऊपर प्राप्त करते थे। अन्य भत्ताओं में भी अब कार्पण्य होने लगा। सर झा को यह देखकर अतीव हर्ष हुआ कि महामहोपाध्याय तात्याशास्त्री अभी तक महाविद्यालय सेवा में थे। आपसे मिलकर गंगाबाबू को अपूर्व परितोष हुआ। काशी में रहकर डा. झा ने लेखनी का प्रचुर उपयोग किया। यहीं 'इंडियन थॉट' जिसका प्रकाशन ग्यारह अंकों के उपरान्त बन्द हो गया था, उसे पुनः प्रारंभ करने का निर्णय लिया। इसके पूर्व प्रकाशित अंकों की समीक्षा में डा. कीथ ने जर्नल आफ रायल एसियटिक सोसाइटी, लंडन में लिखा था- 'इस ग्रन्थमाला का उत्कर्ष अवसाद मिश्रित है। इसका प्रथम अंक जार्ज थीबो और गंगानाथ झा के कुशल संपादन में १९०७ ई. में प्रकाशित हुआ। ऐसा लग रहा था कि यह सुदीर्घजीवी और समृद्ध होगा। इसमें जितने दार्शनिक ग्रन्थों के अनुवाद होते थे सभी उत्कृष्ट थे। ग्यारह अंकों तक सफल प्रकाशन के उपरान्त यह अवसन्न हो गया। प्राच्य विद्या के विद्वानों को इस व्यवधान से अपार क्षति हुई। इस ग्रन्थमाला का अवदान अविस्मरणीय बना रहेगा। वस्तुतः यह गंगानाथ झा के महान श्रम का ही प्रतीक है। सम्भवतः कोई योरोपवासी भारतीय दर्शन के बीहड़ क्षेत्र में गंगानाथ सी प्रवीणता हासिल नहीं कर सकता था।'

प्रथम प्राच्य विद्या सम्मेलन, पूना

क्वींस कालेज की सेवा में योगदान के उपरान्त प्रथम प्राच्यविद्या सम्मेलन पूना में प्रान्तीय सरकार के प्रतिनिधि के रूप में जाने का अवसर लाभ हुआ। अनेक प्राकृतिक तथा धार्मिक स्थलों के साथ विद्वानों का दर्शन सुलभ भी हुआ।

मालवीयजी की इच्छा थी कि काशी संस्कृत महाविद्यालय को हिन्दू विश्वविद्यालय में मिला दिया जाय। यह संस्था काशी नरेश के न्यास द्वारा परिचालित थी। नरेश के प्रतिनिधि तथा सर झा के प्रबल विरोध के कारण ऐसा विलय संभव न हुआ। संस्कृत अध्ययन तथा अध्यापन के मार्ग में प्रसरित

अवरोधों को सर झा ने यथासंभव दूर करने का विनम्र प्रयास किया। इसी समय सर झा भारत सरकार के लेजिस्लेटिव काउन्सिल (विधायी विभाग) के सदस्य निर्धारित हुए। यहाँ आवास सहित समस्त सुविधाएँ प्राप्त थीं। सर तेजबहादुर सप्रू के साथ मिलकर आपने शिक्षा सम्बन्धी अनेक प्रस्तावों का पल्लवन किया।

प्रयाग विश्वविद्यालय के कुलपति

कुछ समय बाद प्रयाग विश्वविद्यालय का पुनर्गठन हुआ। तीन सहस्त्र प्रतिमाह के वेतन पर डेलाफॉस इसके प्रथम कुलपति नियुक्त हुए। अनेक कठिनाइयों के कारण डेलाफॉस ने अवकाश ले लिया और पद त्यागने का निर्णय ले लिया। कुलाधिपति सर विलियम मॉरिस जब काशी आए तो आप गंगानाथ झा जी से अत्यधिक प्रभावित हुए। प्रयाग में भी इनकी ख्याति से आप परिचित थे। जुलाई माह में आयोजित कार्य-समिति की बैठक में सर्वसम्मति से गंगानाथ झा जी को प्रयाग विश्वविद्यालय का कुलपति चुन लिया गया। प्राचार्य तथा कुलपति पद को सुशोभित करनेवाले आप प्रथम भारतीय थे। इससे पूर्व कोई अंग्रेज ही इस पद को प्रतिष्ठित करते थे। सर झा के बाद सर आसुतोष मुखर्जी कलकत्ता विश्वविद्यालय के उपकुलपति पद पर नियुक्त हुए। भारतीय रहने के कारण वेतन घटाकर दो सहस्त्र कर दिया गया। कुलाधिपति द्वारा विधिवत् स्वीकृति प्राप्त कर पं. गंगानाथ झा को अतीव प्रसन्नता हुई। काशी का कार्य भार निर्देशानुसार पं. गोपीनाथ कविराज को सौंपकर गंगाबाबू प्रयाग चले आये। प्रयाग विश्वविद्यालय के कुलपति पद पर आसीन होकर आपने अभूतपूर्व सेवा दी। बड़ालाट के निरीक्षण के समय छात्रों को अनुशासित रखकर गंगाबाबू ने अपनी विलक्षण प्रतिभा का परिचय दिया। विलियम मॉरिस इनकी कार्य-पद्धति से अत्यधिक प्रभावित थे। सिन्डिकेट में भी २६ के मुकाबले ७४ मतों से डा. गंगानाथ झा को कुलपति के रूप में चुन लिया। विपरीत से विपरीत परिस्थितियों में भी आपने पुलिस का सहयोग न लिया। अभिभावक, छात्र और शिक्षक समूह में लोकप्रिय सर झा को निर्भय होकर कार्य करने का स्वर्णिम अवसर मिला। विश्वविद्यालय में प्रथम महिला महाविद्यालय की स्थापना का श्रेय भी आपही को है। प्रथम पदावधि समाप्त होने के बाद पुनः आपको २७ के मुकाबले ५४ मतों से कुलपति चुन लिया गया। विरोध और समर्थन के बीच विश्वविद्यालय का प्रभूत विकास हुआ। अध्ययन अध्यापन को सर झा ने सर्वप्रथम और सर्वाधिक प्राथमिकता दी। आप तीन पदावधि तक विश्वविद्यालय के कुलपति पद पर आसीन रहे। विरोधियों ने प्रो. अमरनाथ झा जी के अंग्रेजी प्राध्यापक के रूप में नियुक्ति के प्रश्न पर अत्यधिक विवाद फैलाया। निर्णायक कार्य परिषद् ने छः के मुकाबले नौ मतों से अमरनाथ बाबू को नियुक्त करने की अनुशंसा की। अन्ततः कुलाधिपति ने स्वयं फील्डेन और अमरनाथ झा के

प्रमाण-पत्रों का अवलोकन कर एक पूर्णतः वाह्य विद्वानों की समिति को चयन का कार्य सौंप दिया। समिति ने अत्यन्त सुविधापूर्वक विश्लेषण कर अमरनाथ झाजी का नाम अग्रसारित किया और कुलाधिपति ने प्रोफेसर पद पर आपको नियुक्त किया।

धर्मपत्नी इन्दुमती देवी का देहावसान

वर्ष १९३२ में पत्नी इन्दुमती देवी अनेक पारिवारिक विसंगतियों के कारण बीमार रहने लगीं। डॉ. भवनाथ बाबू की पत्नी और पुत्र का देहावसान हो गया था। इस शोक ने रोग को और उद्दीप्त किया। उनकी अन्तिम इच्छा गंगा के किनारे शरीरांत की थी किन्तु दौर्बल्य के कारण डॉ. रवीन्द्रनाथ ने ऐसी सम्मति नहीं दी। प्रयाग के प्रिय आवास में पति, पुत्र अमरनाथ बाबू, भवनाथ बाबू, आदित्यनाथ बाबू और पुत्रियों के सम्मुख आपने नश्वर शरीर का त्याग किया। मृत्यु से पूर्व पत्नी ने गंगा बाबू से कहा कि- 'अहाँक सेवा नहि कए सकलहुँ, तकर दुःख रहि गेल। क्षमा करब।' (आपकी सेवा नहीं कर सकी इसका खेद रह गया। क्षमा कीजिएगा।) राम धुन के बीच आपने प्राणान्त किया। इस अवसर पर गोविन्ददास जी सपरिवार आ गये थे। पत्नी के निधन से आप अत्यधिक प्रभावित हुए।

जीवन पर्यन्त अध्ययन, अध्यापन तथा लेखन

जीवन पर्यन्त डा. सर झा उच्चतर शिक्षा जगत से जुड़े रहे। शताधिक शिक्षण संस्थाओं के आप स्थायी सदस्य तथा सलाहकार थे। छात्रों की विशाल परम्परा ही गंगाबाबू की वास्तविक निधि थी। आपने पुत्रों को भी संस्कृत भाषा के प्रति वही संस्कार दिया था जिससे स्वयं परिचालित हुए। सेवा निवृत्ति से कुछ सप्ताह पूर्व आपको बड़ोदा राज से व्याख्यान देने के लिए विशिष्ट अतिथि के रुप में आमंत्रित किया गया। इसी यात्रा के क्रम में मातृगया रुककर पिण्डदान तथा श्राद्धादि किया। पुत्र डॉ. भवनाथ बाबू के साथ पुत्र पं. शिवनाथ बाबू से मिलने बीकानेर गए। बीकानेर राज के प्रधानमंत्री मेजर राजप्रसाद दूबे सर झा के मित्र थे। दो दिनों तक उनका आतिथ्य ग्रहण कर आप प्रयाग लौट आए। निरन्तर पठन-पाठन और लेखन से जुड़े रहने वाले सर झा ने अपनी जीवन-शैली को कभी धूमिल न होने दिया।

विश्वविद्यालय सेवा से निवृत्त होकर गंगानाथ झा जी प्रयाग में ही रहने लगे। प्रयाग में ही उनके प्राण बसते थे। निश्चित अवधि के लिए सपरिवार गाँव जाते और नवीन ऊर्जा प्राप्त कर पुनः लौट आते। छात्रों, अध्यापकों, विद्वानों और मनीषियों की विशाल परम्परा देने वाले गंगानाथ झा को भगवती भारती का वरदान प्राप्त था। श्रम और श्रद्धा को सफलता का प्रतीक मानने वाले

अनुशासन प्रिय सर झा के पुत्र डॉ.भवनाथ झा, डॉ. अमरनाथ झा, पं. शिवनाथ झा, डॉ. विभूतिनाथ झा तथा डॉ. आदित्यनाथ झा ने भारतीय संस्कृति की अपूर्व सेवा की। इस परम्परा ने भारतीय शिक्षा-जगत को नवीन दृष्टि प्रदान की। जीवन को सत्य पथ पर अभिगमित करने के लिए शिक्षा का मूल मन्त्र वितरित करने वाले महामानव ने कभी पूर्ण विश्राम नहीं किया। आपके महत्त्वपूर्ण अवदान को कभी विस्मृत नहीं किया जा सकता।

निरन्तर कार्यरत रहनेवाले कर्मयोगी, संस्कृत साहित्य के स्वनामधन्य आचार्य ने वर्ष १९४१ में अपनी जीवन लीला समाप्त की। ज्ञान का यह आलोक महाप्रकाश में संलीन हो गया। कहना अनुचित न होगा कि डॉ. सर झा उस परम्परा के प्रतीक हैं जो हमें जनक, याज्ञवल्क्य, मण्डन और शंकर मिश्र से प्राप्त होते रहे हैं।

स्वाध्याय एषां देवत्वं तप एषां सतामिव।

**

III

प्रयाग प्रवास की प्रासंगिकता

प्रयागेऽथो काश्यां प्रमुख पदमध्यासितवता
ततो युक्त प्रान्ते कुलपतिपदं मण्डितवता।
कृता दिव्याः शिष्या निजवचनगङ्गाप्रवहणैः
कृतं गङ्गानाथेत्यनुगुणमहो नाम कृतिभिः॥

महामहोपाध्याय डॉ. सर गंगानाथ झा भारतीय साहित्य के देदीप्यमान नक्षत्र थे। तीनों लोकों में प्रयागराज की महिमा परिव्याप्त है। निज इच्छा के अनुरूप डॉ. गंगानाथ झा ने प्रयागराज को ही साहित्य साधना का केन्द्र निर्धारित किया। साहित्यानुशीलन के लिए आपने सभी पौराणिक सत्साहित्य का गंभीर अनुशीलन-चिन्तन किया। इस विशद् अध्ययन के उपरान्त प्रादुर्भूत विचार, गंगा की निर्मलता और सरस्वती के गाम्भीर्य से अनुस्यूत है। गंगानाथ झा के प्रयाग प्रेम को देखते हुए राणाडे महोदय ने उन्हें कुमारिल भट्ट का अवतार प्रमाणित करने की चेष्टा की हैं। गंगा तट पर आकर गंगानाथ को लगा कि निश्चय ही यही मेरे लिए सर्वोपयुक्त स्थान है। यहीं से प्रचुर समिधा प्राप्त कर मुझे यज्ञारंभ करना है। आपने स्वयं लिखा है-

राज्यं संसारयामास प्रयागे पृथिवीपतिः।
उत्तरे यामुने तीरे प्रतिष्ठाने महायशाः॥

प्रयाग राज की महत्ता का वर्णन दोहाकोष में भी अत्यन्त मार्मिक रूप से किया गया है। त्रिवेणी की ख्याति तीनों लोकों में परिव्याप्त है-

एत्थु से सुरसरि जमुणा एत्थु गंगा साउस।
एत्थु पयाग वारणसी एत्थु ते चन्द दिवा अस॥
क्वंत्थ उपपीठ एत्थु महभमह पारिट्ठयो
देव सरिसऊ नित्थ महं सुहअण्ण (सुणेह) ण दिठओ॥

देवी देवताओं को भी प्रिय तीर्थ, महात्माओं के लिए भी पुण्यस्थल है। प्रसिद्ध है-

मन्त्रे तीर्थे द्विजे देवे दैवज्ञे भेषजे गुरौ।

यादृशी भावना यस्य सिद्धिर्भवति तादृशी ॥

एक अति प्राचीन कथानुसार जब बौद्ध धर्म का भारत वर्ष पर बोलबाला था, कर्मकाण्डी हिन्दुओं के लिए सर्वाधिक आपत्तिजनक काल का आविर्भाव हुआ। ज्ञान का भण्डार वेद, कूड़ाखाने में फेंका जाने लगा। उपनिषदों, ब्राह्मणग्रन्थों, धार्मिक अनुचिन्तनों की सर्वत्र निन्दा होने लगी। वेद और वेद के रक्षक ब्राह्मणों को हेय मानकर उन्हें प्रतारित किया जाने लगा। उसी समय सुविख्यात चम्पानगरी के राजा सुधन्वा अत्यन्त विद्वान् और प्रतिभाशाली पुरुष थे। दुर्योग से सुधन्वा पर बौद्धों का अत्यधिक प्रभाव परिलक्षित होने लगा। चम्पानगरी पर दुष्ट ग्रहों का आधिपत्य सा हो गया था। स्वयं नृपति सुधन्वा भी बुद्ध के 'अरिय सच्च' और 'अट्ठाङ्ग मग्ग' के चक्कर में पड़े हुए थे। दैवयोग से महारानी अभी तक वेद का मार्ग पकड़े हुए थी। पौराणिक निधि को जीवन पर्यन्त सुरक्षित रखने का आपने संकल्प ले लिया था। किन्तु राजा सहित राज्य पर बौद्धों के प्रभाव को अनुभव कर रानी अत्यधिक चिन्तित रहने लगी। एक दिन वह अपने राजभवन की खिड़की में बैठी इसी चिन्ता में निमग्न थी कि उनकी पीड़ा शब्द का स्वरूप लेकर निकल पड़ी-

'किं करोमि क्व गच्छामि को वेदानुद्ध रिष्यति।'

अर्थात् क्या करूँ ? हे ईश्वर अब वेदों का उद्धार कौन करेगा ?

दैवयोग से उसी समय खिड़की से निकट के मार्ग से कुमारिल भट्ट कहीं जा रहे थे। स्वर की विकलता और दीनता ने आपको रोक लिया। आप ने तत्काल पूर्ण स्वर में समस्या का निदान करते हुए कहा-

मा विषीद वरारोहे भट्टाचार्योस्मि भूतले।

'हे रानी ! चिन्ता न करो ! मैं भट्टाचार्य अभी पृथ्वी पर मौजूद हूँ।'

आगे की यात्रा स्थगित कर कुमारिल वहीं रह गये। प्रथमतः बौद्ध गुरुओं से बौद्ध धर्म का साङ्गोपाङ्ग अध्ययन किया। सुधन्वा के विशाल दरबार में ही शास्त्रार्थ हुआ। कुमारिल भट्ट के सम्मुख एक भी बौद्ध पण्डित टिक नहीं सके। कुमारिल भट्ट जीत गए और फिर से वेद की दुन्दुभी बज उठी।

कुमारिल भट्ट वेद और रानी के सम्मानार्थ शास्त्रार्थ जीतकर भी स्वयं के प्रति प्रसन्न न हुए। कुमारिल ने बौद्ध गुरुओं से विधिवत ज्ञान प्राप्त किया था। आपने चूँकि बौद्ध गुरुओं से ज्ञान लेकर उन्हीं की निन्दा की और उनका विरोध किया अतः प्रायश्चित्त स्वरूप वे प्रयाग चलें गए। वहाँ स्नान, तर्पणादि कर प्रायश्चित्त करने का निर्णय लिया। त्रिवेणी तट पर ही भूसी की अग्नि में जल कर आपने शरीर त्याग किया। ऐसे प्रातःस्मरणीय आचार्यों का प्रिय तीर्थ प्रयाग साधना भूमि के लिए सुविख्यात रहा है। कर्मकाण्डी ब्राह्मणों, अध्यवसा-

यियों तथा धर्माचार्यों के लिए प्रयाग तीर्थ सदैव आकर्षण का केन्द्र रहा है। ब्रह्मज्ञानियों को प्रयाग सर्वप्रिय रहा है। महात्मा भरद्वाज की पवित्र भूमि अनायास ही अनेक पुण्य का भागी बना देती है। हिन्दी दासबोध के अनुसार एक तो यह मानव शरीर ही बहुत से सुकृतों का फल है, जिस पर भी यदि भाग्य प्रबल हो, तभी मनुष्य अच्छे कर्मों तथा श्रेष्ठ मार्गों का अनुसरण करता है। नर देह में ब्राह्मण सबसे बढ़कर और सर्वोत्कृष्ट है किन्तु ब्राह्मण भी सन्ध्या, स्नान, उपासना और भगवद्‌भजन आदि तभी कर सकता है जब पूर्व जन्म में उसने पुण्य किये हों। उत्तम भगवद्‌भक्ति के साथ यदि सन्त समागम हो जाय तो जीवन सार्थक हो जाता है। वास्तव में यही परम-लाभ है। प्रेमपूर्वक सद्‌भाव, भक्तों के समुदाय और हरिकथा के महोत्सव से भक्ति में अभिवृद्धि होती है। नर-देह प्राप्ति के उपरान्त परम दुर्लभ परलोक प्राप्ति के लिए सार्थक प्रयास अपेक्षित है। इसके लिए अनेक शास्त्रों का अध्ययन और तीर्थाटन करना चाहिए। परोपकार, ज्ञान का विचार, विवेकपूर्वक सारासार का निरूपण यही विद्वानों का पुरश्चरण होता है। वेदों की आज्ञा का पालन और कर्मकाण्ड तथा उपासना, ज्ञान के अधिकारियों के लक्षण हैं। प्रयागराज ज्ञान के अधिकारियों के लिए सर्वाधिक रमणीय स्थल है। महर्षि च्यवन के अनुसार मानव शरीर सत्व, रज और तम इन तीन गुणों से युक्त होता है। इनमें से सत्व गुण सर्वोत्तम है और उसी से ज्ञान तथा भगवद्‌भक्ति की प्राप्ति होती है। विख्यात है-

उर्ध्वं गच्छन्ति सत्वस्था मध्ये तिष्ठन्ति राजसाः।
जघन्यगुणवृत्तिस्था अधो गच्छन्ति तामसाः ॥

रजोगुण से पुनरावृत्ति होती है अर्थात् फिर जन्म लेना पड़ता है और तमोगुण से मनुष्य की अधोगति होती है। तमोगुण दारुण दुःख देनेवाला है। सत्व गुण परम दुर्लभ और सर्वोत्कृष्ट है। सत्वगुण सदैव सुखद होता है। सत्वगुण भजन का आधार, योगियों का सहारा और दुःखों के मूल इस संसार से पार ले जानेवाला है। इससे उत्तम गति की प्राप्ति होती है जो भक्तों का आधार है। यह संसार सागर से पार उतारने वाला तथा मोक्ष रूपी लक्ष्मी प्राप्ति का सर्वोत्तम साधन है। यह परमार्थ का मण्डन और महन्थों का भूषण है। इसके द्वारा रज तथा तम का नाश होता है और यह अज्ञान का नाश कर ज्ञान पथ पर अभिगमित कराता है। सत्व-गुण में ईश्वर के प्रति अधिक प्रेम होता है। संसार के सभी दुःख भूल जाते हैं और भक्ति का विमल मार्ग दिखाई देने लगता है।

डॉ. सर गंगानाथ झा इसी सतोगुण को धारण करनेवाले, संसार पथ के कालजयी पथिक थे। गंगा की पवित्र तरंगों की भाँति आपके विचार विमल, शान्त तथा उत्तम फल देने वाले हैं। अध्यवसायी डॉ. सर झा का वैदुष्य अद्‌भुत और अपूर्व था। धर्म कर्म के प्रति अतिरिक्त निष्ठा रखनेवाले गंगानाथ झा जी का संकल्प सूत्र था 'विद्याभ्यसनं व्यसनम्।' सद्‌विद्या निरूपण के क्रम में

अध्यवसायियों के अनेक लक्षणों में से एक प्रमुख लक्षण उनका तीर्थवासी होना बताया गया है। प्रयागराज तीर्थों का तीर्थ है। विभिन्न पुराणों तथा धार्मिक आख्यानकों में वर्णित प्रयाग का वर्णन उसकी गुणसम्पन्नता और महत्ता के सर्वथा अनुरूप है। म्योर सेन्ट्रल कालेज से कार्यारंभ करनेवाले सर गंगानाथ झाजी ने प्रयागराज को ही स्थायी निवास-क्षेत्र बनाने का निर्णय लिया। शिवकोटी का भव्य वातावरण और भूले-विसरे संस्मरणों ने आपको प्रयाग का ही बना दिया। प्रयागवासी सहृदय जन गंगानाथ झा को पाकर कृतकृत्य हुए और उन सबों का अपरिमित स्नेह पाकर स्वयं गंगानाथ झा धन्य हुए। एक महापुरुष के लिए जिन-जिन गुणों का उल्लेख किया गया है सर झा उसके मूर्त्तिमान स्वरूप थे। ऐसे महापुरुषों के प्रसंग में कहा गया है वे भावुक, सात्विक, शान्त, क्षमा तथा दयाशील, शालीन और तत्पर होते हैं। उनके वचन अमृतोपम होते हैं। वे परम सुन्दर, चतुर, सबल, धीर, सम्पन्न और उदार होते है। वे परम भक्त तथा ज्ञाता, महापंडित और विरक्त, महातपस्वी और अतिशय शान्त होते हैं। उत्कृष्ट वक्ता होते हुए भी वे किसी प्रकार की आशा नहीं रखते और सर्वज्ञ होते हुए भी आदरपूर्वक अच्छे ग्रन्थों का निरन्तर, मनन-श्रवण करते हैं। नम्रता अध्यवसायियों का प्रधान गुण है। ऐसे महापुरुष विनियामक होते हुए भी पूर्व नियमों की अवहेलना नहीं करते। आप कौलिक परम्परानुरूप आचरण करनेवाले, युक्ताहारी, निर्विकार, उत्तम चिकित्सक, परोपकारी और यशस्वी होते हैं। वे अच्छे कार्यकर्ता, निरभिमानी गायक और विष्णु के परम भक्त होते हैं। वैभवशाली होते हुए भी ऐसे पुरुष भगवद्जनों तथा विद्वानों का सत्कार करते हैं। ऐसे सज्जन तत्त्वज्ञ, उदासीन, बहुश्रुत, सज्जन, गुणशील, नीतिमान, साधु, पवित्र, पुण्यशील, शुद्ध हृदयवाले, धर्मात्मा, कृपालु, कर्मनिष्ठ, धर्मनिष्ठ, निर्मल, निर्लोभ और अनुयायी होते हैं। वे परमार्थ में प्रीति रखते हैं और सन्मार्ग, सत्क्रिया, धारणा, धृति, श्रुति, स्मृति, लीला, युक्ति, मति तथा परीक्षा में अत्यधिक अभिरुचि रखते हैं। वे दक्ष, कुशल, योग्य, तार्किक, सत्यशील, साहित्य के ज्ञाता, नियमों तथा भेदों को जाननेवाले, कुशल, चपल और चामत्कारिक होते हैं। वे आदर, सम्मान और तारतम्य जानते हैं तथा प्रयोग, समय, प्रसंग और कर्मकारण के लक्षणों से अवगत होते हुए विचक्षण व्याख्याता होते हैं। ऐसे महात्मा वेदों और शास्त्रों का अनुशीलन कर निश्चयात्मक ज्ञान तथा विज्ञान का बोध कराते हैं।

'ऐसे सत्पुरुष तीर्थवासी, पुरश्चरण करनेवाले, दृढ़व्रती, शास्त्राध्यायी, उपासक और निग्रही होते हैं।' ऐसे अध्यवसायी दिव्य पुरुष स्वयमेव श्री नारायण के भक्त होते हैं-

श्रवणं कीर्तनं विष्णोः स्मरणं पादसेवनम्।
अर्चनं वन्दनं दास्यं सख्यमात्मनिवेदनम्॥

भारतीय मान्यता है कि-

शंकरः शेषशायी च मार्तण्डो मारुतिस्तथा।
एतोषां दर्शनं पुण्यं नित्यमेवे विशेषतः ।।

मित्र मनीषानन्दजी स्वामी कहते थे कि- भक्त, ज्ञानी, वीतराग, महानुभाव, तपस्वी, योगी और सत्पात्र को देखते ही नमस्कार करना चाहिए। वेदज्ञ, शास्त्रज्ञ, सर्वज्ञ, पण्डित, पौराणिक, विद्वान्, याज्ञिक, वैदिक और पवित्र पुरुषों को बराबर नमस्कार करना चाहिए। जिस मनुष्य में कोई विशेष गुण दिखाई दे, समझ लेना चाहिए कि उसमें सद्गुरु का अधिष्ठान है। इन परमपुरुषों को किया जाने वाला प्रत्येक नमस्कार वास्तव में परमपिता परमेश्वर तक पहुँचता है-

आकाशात्पतितं तोयं यथा गच्छति सागरम्।
सर्वदेव नमस्कारः केशवं प्रति गच्छति ।।

भगवान कहते हैं कि जो मुझे जैसा समझता है उसके लिए मैं भी वैसा ही हो जाता हूं-

'ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्।'

त्रिवेणी तट पर वाग्देवी की अभ्यर्थना करते हुए स्वयं गंगानाथ भी वन्दनीय हो गए। आप सर्वथा प्रणम्य और प्रातःस्मरणीय हैं। गंगानाथ के विनिर्माण में गुरुदेव महामहोपाध्याय पं. जयदेव मिश्र, महामहोपाध्याय पं. शिवकुमार मिश्र जैसे प्रकाण्ड पंडितों के अवदान को विस्मृत नहीं किया जा सकता। विशिष्ट और समर्पित अध्यवसायी गुरुओं की कृपा से ही गंगानाथ झा महामहोपाध्याय गंगानाथ झा हुए। गुरुओं में कर्म क्षेत्र का भी अप्रतिम स्थान है। क्षेत्रीय गरिमा से भी व्यक्ति का संस्कार उद्दीप्त होता है। मिथिला के ग्राम-तीर्थ सरिसब-पाही के अधिवासी गंगानाथ झा को काशी-प्रयाग का दुर्लभ प्रवास अनायास ही उपलब्ध हुआ। जिस प्रयाग के धूलकणों में भी मुक्ति प्रदान करने की क्षमता है उसी को गंगानाथ झा ने निज साधना-भूमि के रूप में चुना। सद्गुरु के मिलने से ही इस उदात्त चरित्र को विस्तार मिला। वनस्पतियों के लिए सूर्य तथा चन्द्रमा की किरणों का जो महत्त्व है अध्यवसायी अनुसन्धीत्सुओं के लिए सद्गुरु का वही महत्त्व है।

वस्तुतः सद्गुरु के वरदहस्त की कृपा से ही ईश्वर प्रकट होते हैं और अपार सांसारिक क्लेशों का नाश होता है। पूर्व के बड़े-बड़े सन्त, महन्थ और मुनीश्वरों को सद्गुरु की कृपा से ही ज्ञानोत्पत्ति हुई है। स्वयं श्री राम, कृष्ण आदि अपने गुरुओं की सेवा में तत्पर रहते थे। समस्त सृष्टि का संचालन करने-वाले ब्रह्मा, विष्णु और महेश भी सद्गुरु के चरणों की सेवा करते हैं। सद्गुरु के सामने वे स्वयं को महत्त्वहीन बताते हैं-

गुरु गोविन्द दोनों खड़े काके लागूँ पाय।
बलिहारी गुरु आपनी जिन गोविन्द दियो बताय ॥

मोक्षमार्ग के पथिक सद्गुरु की शरण में ही जाते हैं। सद्गुरु की कृपा से ही मोह तिमिर का नाश होता और शुद्ध ज्ञान का प्रकाश फैलता है। वस्तुतः जो शुद्ध ब्रह्मज्ञानी होते हुए भी कर्मयोगी और सदैव उत्तम आचरण करनेवाले सद्गुरु हैं वही परमात्मा के दर्शन करा सकते हैं। प्रारंभ में सद्शिष्य रहनेवाले अध्यवसायी ही सच्चा सद्गुरु बन सकता है। गुरु के बिना ज्ञान नहीं होता और ज्ञान के बिना शास्त्रों का मर्म समझना असंभव होता-

नानाशास्त्रं पठेल्लोको नानादैवतपूजनम्।
आत्मज्ञानं बिना पार्थ सर्वकर्म निरर्थकम् ॥
शैवशाक्तागमाद्या ये अन्ये च बहवो मताः।
अपभ्रंश-समास्तेऽपि जीवानां भ्रान्तचेतसाम् ॥

वस्तुतः ज्ञान के समान पवित्र और उत्तम निधि और कुछ नहीं। मान्यतानुसार-

नहि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिदमुत्तमम्।

स्वयं भगवान् कृष्ण कहते हैं-

यस्य कस्य च वर्णस्य ज्ञानं देहे प्रतिष्ठितम्।
तस्य दासस्य दासोऽहं भवे जन्मनि जन्मनि ॥

आत्मज्ञान की महिमा का बखान तो स्वयं चतुर्मुख ब्रह्मा भी नहीं कर सकते फिर जीवात्मा से क्या आशा। सभी तीर्थों में स्नान और दान करने का जो फल है उससे करोड़ों गुना अधिक महत्त्वपूर्ण है ज्ञान का फल-

पृथिव्यां यानि तीर्थानि स्नानदानेषु यत्फलम्।
तत्फलं कटिगुणितम् ब्रह्मज्ञानेऽसमोपमम् ॥

परमज्ञानी महात्मा भी जिस तीर्थराज की अभ्यर्थना करते हुए तृप्तानुभव न कर सके उस प्रयाग का अधिवास किसी बड़े पुण्य का ही प्रतिफल माना जाता है। मार्कण्डेय स्मृति के अनुसार-

प्रयागं प्रथितं तीर्थं यस्य माहात्म्यमीरितम्।
पञ्चयोजन-विस्तीर्णं ब्रह्मणः परमेष्ठिनः ॥

पतितपावनी गंगा, यमुना और सरस्वती की महत्ता में अनेक धर्मग्रन्थों तथा पुराणादि में सहस्राधिक श्लोक कहे गए हैं। मत्स्यपुराणानुसार मार्कण्डेय मुनि युधिष्ठिर से कहते हैं कि-

तपनस्य सुता देवी त्रिषु लोकेषु विश्रुता।
येनैव निस्सृता गङ्गा तेनैव यमुना गता॥
तत्र स्नात्वा च पीत्वा च यमुनायां युधिष्ठिर।
कीर्त्तनाल्लभते पुण्यं दृष्ट्वा भद्राणि पश्यति॥
अग्नितीर्थमितिख्यातं यमुना दक्षिणे तटे।
पश्चिमे धर्मराजस्य तीर्थं तु नरकं स्मृतम्॥
उत्तरेषु प्रवक्ष्यामि ह्यादित्यस्य महात्मनः।
अन्ये च बहवस्तीर्थाःसर्वपापहराः स्मृताः॥
गङ्गा च यमुना चैव उभे तुल्यफले स्मृते।
केवलं ज्येष्ठभावेन गङ्गा सर्वत्र पूज्यते॥

सर झा की माता रामकाशी देवी, पिता पं. धरानाथ झा, पितामह, प्रपितामह, मातामही तथा मातामह महाराज कुमार बाबू वासुदेव सिंह को गंगा, काशी तथा प्रयाग से विशेष स्नेह था। माता रामकाशी देवी वाल्मीकि रामायण का पाठ करतीं और गंगानाथ ध्यान पूर्वक सुनते रहते।

प्रयाग राज के निकट पहुँचते ही श्री राम भाव विह्वल होकर अनुज लक्ष्मण से कहते हैं-

प्रयागमभितः पश्य सौमित्रे धूममुत्तमम्।
अग्नेर्भगवतः केतुं मन्ये संनिहितो मुनिः॥

सुमित्रानन्दन ! वह देखो, प्रयाग के निकट अग्निदेव की ध्वजारूप उत्तम धूम उठ रहा है। मालूम होता है कि मुनिवर भरद्वाज यहीं हैं।

नूनं प्राप्ताः स्म सम्भेदं यङ्गायमुनयोर्वयम्।
तथाहि श्रूयते शब्दो वारिणोर्वारिधर्षजः॥

निश्चय ही हमलोग गंगा-यमुना के संगम के निकट आ पहुँचे हैं क्योंकि दो नदियों के टकराने से ही जो शब्द प्रकट होता है, वह हमें स्पष्ट सुनाई दे रहा है। भरद्वाज मुनि भगवान् राम का स्वागत करते हैं और गंगा तथा यमुना के संगम पर पहुँचकर, पश्चिममुखी गंगा और यमुना का विधिवत् दर्शन कर चित्रकूट की ओर प्रस्थान करने की प्रेरणा देते हैं-

गङ्गा यमुनयोः संधि मासाद्या मनुजर्षभौ।
कालिन्दी मनुगच्छेतां नदीं पश्चान्मुखाश्रिताम्॥

गोस्वामी तुलसीदास विरचित रामचरित मानस का भी इस परिवार में अत्यधिक सम्मान था। जिस प्रयाग की महिमा का बखान स्वयं निधिपति नारायण भी नहीं कर सके उस प्रयागराज के प्रति महामहोपाध्याय की आस्था अनुचित

नहीं। वनवास के क्रम में जब श्रीराम प्रयाग पहुँचते हैं तो तीर्थराज का दर्शन कर आनन्द की सीमा नहीं रहती-

प्रात प्रातकृत करि रघुराई। तीरथराजु दीख प्रभु जाई।
सचिव सत्य श्रद्धा प्रिय नारी। माधव सरिस मीतु हितकारी॥
चारि पदारथ भरा भंडारु। पुन्य प्रदेश देश अति चारु।
छेत्रु अगम गढ़ु गाढ़ सुहावा। सपनेहुँ नहिं प्रतिपच्छिन्ह पावा॥
सेन सकल तीरथ बर वीरा। कलुष अनीक दलन रनधीरा।
संगमु सिंहासनु सुठि सोहा। छत्रु अखयवटु मुनि मन मोहा॥
चवँर जमुन अरु गंग तरंगा। देखि होहिं दुख दारिद भंगा॥

साधु और विद्वानों की कौन पूछे, स्वयं वेद और पुराणों में जिसकी महिमा का बखान किया गया है उस प्रयागराज के प्रभाव वर्णन की क्षमता साधारण जनों में नहीं।

भरद्वाज मुनि सहित अनेक संत महात्माओं से पूजित तीर्थराज की महिमा का वर्णन करते हुए भगवान राम कहते हैं-

को गहि सकइ प्रयाग प्रभाऊ। कलुष पुंज कुंजर मृगराऊ॥
अस तीरथपति देखि सुहावा। सुख सागर रघुबर सुख पाबा॥
कहि सिय लखनहि सखंहि सुनाई। श्री मुख तीरथराज बड़ाई।
करि प्रनाम देखत बन बागा। कहत महातम अति अनुरागा॥
एहि विधि आइ बिलोकी बेनी। सुमिरत सकल सुमंगल देनी।
मुदित नहाइ कीन्हि सिव सेवा। पूजि जथाविधि तीरथ देवा॥
तब प्रभु भरद्वाज पहि आए। करत दंडवत मुनि उर लाए।
मुनि मन मोद न कछु कहि जाई। ब्रह्मानंद रासि जनु पाई॥

इसी प्रयाग राज में अहर्निश राम-राम जाप करते हुए राम भक्त भरतलालजी का आगमन होता है-

भरत तीसरे पहर कहँ कीन्ह प्रवेसु प्रयाग।
कहत राम सिय राम सिय उमगि-उमगि अनुराग॥

पवित्र त्रिवेणी में स्नान कर भक्त प्रवर भरत तीर्थराज की अभ्यर्थना करते हुए कहते-

देखत स्यामल धवल हिलोरे। पुलकि सरीर भरत कर जोरे।
सकल काम प्रद तीरथ राऊ। वेद विदित जग प्रगट प्रभाऊ॥
माँगउ भीख त्यागि निज धरमू। आरत काह न करइ कुकरमू।
अरथ न धरम न काम रुचि, गति न चहउँ निरबान।
जनम-जनम रति राम पद यह वरदानु न आन॥

वृद्धप्रपितामह से ही चली आ रही ब्राह्ममुहूर्त में उठने की परम्परा ने गंगानाथ झा जी का सर्वाधिक उपकार किया। निद्रा और आलस्य विद्वानों के शत्रु हैं। आपने दोनों पर मानों विजय प्राप्त कर ली थी। नामकरण संस्कार के समय ही परिजनों को आभास हो गया था कि यह बालक अत्यधिक निष्ठावान्, गंभीर भक्त और प्रखर विद्वान् होगा। गंगानाथ नामकरण भी गंगा के प्रति अतिरिक्त श्रद्धा भाव का ही प्रतीक है। बाल्यावस्था में इन्हें कुछ भी होता तो गंगाजल पिला दिया जाता। गंगाजल की बूंदे गले से नीचे उतरतीं और गंगानाथ स्वस्थ हो जाते। गंगानाथ की गंगाभक्ति अप्रतिम थी। वृद्धप्रपितामह पं. लक्ष्मीदेव झा तथा प्रपितामाह सुविख्यात वैयाकरण पं. अमृतनाथ झा भी नियमित काशी तथा तीर्थराज की यात्रा करते थे। स्वनामधन्य पिता पं. धरानाथ झा और माता रामकाशी देवी का सम्पूर्ण जीवन धार्मिक कृत्यों में ही व्यतीत हुआ। पं. धरानाथ बाबू नियमित ब्राह्ममुहूर्त में उठकर छाती तक जल में रहकर सहस्त्र गायत्री का जाप करते थे। भयंकर शीत में भी यह क्रम भंग न हुआ। आपने गंगा-स्तोत्र पढ़ते हुए ही शरीरान्त किया। सम्पूर्ण परिवार का वातावरण पूर्णतया धार्मिक था। मातामही के साथ बाल्यावस्था में सम्पन्न भाव से बनारस तक की यात्रा का भी आप पर अत्यधिक प्रभाव पड़ा। उसी यात्रा मध्य दिशाभ्रम होने पर महीयसी मातामही ने आदेश दिया- 'गंगा से पूछो। वह जैसा कहे तदनुरूप नाव बढ़ाओ।' आगे की यात्रा बालक गंगानाथ के निर्देशानुरूप ही सुसम्पन्न हुई। यात्रा की परिसमाप्ति पर पण्डितों तथा ज्योतिषियों ने गंगानाथ को यथेष्ट आशीर्वाद दिये।

उच्च शिक्षा के लिए जब काशी जाने का प्रस्ताव हुआ तो आपकी आत्मा प्रसन्न हो उठी। युगों से संचित अभिलाषा फलित होनेवाली थी। गंगा का नैकट्य और विद्वानों की भूमि में रहने का सौभाग्य सहज नहीं था। काशी की महिमा उनके संस्कार में परिव्याप्त थी-

जीवता यत्सुखं काश्यां अविक्षिप्तेन्द्रियात्मनाम्।
न तत्सत्ये न कैलासे न वैकुण्ठे कथं चन॥

मातामही कहती थीं-

काशी निर्विघ्न जननी, काशी मोक्षस्य सतवनिः।
विष्णु विश्राम भूश्चिश्व विश्वविद्याश्राम भूमिका॥

मित्र गोविन्ददास, अग्रज विन्ध्यनाथ बाबू तथा प्रेरक चरित्र पं. हरिनाथ भी गंगा के प्रति अतिरिक्त आस्था रखते थे। पं. हरिनाथ जो कालान्तर में स्वामी मनीषानन्द-तीर्थ के नाम से विख्यात हुए ने प्रयाग महिमा से आपको अवगत कराया था। प्रयाग और काशी संस्कृत अध्ययन अध्यापन के लिए सर्वोत्कृष्ट भूमि माने जाते थे। काशी पहुँचकर गंगानाथ के अध्यवसायी मन को जहाँ

अद्भुत आनन्द की प्राप्ति हुई वहीं उनकी आध्यात्मिक चेतना को मानो किनारा मिल गया। सरस्वती के उपासक गंगानाथ झा ने छात्रावस्था में ही निर्णय किया कि संगम-तीर्थ के निकट ही सुदीर्घ जीवन व्यतीत करूँगा।

बाल्यावस्था में जब गाँव के नर नारी कुम्भस्नान के लिए प्रयाग जाने की बातें करते उसी समय से प्रयागराज के प्रति आपके मन में अतिरिक्त उत्सुकता उत्पन्न हो गयी। परिवार की बूढ़ी दासी जब अपनी वर्षों की संचित राशि लेकर कुम्भ में सम्मिलित होने के लिए प्रस्तुत हो गयी तो बालक गंगानाथ के मन में कुम्भ और प्रयागराज की महत्ता जानने की ललक उत्पन्न हुई।

स्कन्दपुराण के छत्तीस श्लोकों में कुंभ का वर्णन विस्तार से किया गया है। अमृत की प्राप्ति के लिए देवताओं और दानवों ने मिलकर समुद्र का मंथन किया। जब भगवान् धन्वंतरि अमृत कुंभ लेकर प्रकट हुए तब देव और दानव दोनों ही 'अहम् पूर्व' अर्थात् पहले हम कहते हुए अमृत प्राप्ति के लिए उतावले हो उठे। भगवान विष्णु नहीं चाहते थे कि दानव अमृत पीकर अमर हो जावें और संसार के लोगों को पीड़ा पहुँचाते रहें। उन्हीं के संकेत पर इन्द्र पुत्र जयन्त अमृत कुम्भ लेकर उड़ चले। देवगुरु ब्रृहस्पति ने सूर्य और चन्द्र को अमृतकलश के रक्षार्थ जयन्त के साथ जाने का आदेश दिया। दानव भी उनके पीछे भागे। इसी क्रम में देवों और दानवों में भयंकर संघर्ष हुआ। जयन्त को परिस्थितिवश अमृतकलश को बारह स्थानों पर रखने के लिए विवश होना पड़ा। इनमें से आठ स्थान स्वर्ग और पाताल लोक में बताए गए हैं तथा चार भू-लोक में। मान्यतानुसार इन चारों स्थानों पर कलश रखने और पुनः उठाने के क्रम में अमृत की कुछ बूंदें छलक गयीं। इन्हीं बूंदों की महत्ता से ये चारों स्थान अमृत प्रदान करने वाले माने गए। ये पवित्र और पूज्य स्थान हैं गोदावरी के तट पर अवस्थित नासिक, शिप्रा तट पर अवस्थित उज्जैन, गंगा तट पर अवस्थित हरिद्वार तथा सरस्वती तट पर अवस्थित प्रयागराज।

पुनः देवताओं के बारह दिनों को मनुष्यों के लिए बारह वर्ष माना गया और जिन नक्षत्रों में सूर्य, चन्द्र और बृहस्पति के सान्निध्य में अमृतकण गिरे वैसी ग्रहस्थिति आने पर इन स्थानों पर पवित्र कुंभ पर्व का विधान किया गया। ज्योतिषीय गणनानुसार जब बृहस्पति मेष राशि में और चन्द्रमा मकर राशि में अवस्थित होते हैं तब प्रयाग में अमावस्या के दिन कुंभ पर्व का योग होता है। कहा गया है-

'मेष राशिगते जीवे मकरे चन्द्रभास्करौ अमावस्या तदा योगः कुंभाख्यस्तीर्थ नामक प्रयागे कुंभ योगो वै माघ मासे विप्रक्षये।'

बृहस्पति को सूर्य की परिक्रमा करने में ग्यारह वर्ष छियासी दिनों का समय लगता है। तत्पश्चात् बृहस्पति जब मेष राशि पर स्थित होता है तभी

प्रयाग में कुंभ पर्व का आयोजन होता है। गंगा, यमुना और सरस्वती के संगम पर अवस्थित प्रयाग को तीर्थराज की संज्ञा दी गई है-

तीरथराज दीख प्रभु आई।[१]

प्रयाग एक ऐसा तीर्थ है जहाँ दस सहस्र तीर्थ किसी न किसी वेश में निवास करते हैं। गोस्वामी जी के शब्दों मे-

'को कहि सकइ प्रयाग प्रभाऊ।'

इसकी महिमा अद्‌भुत और अपूर्व है। शंकराचार्य के अनुसार जहाँ ऋषि मुनियों ने अनेक पवित्र यज्ञों का आयोजन किया था वही पावन भूमि प्रयागके नाम से प्रसिद्ध हुई। मान्यता है कि सृष्टि के विनिर्माता स्वयं ब्रह्मा जी ने यहाँ यज्ञों का आयोजन किया था। मान्यता है कि इन्द्र, यम, वरुण, अग्नि, ऋषि दुर्वासा, अत्रि, अनुसुइया, मनु, पराशर आदि ऋषियों-महर्षियों ने इसी पवित्र भूमि को तपस्थली बनाया। यही कारण है कि प्रयागराज को तपोभूमियों में श्रेष्ठ माना गया है। यहीं रहते हुए महामुनि भरद्वाज ने ज्ञानयोग, भक्तियोग और कर्मयोग की शिक्षा देकर भारतवर्ष के साथ सम्पूर्ण संसार का मार्गदर्शन किया। प्रयाग को तीर्थराज कहने का एक प्रकट सत्य भी पर्याप्त है। यहाँ पवित्रतम गंगा, यमुना और सरस्वती नदियाँ आकर मिली हैं। गंगा तथा यमुना की संगम-भूमि एक दिव्य साधना भूमि है।

दरभंगा राज सेवा से विषण्ण गंगानाथ झा जब आदित्यरामजी के कारण रिक्त पद पर नियुक्ति के प्रसंग से काशी पहुँचे तो मित्रों ने उनका हार्दिक स्वागत किया। डा. थीबो तथा डा. भेनिस ने अपने प्रिय छात्र के लिए यथोचित अनुशंसा की और म्योर सेन्ट्रल कालेज में आपकी नियुक्ति हो गई। इसकी सूचना जब दरभंगा में अग्रज विन्ध्यनाथ बाबू को मिली तो उनकी साधना मानो पूरी हो गई। अध्यवसायी गंगानाथ झा प्रयाग अथवा काशी रहें यह वे प्रारंभ से ही चाहते थे। महाकवि कविश्वर चन्दा झा ने अपना आह्लाद प्रकट करते हुए लिखा-

हर्षक विषय कहल नहिं जाय
विषय उचित विद्या-बल पाय।
कत गोट पुण्य त्रिवेणी-स्नान
दैवक हाथ मान-अपमान॥[२]

---

१ रामचरित मानस
२ कवीश्वर चन्दा झा

सरस्वती के वरद् पुत्र को उपयुक्त साधना स्थल प्राप्त हुआ। गंगा के किनारे शिवकोटी में आपने अपना मनोहर आवास भी बनाया। गंगा माँ गंगानाथ के लिए अनिवार्य थीं। माता रामकाशी का निधन भी प्रयाग में ही हुआ। उनके निधन के उपरान्त आपका गंगा-स्नेह और भी बढ़ गया। रामधुन में मग्न स्वामी अभेदानन्द जी से जब मैं मिला तो आपने अक्षयवट को प्रणाम कर कहा कि- 'वास्तव में यह तीर्थराज है। जिस प्रकार ग्रहों में सूर्य नारायण तथा नक्षत्रों में चन्द्रमा सर्वश्रेष्ठ हैं उसी प्रकार तीर्थों में प्रयागराज सर्वश्रेष्ठ है। प्रयाग सातों मोक्ष-प्रदान करने वाला है। गंगा तथा यमुना द्वारा विभक्त भू-भाग यहाँ तीन अग्निस्वरूप माने जाते हैं। गंगा तथा यमुना के मध्य का भाग गार्हस्थ्याग्नि, गंगापार का भाग झुसी आवहनीयअग्नि और यमुना पार का भाग अरेल दक्षिणाग्नि माना जाता है। मार्कण्डेय ऋषि से पाण्डवराज युधिष्ठिरजी ने प्रश्न किया कि- भगवन् ! प्रयाग को तीर्थराज क्यों कहते हैं ?

इस पर ऋषिराज ने कहा- 'हे राजन ! महाप्रलय के आने पर सब कुछ विलुप्त हो जाता है किन्तु यह अक्षयवट शेष रह जाता है। इस वट वृक्ष पर श्री भगवान पैर के अंगूठे को मुँह में लिये हुए खेलते रहते हैं।' दशरथ सुत भक्तप्रवर भरत ने भी तीर्थराज से विमल भक्ति का वरदान माँगा था। गोस्वामीजी कहते हैं-

देखत स्यामल धवल हिलोरे
पुलक सरीर भरत कर जोरे
सकल काम प्रद तीरथ राऊ
वेद विदित जग प्रगट प्रभाऊ।
माँगउ भीख त्यागि निज धरमू
आरत काह न करई कुकरमू
अस जिय जानि सुजान सुदानी
सफल करइ जग जाचक बानी॥
अरथ न धरम न काम रुचि, गति न चहउ निरवान।
जनम जनम रति राम पद, यह वरदानु न आन॥

महामानवों को, साधकों को आकर्षित करने के लिए प्रयाग प्रख्यात है। प्रयाग में बारह माधव बताये जाते हैं। ये हैं-

१. शंख माधव - मुन्शीजी के बगीचे में जो त्रिवेणी से पूर्व झुसी की ओर है।

२. अनन्त माधव - अक्षयवट के समीप

३. आदि माधव - अरैल में

४. वेणीमाधव - दारागंज में

५. चक्र माधव - अरैल गाँव में

६. गदा माधव - नैनी ग्राम में

७. पद्ममाधव - बीकर देवी राना में

८. मनोहर माधव - चौक में द्रव्येश्वरनाथ जी के मन्दिर में

९. संकट हरण माधव - संध्या वट के नीचे पड़ी खंडित मूर्त्ति के निकट

१०. आदि वेणी माधव - जल रूप में संगम में विराजमान

११. अशि माधव - नाग वासुकी के पास हैं, तथा

१२. विन्दु माधव - द्रोपदी घाट के आस-पास ।

भारद्वाज आश्रम सहित असंख्य तीर्थों के बीच प्रयाग का मुख्य तीर्थ गंगा-यमुना और सरस्वती का पवित्र संगम ही है । अक्षयवट के निकट लेटे हुए हनुमान की विशालकाय प्रतिमा भक्तों के लिए विशेष आकर्षण का केन्द्र है । दारागंज के निकट अलोपीबाग में स्थित अलोपी देवी का मन्दिर इक्यावन शक्तिपीठों में से एक है । स्वयं डॉ. झा के परिजन प्रयाग क्षेत्र की पूर्ण परिक्रमा तथा अन्तर्वेदी परिक्रमा के लिए जाते थे ।

म्योर सेन्ट्रल कालेज की सेवा ने गंगानाथ झा के गंगा प्रेम को संवर्द्धित होने का पूर्णावसर प्रदान किया । इनके संस्कार में परिजनों के अनुरूप गंगा-प्रेम का होना पूर्णतः सहज एवं स्वाभाविक है । गंगा की महत्ता-वर्णन के क्रम में आग्नेय पुराण में कहा गया है-

निष्पापस्तीर्थयागी तु सर्वयज्ञ फलं लभेत् ।
गोदावरी तुङ्गभद्रा कावेरी वरदा नदी ॥
मन्दाकिनी चित्रकूटं शृङ्गि वेरपुरं परम् ।
गङ्गा तारयते चोभौ वंशौ नित्यं हि सेविता ॥
चान्द्रायणसहस्त्रं च गङ्गाम्भःपानमुत्तमम् ।
दर्शनात् स्पशर्नात् पानात् तथागङ्गेति कीर्तनात् ॥
पुनाति पूर्व पुरुषान् शतशोऽथ सहस्रशः ।
सर्वत्र सुलभा गङ्गा त्रिषु स्थानेषु दुर्लभा ॥
गङ्गाद्वारे प्रयागे च गङ्गासागरसंगमे ।
अत्र दानाद्दिवं याति राजेन्द्रो राजतेऽत्र च ॥

हरिद्वार, गंगासागर और प्रयागराज में से गंगानाथ झा ने प्रयाग का ही चयन किया । म्योर कालेज आगमन के उपरान्त इस अर्भ्यना को और भी संबल

मिला । भागीरथी के रूप में विख्यात पतित पावनी गंगा के प्रसंग में कहा गया है-

> **यतो विनिर्गता गङ्गा ख्याता भागीरथी भुवि ।**
> **यन्नामोच्चरणात्पुंसा पापं याति सहस्त्रधा ।।**
> **नर्मदा सरितां श्रेष्ठा सर्वपापप्रणाशिनी ।**
> **तारयेत्सर्वभूतानि स्थावराणि चराणि च ।।**
> **त्रिभिस्सारस्वतं तोयं सप्ताहेन तु यामुनम् ।**
> **सद्यः पुनाति गाङ्गेयं दर्शनादेव नार्मदम् ।।**
> **ग्रामे वा यदि वारण्ये पुण्या सर्वत्र नर्मदा ।**
> **नर्मदायास्तु राजेन्द्र पुराणे यन्मया श्रुतम् ।।**
> **यत्र तत्र नरः स्नात्वा चाश्वमेधफलं लभेत् ।**
> **सरस्वत्यां च गङ्गायां नर्मदायां युधिष्ठिर ।**
> **समं स्नानं च दानं च यथा मां शंकरोऽब्रवीत् ।।**
> **नर्मदा सर्वतः पुण्या ब्रह्महत्यापहारिणी ।**
> **रुद्रदेहाद्विनिष्क्रान्ता लोकानां हितकाम्यया ।।**

प्रयाग का एक पग धारण भी एहिलौकिक पापों से मुक्ति दिलाने वाला है । यहाँ का एक स्नान अश्वमेध यज्ञ का फल प्रदान करनेवाला है । इतिहास पुराणादि में वर्णित प्रयाग महिमा से कहीं अधिक की अधिकारिणी है प्रयाग की पुण्य भूमि । यहाँ स्नान, ध्यान और निवास करने वालों को अविद्या माया नहीं व्यापती । माघ स्नान का महत्वांकन करते हुए कहा गया है-

The great yudhisthir was advised by sage Markandaya to wipe off the sin of destroying the Kaurvas by a full pilgrimage to the chief of Piligrim centres, Prayag. In the Vayupurana it is stated that every step one lays on this sacred soil yields merit equal to the performance of an Aswamedha yagya. Sins committed elsewhere are removed at the Triveni Sangam and sins committed here are removed by performance of Maghasnan at Prayag itself.[1]

महामुनि मार्कण्डेय के निर्देशानुसार युधिष्ठिर ने कौरवों को मुक्ति दिलाने के उद्देश्य से प्रयागराज तक की यात्रा की थी । इससे प्रयागराज की

---

१ भारतस्थल यात्रा : रामनाथ दीक्षित, पृ.५

आध्यात्मिक महत्ता स्पष्ट होती हैं। वास्तव में यह 'को कहि सकइ प्रयाग प्रभाऊ' के सर्वथा अनुरुप है।

प्रयाग में गंगानाथ झा के रहने क एक महत्वपूर्ण कारण काशी से निकट रहने का भी था। सर झा ने जो कुछा पाया उसे वह काशी, गुरुजनों, मित्र गोविन्ददास, स्वामी मनीषानन्द, माता गायत्री, विश्वेश्वर विश्वनाथ, माता राम-काशी देवी, महाराज दरभंगा और सर्वोपरि पतित पावनी गंगा की कृपा ही स्वीकारते हैं। काशी के घाट, काशी के पथ, काशी की विद्वत् परम्परा, काशी का शैक्षिक परिवेश गंगानाथ झा जी को सर्वाधिक प्रिय था। सांस्कृतिक राजधानी काशी में सर झा ने जो कुछ पाया उसे वे एक योगी की भाँति समस्त संसार के लिए सुलभ कर गए। वाराणसी वैभव की गाथा से सम्पूर्ण भारतीय वाङ्मय आपूरित है। वेद, पुराण, ब्राह्मण, आरण्यक, उपनिषद्, महाकाव्य सर्वत्र काशी का सादर उल्लेख किया गया है। ऋग्वेद में दिवोदास का उल्लेख बार-बार किया गया है। इस पुण्य नगरी की स्थापना का श्रेय दिवोदास को ही दिया गया है। ईसापूर्व पाँचवीं शताब्दी में पाणिनि ने भी 'काशिया' की चर्चा की है।

काशी का मूल शब्द 'काश्' अर्थात् चमकना है। स्कन्दपुराणानुसार काशी निर्वाण के लिए प्रसिद्ध है-

काशाते यतो ज्योतिस्तदनाख्ये यतीश्वराः।
अतो नाम चरम चश्तु काशीति प्रार्थता विभो ॥[१]

स्कन्दपुराण, अग्निपुराण, पद्मपुराण एवं वामन पुराण के अनुसार वाराणसी अस्सी एवं वरुणा नदियों के मध्य अवस्थित है। पौराणिक मान्यतानुसार संसार के सारे तीर्थ काशी में स्थित हैं। विश्वेश्वर खण्ड, ओंकार खण्ड तथा केदारखण्ड में विभक्त काशी की महिमा अनन्त है। विश्वनाथ की नगरी काशी की गंगा अपनी गुणसम्पन्नता के लिए विख्यात है। कलिकाल में गंगा को ही सर्वश्रेष्ठ और मुक्ति प्रदायिनी माना गया है।

कृते तु नैमिषं तीर्थं त्रेतायां पुष्करं वरम्।
द्वापरे तुकुरुक्षेत्रं कलौ गंगा विशिष्यते ॥

अध्यवसायियों के लिए काशी से बढ़कर और कोई सिद्ध पीठ नहीं-

जीवता यत्सुखं काश्यां अविक्षिप्तेन्द्रियात्मनाम्।
न तत्सत्ये न कैलासे न वैकुण्ठे कथं चन ॥

---

१ स्कन्दपुराण, काशीखण्ड, २६-२७

काशी की भूमि से स्नेह हो जाना किसी भी संस्कारी पुरुष के लिए स्वाभाविक है क्योंकि मातृस्वरूपा यह भूमि त्रिविध ताप का परिहार कर मोक्षामृत प्रदान करने वाली है। यहाँ अनायास ही भगवान शंकर सा सद्गुरु प्राप्त हो जाते जो अन्यत्र दुर्लभ है-

शिवरूपान् गुरून् नत्वा चतुर्णा सम्प्रदश्र्यते।
महिम्नः स्तवपद्यानां वेद संवादिता मया॥

सभी तीर्थों में श्रेष्ठ काशी 'अविमुक्त क्षेत्र' के नाम से प्रख्यात है। काशी विषयक अपने निबन्ध में गंगानाथ झा जी लिखते हैं-

अविमुक्ते परे क्षेत्रे कलिकाले विशेषतः।
तुषाराद्रिं समारुह्य केदारं वीक्ष्य यत्फलम्॥
तत्फलं सप्तगुणितं काश्यां केदारदर्शने।
गौरि त्वया कृतं पूर्वं स्नानमात्रं महाह्रदे।
गौरीतीर्थं ततः ख्यातं सर्वतीर्थोत्तमोत्तमम्॥

कलिकाल में गंगा, काशी, दान और विश्वनाथ की महत्ता का वर्णन करते हुए आपने प्रसिद्ध श्लोक का उल्लेख किया है-

कलौ विश्वेश्वरो देवः कलौ वाराणसी पुरी।
कलौ भागीरथी गङ्गा दानं कलियुगे महत्॥

आपने मातामही से सुना था-

यावज्जीवं वसेत्काश्यां प्रत्यब्दं सुप्रदक्षिणम्।
जीवनमुक्तास्तु तेज्ञे या निष्पापाः काशिवासिनः॥

आपने बचपन में ही सुना था-

चना चबेना गंग-जल जो पूरे करतार।
काशी कबहुँ न छोड़िये विश्वनाथ दरबार॥

इस साधना भूमि से निकट रहने का संकल्प भी प्रयाग प्रवास का प्रधान कारण रहा हो तो आश्चर्य नहीं। काशी की महिमा ही न्यारी है जहाँ-

समस्त देव शरणं सर्वतीर्थाश्रमं शुभम्।
अविमुक्तं महाक्षेत्रं सेव्यं धीरैर्जितेन्द्रियैः॥

इस मोक्षप्रदायिनी नगरी के प्रसंग में कहा गया है-

Varanasi or Kashi known as Avimukta in the most famous of all the pilgrim centres in India. It is situated between the Rivers Varuna and Asi. Kashi's

sacredness is extolled by Yagyawalkya in the Jabalopanisad. The lord Parmeswara interprets Avimukta in Matsyapuranam to mean that which He has not given up will never be given up. A detailed account of the various rites and observances for pilgrimage to Kashi is given in this book as also an account of the various shrines and their significance based on authoritative sources like Sanat Kumar Samhita and Sureshwaracharya in Kashismithi Moksha Vichara. Stories relating to this sacred spot of India are given in condensed form. A very detailed account of the various ghats where bathing and observances are prescribed is given for the benefit of those undertaking this pilgrimage. Kashi is studded with countless shrines, sacred to the lord Shiv. Those which must be visited are described while detailing out Nitya-Yatra, Antaranga-Yatra and Bahiranga-Yatra here in.

Tradition lays it down that all the seven Mukti Kshetras are found in Kashi itself.

Whatever sins may have been committed elsewhere are wiped out at Kashi. Sins committed at Kashi can be removed by Panchakosa Yatra - as said by Shiva to Parvati. Those who cannot do this can build temples or renovate old ones or gift a home to Vedic scholar. All sins are finally wiped out by deaths in Kahsi. The lord Shiva himself gives the dying soul the Taraka Mantra which saves one from hell and Taraka Mantra is signified as OMKARA, RAMANAMA or one of the Upanishadic Mahavakyas.

पिता स्वर्गीय धरानाथ झा जी की मृत्यु से पूर्व पं. मनोहर झाजी ने कहा था कि-

'अहा ! मैं जिस दृश्य को देख रहा हूँ वह दुर्लभ और चिर संचित पुण्य का ही फल है। पंडित प्रवर के सिरहाने स्वयं परमेश्वर शिव विराजमान हैं और उन्हें मुक्ति मन्त्र देना चाहते हैं।' निर्देशानुसार करवट बदलते ही धरानाथ झा जी ने नश्वर शरीर का त्याग किया। इस साक्षात् अनुभव का गंगानाथ झा जी पर सदैव प्रभाव रहा। पं. हरिनाथ, मित्र गोविन्ददास जी और पं. रघुनाथ के

साथ काशी महात्म्य पर विस्तृत चर्चा होती थी। तर्क-वितर्क के मध्य शास्त्रीय तथ्यों का विश्लेषण होता था। काशी में अवस्थित सभी लिंगों में शिव का अधिवास है। श्रद्धा और भक्ति से यहाँ दर्शन करनेवाले भक्तों पर स्वयं शिव कृपालु होते हैं। विश्वेश लिंग, मणिकर्णिकाघाट और काशी क्षेत्र के समान दुनियाँ में कुछ भी नहीं है। कलिकाल अत्यंत भयंकर है। काशी में गंगास्नान से स्वयं श्री विश्वेश्वरजी अभयदान करते हैं। ब्रह्मवैवर्त्त पुराण के अनुसार-

गुरुसेवा और पुराणश्रवण से सब साधन उपलब्ध होते हैं। काशी की महिमा अनन्त है। श्री विश्वेश का दर्शन, गंगास्नान और दान पुण्य काशी की महत्ता को और भी बढ़ा देता है। अविमुक्त नामक काशी क्षेत्र जो सब तीर्थों और देवताओं का निवास है, अवश्य दर्शनीय है। काशी में शिव कथा सुननेवाला, काशी-काशी बोलनेवाला और गंगाजल का पान करनेवाला जीव 'जन्म रहित' हो जाता है। काशी में कृतयुग में ज्ञाननिष्ठ, त्रेतायुग में याग और दान करनेवाले तथा द्वापर युग में पूजा तथा दान करनेवाले रहते थे। कलिकाल में यहाँ दान ही मोक्ष का साधन बन जाता है।

यह परम सत्य है कि धन में प्रीति रखनेवाला व्यक्ति निम्नाभिमुख होता और पुण्य पर प्रीति रखनेवाला जीव ऊर्ध्वगामी होता है। श्री हरि पर प्रीति रखनेवाला व्यक्ति सर्वव्यापी हो जाता है। मोक्ष प्राप्ति के लिए जो भी बाधाएँ हैं, काशी आगमन से ही उनका समाहार हो जाता है। स्वयं विष्णु और शिव का विश्रामस्थल काशी, अध्यवसायियों, धर्मात्माओं, साधु-सन्तों तथा पवित्र आत्मा वाले गृहस्थों के लिए अवश्य दर्शनीय तीर्थस्थल है।

काशी में छप्पन विनायक हैं। इनमें 'ढुंढी' विनायक जी स्वयं शिव के भी पूजनीय है। काशी जाकर उनका दर्शन करना आवश्यक है। स्वामी मनीषानन्द का गंभीर व्याख्यान गंगानाथ झा के मन को मोह गया। आन्तरिक कौलिक संस्कार ने संकल्प लिया-

गंगा तरंग रमणीय जटा कलापं गौरी निरंतरविभूषितवामभागम्।
नारायणप्रियमनंगमदापहारं वाराणसीपुरपतिं भज विश्वनाथम्।।

काशी, प्रयाग और विन्ध्याचल, गंगा, यमुना तथा सरस्वती से अत्यधिक स्नेह ने गंगानाथ बाबू को उत्तर प्रदेश की अभिसत्ता प्रदान की। आप जीवनान्त तक अपने वचन तथा लेखामृत से यहाँ के अधिवासियों को परितुष्ट कर उन्हें दिशा प्रदान करते रहे। विश्वेश्वर तथा माता अन्नपूर्णा से आपने सुदीर्घ अध्यवसायी जीवन का वर माँगा था। अन्नपूर्णा की अभ्यर्थना स्वयं शिव ने की थी-

नित्यानन्दकरी वराभयकरी सौन्दर्यरत्नाकरी
निर्धूताखिलपापपावनकरी प्रत्यक्षमाहेश्वरी।

प्रालेयाचल वंश पावन करी काशीपुराधीश्वरी
भिक्षां देहि कृपावलंबनकरी मातान्नपूर्णेश्वरी ॥

माता अन्नपूर्णा अपने पुत्रों को भी कभी निराश नहीं करतीं। सुदीर्घ अध्यवसायी जीवन का संकल्प लेकर आपने माता की अभ्यर्थना की और कहा-

भुवनेशि महाविद्ये ह्यन्नपूर्णे महेश्वरि।
अनुज्ञां देहि यात्रार्थं त्वत्प्रसादात्करोम्यहम् ॥

शिव, महाविद्या भुवनेश्वरी, भगवान विष्णु, गंगा माता, भास्कर तथा पंचकोशी महिमा के पावन स्मरण के साथ विद्यावीर ने अभीष्ट प्राप्ति के लिए यात्रारंभ किया-

आदित्यं द्रौपदीं विष्णुं दण्डपाणिं महेश्वरम्।
नमस्कृत्य ततो गच्छेत् द्रष्टुं ढुण्ढि विनायकम् ॥
ज्ञानवापीमुपस्पृश्य नन्दिवेशं ततो व्रजेत्।
तारवेशं ततोऽभ्यर्च्य महाकालेश्वरं तथा ॥

आपने अपने अभिलेखों में पंचकोशी परिक्रमा का विस्तार से उल्लेख किया है। पंचकोशी परिक्रमा से युगों से संचित पापों से मुक्ति मिल जाती है-

जय विश्वेश विश्वात्मन् काशीनाथ जगद्गुरो।
त्वप्रसादान्महादेव कृता क्षेत्रप्रदक्षिणा ॥
अनेकजन्मपापानि कृतानि मम शङ्कर।
गतानि पञ्चकोशात्म-लिङ्गसम्यक् प्रदक्षिणात् ॥
त्वद्भक्तिः काशिवासश्च राहित्यं पापकर्मणः।
सत्सङ्ग श्रवणाद्यैस्तु कालो गच्छतु नस्सदा ॥
हर शंभो महादेव सर्वज्ञ सुखदायक।
प्रायश्चित्तं सुनिर्वृत्तं पापानां त्वत्प्रसादतः ॥

काशी-मोह ने ही गंगानाथ झा को गंगाञ्चल से बाँधे रखा। प्रयाग और काशी ही आपका प्रमुख कर्म क्षेत्र रहा। प्रयाग प्रवास के निर्णय के मूल में माता रामकाशी की जन्मभूमि और निज शिक्षाश्रम काशी नगरी का नैकट्य लाभ भी था। काशी और प्रयाग का आपके जीवन में अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान है। विभिन्न तीर्थों की महिमा तथा दर्शनादि के लिए निर्धारित नियमों की आपने गंभीर समीक्षा की थी। व्यक्तिगत उल्लेखों में प्रयाग विषयक अनेक श्लोकों तथा स्नान, दान, पिण्डादि विधानों का सविस्तर वर्णन किया गया है।

वस्तुतः प्रयागराज की महिमा विराट है। यहाँ आनेवाले सत्पुरुष यहीं के होकर रह जाए तो कोई आश्चर्य नहीं। तीन सुविख्यात दिव्यस्थलों में प्रयाग श्रेष्ठ है-

नत्वा विनायकं ढुण्ढिं विश्वेशं माधवं तथा।
वक्ष्येऽहं त्रिस्थलीयात्रां दण्डपाणिं च भैरवम्।

पिण्डदान के लिए स्वयं धर्मराज युधिष्ठिर ने मार्कण्डेय ऋषि के निर्देशानुसार प्रयागराज की यात्रा की थी। प्रयाग यात्रा के विधि विधानों का भी विस्तारपूर्वक उल्लेख किया गया है।

उदाहरणार्थ-

'यात्रार्थप्रस्थानात्पूर्वदिने वपनम्- उपवासश्च। प्रस्थानदिने गणेशपूजां- कत्वां, सङ्कल्पः-मम सपत्नीकस्य इह जन्मनि जंन्मान्तरे च संभावितसमस्तपापनिर्ह- रणार्थं प्रजापति क्षेत्राख्य॰प्रयागक्षेत्रे तीर्थराजाख्य त्रिवेणीस्नानं तीर्थश्राद्धं च कर्तु कामः मृतश्राद्धुं करिष्ये। तच्चान्न-रूपेण हिरण्यरुरूपेण वा घृतप्रधानं कुर्यात्। तच्च पितृ-मातृ-मातामहवर्गत्रयमुद्दिश्य नवदैवत्यं कुर्यात्॥'

इस महातीर्थ की यात्रा के लिए काल और व्यक्ति का विचार करना होता है। मार्कण्डेय ऋषि के अनुसार प्रयागतीर्थयात्रा के लिंए आवश्यक है कि व्यक्ति सत्पुरुष हो और विनयशील हों।

यात्रा नियमः —

जितेन्द्रियः, एकभक्त-क्रोधहिंसादिवर्जितः - छत्रोपानदादिरहितः - कंचु- कोष्णीष-बहितः शक्तः विनयेन, सर्वगोपनं परित्यज्य, हरिस्मरणशीलो गच्छेत्। सङ्कल्पः, मम इह-जन्मनि जन्मान्तरे च कायिक-वाचिक-मानसिक सकल पाप क्षयार्थ-अस्मत्पितृणां नानानिरयो-द्धारण द्वारा शाश्वत ब्रह्म विष्ण्वादि लोक प्राप्त्यर्थं च प्रयागयात्रां करिष्य इत्याद्युल्लेखः गृहात्प्रति।

प्रयागं गत्वा तस्मिन्दिने तत्र स्नात्वा वपनं कुर्यात् सधवावर्जम्। प्राङ्मुख उदङ्मुखो वा।

मन्त्रः —

यानि कानि च पापानि ब्रह्महत्यासमानि च।
केशानाश्रित्य तिष्ठन्ति यस्मात् केशान्वपाम्यहम्॥

कक्षोपस्थशिखावर्जं सर्वांगं वापयेत्। स्नानं कृत्वा वेणीदानं कुर्यात्। सुमङ्गीलीनां सर्वान् केशान समुद्धृत्य अङ्गुलिद्वयं छिन्द्यात्। 'सर्वान्केशान्समुद्धृत्य छेदयेदंगुलद्वयं। एवमेव हि नारीणां शस्यते वपनक्रिया'। सप्तजन्मसु सौभा- ग्याभिवृद्धर्यर्थं वेणीदानं करिष्ये। फल-पुष्परत्नसहितां वेणीं आदाय वेण्यां वेणी- प्रदानेन मम पापं व्यपोहतुं। जन्मान्तरेष्वपि सदा सौभाग्यं मम वर्धतां इति प्रक्षिप्य स्नायात्। प्रयाग सङ्कल्पः महासङ्कल्पं कृत्वा, विन्ध्यस्योत्तरार्यावर्तान्तर्गत ब्रह्माव-

तैंकदेशे विष्णुप्रजापतिक्षेत्रे षट्कूलमध्ये अन्तर्वेद्याः भागीरथ्याः पश्चिमे तीरे कालिन्द्याः उत्तरेतीरे वटस्य पूर्व दिग्भागेविक्रमशके बौद्धावतारे बार्हस्पत्यमानेन संवत्सरे सौरचान्द्रमानाभ्यां संवत्सरे इत्यादि सङ्कल्प पूर्वकं स्नानः।

स्नान मन्त्राः –

सागरस्वन निर्घोष दण्डहस्तासुरान्तक।
जगत्स्रष्ट जगन्मर्दिन् नमामि त्वां सुरेश्वर॥
तीक्ष्णदंष्ट्र महाकाय कल्पान्तदहनोपम।
भैरवाय नमस्तुभ्यं अनुज्ञां दातुमर्हसि॥

मन्त्रान्तरमपि–

ओं नमो देवदेवाय शितिकण्ठाय दण्डिने। रुद्राय चापहस्ताय चक्रिणे वेधसे नमः।

सरस्वती च सावित्री वेदमाता गरीयसी।
सन्निधात्री भवत्वत्र तीर्थे पापप्रणाशिनी॥
सर्वेषामेव तीर्थानां मन्त्र एष उदाहृतः॥
सूत्रजपमार्जनादिकं देवादितपर्णं च स्नानाङ्गं भवति।
स्नानसाद्गुण्यार्थ गायत्री जपं कृच्छदानं न कुर्यात्।

स्नानप्रकारः–

प्रथमं चालयेत्तीर्थं प्रणवेन जपं शुचि। अवगृह्य ततः स्नायात् यथावन्मन्त्रयोगतः॥ सर्वत्र अयं नियमः। अनन्तरं तीर्थश्राद्धम्। पूर्वं वगाहनं तीर्थे मुण्डनं तदनन्तरम्। ततः स्नानादिकं कुर्यात् पश्चाच्छाद्धं समाचरेत्। महालय श्राद्धवत् ब्राह्मणवरणम् तीर्थश्राद्धोक्त-विधिना श्राद्धं कुर्यात्। पिण्डदानं तु बान्धवानामपि। श्राद्धाङ्गतर्पणं श्राद्धारम्भात्पूर्वमेव। प्राप्तैरेव च कर्तव्यम् पितृणां चैव तर्पणम्। ततः श्राद्धं प्रकुर्वीत इत्युक्तैः। हिरण्यश्राद्धे तु अन्ते तर्पणम् हिरण्येन्तदकं पश्चादित्युक्तैः। उद्देश्यदेवतानिर्णयः —

देवः पिता ततो माता सपत्नी जननी तथा।
मातामहास्सपत्नीका आत्मपत्नी तदन्तरम्॥
सुत भ्रातृपितृव्याश्च मातुलास्सहभार्यया।
दुहिता भगिनी चैव दौहित्रो भागिनेयकः॥
श्वशुरःश्यालकश्चैव स्वामिभृत्यार्त्तयथाक्रमात्॥

अत्र ये न जीवन्ति तेषां पिण्डदानं गोत्र नाम सम्बन्ध पुरस्सरं कर्त्तव्यम् तर्पणं च भवति तेषाम्।

अनन्तरं दानानि यथासंभवं दम्पतिपूजनं च कुर्यात्। अत्र दिनत्रयवासः आवश्यकः सतिसंभवे अधिकमपि। दानानि - दशदान-सौभाग्यद्रव्य:शूर्पदानानि गोदानं वस्त्राभरणालङ्कारदोहनपात्रसहितं कुर्यात्। वस्त्र रत्नदीप कुम्भादि यथासं-भवं देयम्।

यावद्रोमाणि तस्या गोस्सन्ति गात्रेषु सत्तम।
तावद्वर्षसहस्राणि स्वर्गेलोके महीयते॥

यात्रां कर्तुमशक्तानुद्दिश्य स्नानं कुर्यात्। 'मातरं पितरं जायां भ्रातरं सुहृदं गुरुम्। यमुद्दिश्य निमज्जेत अष्टमाशं लभेत सः।'

तस्य विधिः—

प्रतिकृतिं कुशमयीं तीर्थवारिणि मज्जयेत्। मज्जयेच्च यमुद्दिश्य सोष्ट-मांशं फलं लभेत।

मन्त्रः- 'कुशोऽसि कुश पुत्रोऽसि ब्रह्मणा निर्मितःस्वयम्। त्वयि स्नाते स च स्नातः यस्येदं ग्रन्थिबन्धनम्।'

मार्कण्डेय मुनि तथा धर्मराज युधिष्ठिर के संवाद माध्यम से प्रयाग स्नान विशेषतः माघस्नान-महिमा का भी सर झा ने बृहत् उल्लेख किया है-

प्रयागक्षेत्रे माघस्नानकरणे सर्वपाप निवृत्तिः, महानभ्युदयश्च 'अन्यत्र यत्कृतं पापं प्रयागं प्राप्य नश्यति। प्रयागे तत्कृतं पापं वज्रलेपो भविष्यति। नान्यत्र तत्क्षयं याति प्रायश्चित्तशतैरपि।'

युधिष्ठिरः- प्रयागकृतपापानां कथं वा निष्कृतिर्भवेत्।

मार्कण्डेयः-

प्रमादादप्रमादाद्वा प्रयागे यदघं भवेत्।
माघस्नानेन तत्रैव नित्यपात्रप्रदानतः।
जपैर्होमैस्तथा दानैरनुतापो यदा भवेत्।
अन्नं वस्त्रं च गामश्वं भोगानुच्चावचांस्तथा।
यदेव न द्विजे दत्तं तत्स्वर्गेऽपि न लभ्यते॥

प्रयाग में कम से कम तीन रात्रि तक वास का विधान है-

प्रयाग क्षेत्रे त्रिरात्रवासः कर्त्तव्यः। तत्रस्य देवता दर्शनं वरवृक्ष दर्शनं च कर्त्तव्यम्। तत्र गङ्गापूजन पुरस्सरं कलशेषु गङ्गाजलं हृह्णीयात्॥

जीवन पर्यन्त प्रयाग में अध्यवसायी जीवन व्यतीत करनेवाले गग झा ने प्रयाग में ही अपनी जीवन लीला समाप्त की। कुमारिल भट्ट की भाँति ही

आपने गंगा के निकट देह-विसर्जन किया। अन्तिम दर्शन का अनुभव और उनके योगी स्वरूप का वर्णन करते हुए डा. आर.डी. राणा डे लिखते हैं-

Like Kumaril, Sir Ganganath Jha left his mortal body on the banks of the Ganges at prayaga. To me personally as it was to many an eminent Doctor, it was a wonderful sight to see the Panditjee sitting up in a yogic posture throughout the entire last month of his life without Pause. It was a feat which could be accomplished by rarely any person during the last stages of his life. When Dr. Umesh Mishra and myself had been to pay our respects to the Revered Panditjee just six hours before, he passed away - alas ! We did not know that it was our final visit to him, nor that it was the final visit that he granted consciously to any body - he appeared to us, and we shall long cherish the impression, that he was a 'lion among Philosophers', roused from his Samadhi slumber and speaking consciously to us. The main stay of his final programme must have been the powerful support which he received from his moral and spiritual life, led continuously through a period of more than seventy years. Like Kumaril, he was the great connecting link between Mimamsa and Vedanta. Born in Videha, there is no doubt that he must have reached Mukti of Videh type.[1]

अन्तिम समय में भी आप लेखन और प्रकाशन विषयक कार्यों की ही चिन्ता करते रहे। आपने अपने अन्तिम समय की पूर्वघोषणा कर दी थी। मृत्यु को वरण करने के लिए आप प्रस्तुत हो चुके थे। कुमारिल की भाँति ही आपको अपने कार्य की पूर्णता का आभास हो चुका था। सर झा के अन्तिम दिनों का वर्णन करते हुए स्वनामधन्य डा. अमरनाथ झा जी ने लिखा है-

In his last days he was anxious that his work on Mimamsa should appear early; he was anxious about the Introduction which he had under-taken to

---

१ Dr. R.D. Ranade, 17th March, 1942.

constitute to his revised translation of the Chhandogya Upanishad, he was anxious to correct the last portions of the Proof of the Vivadachintamani, which he had translated for the "Gaekwad Oriental Series". He had no other anxieties. He was ready and willing to depart. It is the pious privilege of the survivors to see the publication of the last works which, despite feeble health and failing sight, he had completed.

महात्मा डॉ. सर गंगानाथ झा ने कुमारिल् भट्ट की भाँति प्रयाग तट पर ही अपनी जीवन लीला समाप्त की। वेद-पुराण और उपनिषद् का निष्णात पंडित त्रिवेणी की त्रिधारा में संलीन हो गया। सरस्वती का पुत्र सरस्वती की गोद में सो गया। गंगा की अभ्यर्थना करनेवाले गंगानाथ ने गंगा तट पर शरीर त्याग कर प्रमाणित कर दिया कि जीवनान्त तक वे गंगा और माता रामकाशी के स्नेह सूत्र से आबद्ध रहे। प्रयाग में निज-साधना से प्राप्त ज्ञान रश्मियों का मुक्त हाथों से वितरण करने वाले सर गंगानाथ झा ने प्रयागराज में ही चिर-समाधि ली, यही उनके प्रयाग प्रवास की सबसे मार्मिक प्रासंगिकता है।

गंगानाथ प्रयाग मह
त्यागल प्राण ललाम।
तीर्थराज केर गंग तट
अन्त लेल विश्राम॥[१]

***

१ डा. अमरनाथ झा, संस्मरण।

IV

प्रेरक-प्रसंग

उत्तमाः स्वगुणैः ख्याता

श्रेष्ठ पुरुष निज गुणों के माध्यम से ही ख्याति प्राप्त करते हैं। मिथिला की गुरु परम्परा शिष्यों को बढ़ने के लिए प्रचुर ज्ञान-समिधा प्रदान करती रही है। महामहोपाध्याय पण्डित जयदेव मिश्र जी ऐसे सुविख्यात गुरुओं में अग्रगण्य थे। इन्हीं की विशाल शिष्य परम्परा के एक कालजयी रत्न थे महामहोपाध्याय डॉ. सर गंगानाथ झा। गन्धवारि से चलकर चमथा घाट से वाराणसी तक की नाव-यात्रा में ही बाबू वासुदेव सिंह के इस दौहित्र की मेधा का उन्हें संकेत मिल गया था। घने कुहासे में भी बालक गंगानाथ पूर्व दिशा का संकेत कर देते थे। ज्योतिषीय गणना भले असत्य प्रमाणित हुई किन्तु गंगानाथ ने जिधर पूर्व दिशा इंगित की भगवान भास्कर का रथ उसी दिशा से आया।

काशी में जब गंगानाथ बाबू ने आपसे अध्यापन की प्रार्थना की तो गद्‌गद स्वर में आपने कहा-

केयूरा न विभूषयन्ति पुरुषं हारो न चन्द्रोज्जवलो
न स्नानं न विलेपनं न कुसुमं नालङ्कृता मूर्धजाः
वाण्येका समलङ्करोति पुरुषं या संस्कृता धार्यते
क्षीयन्ते खलु भूषणानि सततं वाग्भूषणं भूषणम् ॥

वस्तुतः मनुष्य को मणिबन्ध, उज्ज्वल हार, स्नान, अनुलेपन, फूल, सुन्दर वेश, अलंकृत नहीं करते। गंभीरतापूर्वक धारण की गयी संस्कृत वाणी ही पुरुष को अलंकृत करती है। आभूषण सदैव क्षीण होते हैं किन्तु वाणी का आभूषण ही वास्तविक आभूषण है। इसकी भव्यता में कभी कोई कमी नहीं आती।

महामहोपाध्याय जयदेव मिश्र वाणी की अभ्यर्थना को ही अपना धर्म मानते थे। शिष्य गंगानाथ में उन्हें उत्तम छात्र के सभी गुणों के दर्शन हुए। एक बैठक में छः-छः घंटे पढ़ाने वाले गुरु तो उस समय भी काशी में अनेक थे किन्तु ऐसे छात्रों का सर्वाधिक अभाव था जो दत्तचित्त होकर अध्ययन कर सके। न्याय पढ़ाने के क्रम में और मीमांसा विषयक जिज्ञासाओं को सुनकर पं. जयदेव बाबू

ने देख लिया कि जिसे वे ज्ञान की निधि सौंपने जा रहे हैं कालान्तर में वह स्वयं ज्ञान के निधिपति के रूप में विख्यात होगा। पं. रमापति मिश्र जी (अवकाश-प्राप्त डिप्टी कलक्टर) मिथिला के उद्भट विद्वान्, पं. मार्कण्डेय मिश्र के सुपुत्र हैं। आपका विवाह सर झा की नतिनी से हुआ था। इनके पिता पं. मिश्र का, झा परिवार के साथ पहले से ही निकट सम्बन्ध था। महाराज दरभंगा के सोदर भ्राता बाबू वासुदेव सिंह गन्धवारि आकर रहने लगे थे। इन्हीं के तृतीय दौहित्र थे डॉ. सर झा। महाराज के प्रिय होने का मुख्य सूत्र यही था। बाबू वासुदेव सिंह की दूसरी पत्नी पं. मार्कण्डेय मिश्र की मौसी थी। कुमार की दूसरी पत्नी निःसन्तान थी इसलिए मार्कण्डेय मिश्र को पुत्रवत मानती थीं। डॉ. झा और पं. मिश्र गन्धवारि में साथ-साथ खेले हुए थे। अन्त तक यह सौहार्द्र बना ही रहा। सरिसब - पाही के निधिपति पं. बलदेव झा जी और सर झा मौसरे भाई थे। गन्धवारि में बाबू वासुदेव सिंह ने अनेक उद्भट विद्वानों को आश्रय दिया था। दोनों मेधावी छात्रों ने विद्या का प्रथम सूत्र यहीं ग्रहण किया।

डा. झा का संस्मरण सुनाते-सुनाते मिश्र जी भाव विह्वल हो उठते हैं। इलाहाबाद विश्वविद्यालय के छात्र रह चुके श्री मिश्र का व्यक्तित्व बाहर से जितना सौम्य और प्रभावशाली है, अन्दर से भी वे उतने ही सरल हैं। मिश्र जी की पत्नी का पालन-पोषण डॉ. झा की ज्येष्ठ कन्या जगद्धात्री देवी के पास ही हुआ। इन्हीं के सौजन्य से आप पर सरस्वती की कृपा हुई और इलाहाबाद में डॉ. सर झा के निकट रहने का सौभाग्य मिला। पं. मार्कण्डेय मिश्र तथा डॉ. झा के गुरु महामहोपाध्याय पं. जयदेव मिश्र दोनों की मेधा पर मुग्ध थे। वे कहा करते थे गुरु तो अनेक मिल सकते किन्तु ऐसे शिष्यों का मिलना दुर्लभ होता है। महारानी के साथ ही दोनों छात्र रूप में काशी गए थे। वहाँ पहुँचकर दोनों गुरुभाई हो गए। पं. राजेश्वर शास्त्री तथा पं. शिवकुमार शास्त्री डॉ. झा की विद्वत्ता पर मंत्रमुग्ध हो गए थे। बाल्यावस्था में ही आपकी प्रतिभा बोलने लगी थी। बाबू वासुदेव सिंह की पत्नी जब काशी विदा हुई तो उनके साथ लगभग साठ व्यक्तियों का काफिला था। चमथाघाट से प्रारंभ होनेवाली यह नाव-यात्रा कई दिनों तक चलती रही। नाव पर परिजनों के साथ अनेक पण्डित, ज्योतिषी और कपिला गाय भी थी। एक बार जब नाविक को दिशा का भ्रम हो गया तो उनकी नानी ने कहा- 'गंगा सँ पुछियन्हु। हुनक दिशा ज्ञान सबसँ तीक्ष्ण छनि।'[१] और बालक झा के अनुसार ही यह यात्रा चलती रही। इनका संकेत काशी के पण्डितों को भी मान्य होता था।

---

१ गंगा से पूछिये। उसका दिशा ज्ञान सबसे तीक्ष्ण है।

संस्मरण को बीच में रोककर पं. मिश्र ने कहा कि मुझे आज भी अपने विवाह का वह क्षण स्मरण आता जो किसी भी व्यक्ति के लिए अभिमान करने योग्य है। वेहट गाँव में सम्पन्न मेरी शादी में स्वयं डॉ. झा मेरे पिता पं. मार्कण्डेय मिश्र, समाज के सभी आदरणीय विद्वान् तथा डा. सर झा के पाँचों नक्षत्र के समान देदीप्यमान प्रतिभाशाली पुत्रों ने भाग लिया था। सर झा मृत्यु से कुछ दिनों पूर्व तक ब्राह्म मुहूर्त्त में उठ जाया करते थे। सबके सो जाने पर शय्या पर जाने वाले वृद्ध मनीषी प्रातःकाल सबसे पहले शय्या त्याग करते थे। समय का झा परिवार में सर्वाधिक महत्त्व रहा। एक-दो-तीन का घंटा बजता और गंगाबाबू उठ जाते। नित्य क्रिया से निवृत्त होकर सहस्र गायत्री जाप करते थे। आपके पिता छाती तक जल में रहकर सहस्र गायत्री जाप करते थे। माघ के शीत में भी यह क्रम नहीं टूटता था। ग्रामीण धार्मिक वृद्धों के अनुसार गायत्री की कृपा से ही आपकी सन्ततियों ने इतनी ख्याति अर्जित की। डॉ. झा जप के अतिरिक्त तारा सहस्रनाम और तर्पणादि भी किया करते थे। कुलदेवी तारा की आराधना में मग्न होकर कहते जाते-

ताराक्षहारिणि तारप्रिया तारक रूपिणि।
तारक प्रेम संभूषा तारक ब्रह्मसुन्दरी॥
तार्तीय बीजसन्तुष्टा तार्तीयाक्षर मालिनी।
तामसी तामसाराध्या त्रां बीज जपतोषिता॥
तारिण्यमृतसंसारा तारा नायक भूषणा।
तारक नायक सम्मान्या तारा नायक मानसा॥
तारानायक वंशस्था तारानायक वंशभूः।
तारा तारा तान नान ताल ताण्डवकारिणी॥

दो घंटे तक पूजा का क्रम चलता। पूजा के पश्चात् परिवार के सभी सदस्य आपस में सुख-दुःख की चर्चा करते। यह बेला बालकों के लिए अत्यन्त आह्लादक थी। इस समय अध्ययन-अध्यापन की चर्चा नहीं होती। हास्य रस की कोई टिप्पणी कर सर झा सबको हँसाकर प्रसन्न कर देते। यहाँ से ऊर्जा प्राप्त कर सभी अपने-अपने कार्य सम्पादनार्थ उठ जाते थे। इनकी पत्नी परम साध्वी और अनुशासनप्रिया थीं।

सात बजे सर झा अपने अध्ययन कक्ष में प्रविष्ट कर जाते। अध्ययन और लेखन का यह क्रम अवाध गति से चलता रहा। बाद में वे लगातार लिखते ही रहते थे। लेखनी पकड़ने का उनका ढंग निराला था। चार घंटे तक वे लिखते रहते थे। विशुद्ध पारिवारिक परिवेश में ये पुत्रों के साथ भोजन करते थे। डॉ. अमरनाथ झा भी नियम और समय के पक्के थे। भोजन कर वे विश्वविद्यालय जाते और सर झा अपने अध्ययन कक्ष में ही विश्राम करते। विश्राम के इन्हीं

क्षणों में वे विषय का निर्धारण करते थे जिन पर आगे लिखना होता था। अंधकार होने तक वे लिखते ही जाते थे। इस बीच सामान्य से सामान्य व्यक्ति भी यदि आते तो यथोचित सत्कार कर समस्या समाधान की व्यवस्था थी। ग्रामीण परिजनों, विद्वानों, पंडितों, छात्रों तथा अपरिचित अभ्यागतों के साथ डॉ. झा समान प्रेम-भाव से मिलते थे। मिलने वाला व्यक्ति ठगा रह जाता कि यही डॉ. सर झा हैं ! डॉ. थीबो के एक गवेषक मित्र ने डॉ. झा से मिलकर कहा था कि 'वे व्यक्ति कम देवता अधिक हैं। इतना परिशुद्ध आचरण किसी आदमी का नहीं हो सकता।' सत्य के दुराग्रही थे डॉ. झा। असत्य से उन्हें घृणा थी। टालने की नीति, बहलाने के प्रयास इन्हें प्रिय नहीं थे। संभव रहने पर कार्य कर देते थे। किन्तु संभव नहीं रहने पर क्षमायाचना कर अपनी स्थिति स्पष्ट कर देते थे। डा. झा ने आगन्तुकों की कभी उपेक्षा नहीं की। गंगा बाबू जितने प्रकाण्ड पण्डित थे उतनी ही सरल थी उनकी वेश भूषा। सामान्यतया वे धोती, गंजी और एक अंगोछा लिए होते थे। बाहर जाते समय धोती, तौनी और पाग पहनते थे। विशेष अवसरों पर ढीला पैंट और शेरवानी की भाँति का कोट पहनते थे। सन्ध्याकाल आप विश्राम करते थे। परिवार के सदस्यों से मिलते थे। सेवक इनकी अत्यल्प सेवा करते थे और अमरनाथ झा जी के आने पर ही आप भोजन करते थे।

वृद्धावस्था में भी पारिवारिक व्यय का दायित्व आपने ही निभाया। आश्रम की सम्पूर्ण व्यवस्था का परिचालन आप हीं करते थे। यहाँ तक कि इलाहाबाद विश्वविद्यालय के कुलपति डा. अमरनाथ झा का व्यय भी इन्हीं के कोश से होता था।

पुत्रियों के प्रति इनका अतिरिक्त स्नेह था। एक बार एक दामाद से पुत्री के रहने देने के प्रश्न पर मतान्तर हो गया तो आपने नयी व्यवस्था ही बना डाली। आपने पुत्रियों से कहा कि यह तुम्हारे पिता का घर है जब इच्छा हो चली आओ और जब इच्छा हो चली जाओ। इस व्यवस्था के उपरान्त कभी कोई विवाद न हुआ।

परिजनों के आवागमन का सम्पूर्ण व्यय डा. झा का होता था। स्नेहपूर्वक वे पुत्रियों को आवश्यकता से कहीं अधिक उपहार दिया करते थे। पत्नी का स्वभाव कड़ा अवश्य था। किन्तु ऐसा स्नेह भी असंभव है। पत्नी की मृत्यु पर डॉ. सर झा रो पड़े थे। उनकी एक शोक-कविता इसी घटना पर आधारित है-

सभकेँ त्यागि कतय गेलि

कत गेलि प्राणपियारि

कोन विध जिवन निमाहब

बिनु सहचरि सुकुमारि ॥[१]

परिवार के सद्यःजात शिशु तक के लिए जेब खर्च की व्यवस्था थी। डा. झा ने इसकी प्रेरणा राज दरभंगा से पाई थी। अपने से दूने बालक को कुश्ती में पटकने के लिए महाराज लगातार इन्हें मिष्टान्न के लिए निर्धारित राशि देते रहे। वृद्धावस्था में भी सबके सो जाने पर घर का निरीक्षण कर वे शय्या पर जाते थे।

विद्वान् पिता और पुत्र में स्वभावगत अन्तर को जयपुर के एक व्याख्याता ने अपने संस्मरण के द्वारा अभिव्यक्ति प्रदान की। उस समय इलाहाबाद विश्वविद्यालय की बड़ी ख्याति थी। जयपुर के एक गरीब ब्राह्मण-कुमार को इलाहाबाद जाकर अध्ययन की इच्छा हुई। उसके पिता का उदयपुर विश्वविद्यालय के व्याख्याता पं. मार्कण्डेय मिश्र से परिचय था। मिश्र जी से अनुरोध करने पर उन्होंने डा. गंगानाथ झा के नाम से एक पत्र दिया। छात्र उस पत्र को लेकर इलाहाबाद आया और आवास तक पहुँचा। एक पथिक से पूछकर आहाता में पहुँचा। भृत्य को अपने - आने की सूचना दी। निर्देश पाकर जब वह अध्ययन कक्ष में पहुँचा तो एक मुंशीनुमा व्यक्ति को पटरे पर लिखते हुए पाया। उसने कहा- 'मुझे डा. गंगानाथ झा जी से मिलना है, मैं पं. मार्कण्डेय मिश्र का पत्र साथ लाया हूँ।' डा. झा ने जब पत्र माँगा तो उसे सन्देह हुआ, 'कहीं ये स्वयं डॉ. झा तो नहीं ? तत्काल पश्चात्ताप से वह गल गया। उसने क्षमायाचना कर काँपते हाथों पत्र दिया। कार्य अब वर्त्तमान कुलपति डा. अमरनाथ झा के पास था। डा. झा ने व्यक्तिगत रूप से जाकर पुत्र से कहा- 'बच्चा ई पत्र मिश्र जी पठओलनि अछि। बालकक कार्य कए दिंयनि।' (यह पत्र मिश्र जी ने प्रेषित किया है। छात्र का कार्य अभीष्ट है।) छात्र को अगले दिन अमरनाथ बाबू से मिलने का निर्देश हुआ। निर्धारित समय पर आदेश प्राप्त कर छात्र अमरनाथ झाजी के अध्ययन कक्ष में पहुँचा। यहाँ का वातावरण बगल के वातावरण से भिन्न था। यह अन्तर कमोवेश गाँव और नगर का अथवा पूरब और पश्चिम का था। सुदीर्घ काल तक तो अमरनाथ बाबू अपना लेखन कार्य करते रहे। पश्चात् जब जूते की चरमराहट से चेहरा उठाया तो गंभीर वाणी में आदेश दिया-

'कल ठीक ग्यारह बजे विश्वविद्यालय में मिलो।'

इलाहाबाद के अनेक समसामयिक गवेषकों ने इस अन्तर पर टिप्पणी करते हुए कहा- 'यही कारण था कि जहाँ सर झा की इच्छा तक को विद्वान्, मित्र

---

१ सर झा की डायरी से

तथा छात्र आदेश मानते थे वहीं डा. अमरनाथ झा के कुछ आदेशों की भी अवहेलना कर देते थे।'

इनकी पत्नी का सम्पूर्ण परिवार पर वर्चस्व था। पत्नी की सखी के लाडले पुत्र की उत्तरपुस्तिका सर झा के पास आयी। छात्र बहुत कमजोर था और माता पिता का अकेला पुत्र था। विह्वल होकर सर झा से उनकी पत्नी ने कहा कि उक्त छात्र उत्तीर्ण हो जाय ऐसी व्यवस्था कीजिए। कहते हैं एक वाक्य मुँह से निकल जाने के बाद उसे लौटाना वे नहीं जानती थी। डा. झा के लिए यह विकट समस्या थी। उन्होंने सुविचारित ढंग से इसका हल निकालने का प्रयास किया। झूठ वे बोल नहीं सकते थे। और लड़के में उत्तीर्णता की योग्यता नहीं थी। सर झा ने लड़के के पिता को बुलवाया। सादर बैठाकर कहा कि आप स्वयं पढ़े-लिखे हैं अपने पुत्र की उत्तरपुस्तिका देखकर निर्णय लीजिए कि वह उत्तीर्ण होने योग्य है अथवा नहीं। छात्र के पिता के लिए नयी समस्या थी। इतने बड़े विद्वान् के समक्ष वे तो नगण्य थे। काँपते स्वर में कहा- पण्डितजी मुझे इसमें क्यों पूछ रहे हैं ? आपके सम्मुख मैं निरा मूर्ख हूँ। 'डा. झा ने उन्हें स्थिति की गंभीरता से अवगत कराते हुए कहा कि यह छात्र यदि एक वर्ष और श्रम कर अपनी कमजोरियों को दूर कर ले तो अगले वर्ष उत्तम अंकों के साथ उत्तीर्ण होगा और भविष्य में आदर का पद प्राप्त करेगा। आपकी पत्नी और मेरी पत्नी का विचार है कि मैं इसे उत्तीर्ण कर दूँ। जहाँ तक मैं समझता हूँ एक बार अनुत्तीर्ण होने में ही इसका कल्याण है।

यह सुनकर छात्र के पिता को असीम आनन्द की प्राप्ति हुई। दोनों में मूक संवाद हुआ। परीक्षाफल घोषित होने के बाद सर झा की पत्नी ने सखी से पूछा 'क्या आपका लड़का उत्तीर्ण हो गया ?' सखी ने कहा- 'सर झा ने उसका जीवन बना दिया है।' कालान्तर में वह छात्र एक मेधावी व्याख्याता के रूप में विख्यात हुआ।

इसी प्रकार की एक घटना स्त्री शिक्षा को सहशिक्षा के रूप में अनुपयुक्त ठहराने सम्बन्धी है। अपने एक पुत्र के मुख से माता ने किसी लड़की का नाम सुना और पता लगाने पर सूचना मिली कि लड़की इलाहाबाद विश्वविद्यालय की छात्रा है। अभी तक डा. झा की पत्नी सहशिक्षा के प्रचलन से अनभिज्ञ थी। डा. झा से पूछने पर इस बात की पुष्टि हुई। उन्होंने कहा- 'आप इस व्यवस्था को तुरन्त समाप्त कीजिए।' जब सर झा ने अपनी सीमा बतलाकर असमर्थता प्रकट की तो पत्नी की प्रतिक्रिया थी- 'आपके वश में त्याग पत्र देना तो है।'

विवश झा साहब गवर्नर से मिले और कहा कि इस समय भारतीय समाज सह शिक्षा को सोत्साह अपनाने की स्थिति में नहीं है इसलिए इस निर्णय को वापस लेने में ही भलाई है। विद्वान् कुलपति का सम्मान करते हुए राज्यपाल

ने सिण्डिकेट से निर्णय कराकर प्रतिवेदन भेजने का निर्देश दिया। यह काम आसान नहीं था। छात्र, सदस्यों तथा शिक्षकों ने कहा कि- 'जब किसी लड़की के पिता ने आपत्ति नहीं उठायी है तब ऐसा विचार ही क्यों किया जाय ?'

हँसते हुए डा. झा ने कहा कि 'मित्रों ! लड़कियों के पिता को आपत्ति न हो लड़कों के पिता को तो है।' सदस्यों को इसी चुहल में आदेश मिल गया था। उस समय सर झा के तीन पुत्र विश्वविद्यालय के छात्र थे। और यह प्रस्ताव ध्वनि मत से पास हो गया। डॉ. झा अपना वेतन पत्नी को सौंपकर निश्चित हो जाते थे। पत्नी को वेतन कलदार रूप में ही स्वीकार्य था। उसे पहले बालू से रगड़कर गंगाजल से धोया जाता। तभी पवित्र कन्तोरी (मुद्रा कोश) में जाने की योग्यता उनमें आती। इलाहाबाद आवास परिसर में किसी भी छैल-छवीली या शृंगार करनेवाली युवती का आना संभव नहीं था। वे नहीं चाहती थीं कि चारित्रिक प्रदूषण फैले। विद्वान् पुत्र भी सदैव उनके अनुगत ही रहे। किन्तु स्वतन्त्र जीवन में प्रवेश के पश्चात् कुछ पौत्रों में धूम्रपान तथा मद्यपान की आदत जगी। पिता और पितामह की भाँति वे काल प्रवाह से अपने को बचा न सके।

सर झा अपने दो भाइयों के बड़े प्रशंसक थे। पं. विन्ध्यनाथ झा तथा पं. गणनाथ झा इनके आदर्श थे। विन्ध्यनाथ झा को बिहार के प्रथम स्नातक होने का गौरव प्राप्त था। उनके तेजस्वी व्यक्तित्व से महाराज दरभंगा बड़े प्रभावित थे। स्वाभिमानी विन्ध्यनाथ झा जी को पढ़ने का ही व्यसन था। एक बार महाराज के कहने पर ये वायसराय से मिलने गये। इत्तला देने के उपरान्त दस मिनट तक जब बुलावा न आया तो आप लौट आए। वायसराय ने महाराज से खेद प्रकट किया और पुनः भेजने का अनुरोध किया। महाराज के दुराग्रह पर जब वे वायसराय से मिलने पहुँचे तो बड़ी गर्मजोशी के साथ उनका स्वागत हुआ। वायसराय इनसे बात करने के क्रम में खो से गये। बाद में महाराज को उन्होंने कहा- 'राजाजी यह आदमी यदि हमारे देश में होता तो इनकी प्रतिभा का सही उपयोग होता। किसी भी दायित्त्व को निभाने की इनमें अद्भुत क्षमता है।'

डॉ. झा ने ग्रामीण वृद्धों के सम्मुख मुक्त कंठ से स्वीकारा था कि 'मेरे दोनों अग्रज मुझसे कहीं अधिक मेधावी और गुण सम्पन्न थे।'

पं. गणनाथ झा जी महान तांत्रिक थे। पुत्र के व्यवहार से आहत होकर इन्होंने तत्काल काशी जाने का निर्णय लिया। वे रिक्त हस्त बनारस गये। प्रतिभाशाली मनीषी को काशी के नागरिकों ने सादर स्वीकारा। श्री-सम्पन्नता के लिए तनिक भी प्रयास न करना पड़ा। इनके द्वार पर शताधिक लोग नित्य आहार प्राप्त करते थे। अन्ततः ईश्वर से अवसान काल का निर्देश पाकर आपने मणिकर्णिका ले जाने का आदेश दिया। वहीं प्रकृतस्थ भाव से आपने शरीर पात किया।

ऐसे कतिपय प्रेरक् प्रसंगों से भरा पड़ा है डॉ. झा का जीवन। इस विद्वान् का जीवन आकाश और रत्नाकार से उपमा देने योग्य है। अपनी क्षमता के अनुरूप हम इस ज्ञान गंगा से वेशकीमती विद्यारत्न प्राप्त कर सकते हैं।

आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी और डा. झा

आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी बाला प्रसंग भी कम प्रेरणा दायक नहीं। दोनों विद्वान् समसामयिक और अत्यन्त आदरणीय थे। निबन्ध.या प्रबंध लेखन, साहित्य का एक प्रमुख अंग माना जाता है। आख्यायिकाओं और उपन्यासों के इस युग में भी विचारों को व्यक्त करने की सर्वाधिक स्पष्ट शैली निबन्ध ही है। इस विद्या के उन्नायकों में सुविख्यात हिन्दी सेवी पंडित महावीर प्रसाद द्विवेदी का नाम सर्वोपरि अंकित किया जा सकता है। डा. गंगानाथ झा जी तथा द्विवेदीजी भारतीय जनमानस पर छा गये थे। परस्पर दोनों में अद्‌भुत श्रद्धा थी। 'सरस्वती' के संपादक द्विवेदी जी के प्रति डा. झा अत्यन्त आदरणीय भाव रखते थे। दूसरी ओर अल्पायु में ही काव्य प्रकाश का अनुवाद करनेवाले संस्कृत साहित्य के स्वनामधन्य पंडित डा. गंगानाथ झा को द्विवेदीजी साक्षात् सरस्वती-पुत्र के रूप में पूजते थे। निबन्ध लेखन में डॉ. झा की भी रुचि थी। इस प्रसंग में डॉ. झा आचार्य द्विवेदी का सादर उल्लेख करते थे। आचार्य ने अपने कई छात्रों तथा मित्रों को उनकी समस्याओं के प्रसंग में डा. झा के निकट भेजा था। इन्हीं आदरणीय नक्षत्रों का जब साक्षात्कार हुआ तो अभूतपूर्व घटना घटी।

आचार्य द्विवेदी ने 'सरस्वती' पत्रिका तथा अपने विशाल साहित्य के माध्यम से अपूर्व प्रतिष्ठा अर्जित की थी। प्रयाग के साहित्य प्रेमियों ने उनके सम्मान में 'द्विवेदी-मेला' का आयोजन किया था। प्रयाग में साहित्यिक आयोजन हो और डॉ. गंगानाथ झा उसमें आमंत्रित न रहें, ऐसा संभव नहीं था। किन्तु यह आचार्यं श्री का स्पष्ट निर्देश था कि आदरणीय डा. झा को उक्त अवसर पर सादर आमंत्रित किया जाय।

व्यवस्थापकों ने प्रमुख साहित्य-सेवियों के साथ पुनः डॉ. झा से सम्पर्क कर सादर आमंत्रित किया और द्विवेदी जी के अनुरोधपूर्ण निर्देश से अवगत कराया।

डॉ. झा जब मेले में पहुँचे तो द्विवेदी जी उन्हें देखते ही उनके चरण स्पर्श को झुके। अरे यह आप क्या कर रहे हैं ? कहते हुए अकचकाकर डा. झा पीछे हट गए और विनम्र भाव से कहा- 'आचार्य जी आपको में गुरुवत् समझता हूँ।' प्रत्युत्तर में द्विवेदी जी बोले- यह आप क्या कह रहे हैं मैंने तो प्रारंभ से ही आपको गुरु के रूप में स्मरण किया है। कृपया इस प्राप्य को मुझसे न छीने।'

सजल नयन दोनों उद्‌भट आचार्यों ने एक-दूसरे का भाव-प्रणाम स्वीकार किया। उसी मेले में आचार्य द्विवेदी जी के सम्मान में बोलते हुए डा. झा ने कहा- 'एक बार आचार्य ने मुझे एक निबन्ध के लिए आमंत्रित किया। बड़ी कठिनाई से समय बचाकर मैंने वह निबन्ध लिखा और निर्देशानुसार द्विवेदीजी को प्रेषित कर दिया। प्रायः एक माह के उपरान्त 'सरस्वती' में वह निबन्ध प्रकाशित हुआ। मैंने देखा कि आदि से अन्त तक निबन्ध संशोधित हैं। मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई और मैं आज भी यही कहूँगा कि द्विवेदीजी मेरे गुरु हैं। मैं इनके प्रति अत्यधिक आभारी हूँ कि उन संशोधनों के द्वारा इन्होंने मुझे हिन्दी लिखने की प्रेरणा दी।'[१]

सुमित्रा देवी सर झा की बहू हैं और स्वनामधन्य भारतीय प्रशासनिक सेवा के अधिकारी स्व. विभूति नाथ झा जी की धर्म पत्नी है। माँ की ममता इनमें आकर साकार हो उठी है। आपसे समय लेकर जब मैं गया तो आप मेरी प्रतीक्षा कर रही थी। बड़े पुत्र डा. दयानाथ झा द्वारा निर्मित नये भवन में आकर आप बिल्कुल सिमट गई हैं। आपने कहा कि- 'ओ हमर ससूरे टा नहिं छलाह। हमर पितो छलाह आ गुरुओ छलाह। जीवन में अनुशासनक महत्त्व हम हुनकहि सँ सिखने छी। ओहि महापुरुषक प्रसंग हमरा सन ज्ञानहीना सँ विशेष कहब की संभव होयत ?"[२]

सन से सफेद बालों और अत्यधिक प्रभावशालिनी ग्राम-देवी ने अपने बीते हुए दिनों में लौटकर जब संस्मरण के मुक्ता कण प्रसरित करना प्रारंभ किया तो मैं धन्य हो गया। आपकी शिक्षा घर पर ही हुई है किन्तु भाषा में इतनी शक्ति है कि घंटों किसी भी विषय पर आधिकारिक रूप से बोल सकती हैं। सर झा की बहू में जिन गुणों की अपेक्षा की जा सकती उन सबका मैंने आपमें प्रकर्ष रूप अनुभव किया। इनके ससुराल आने के कुछ ही वर्षों बाद आदरणीयाँ सास जी का देहावसान हो गया था। 'पूरा परिवार जेना बिलटि गेल छल। स्वयं सर झा क प्रयास सँ सब अपने-अपने कार्य में लागि शोक कैं बिसरबाक प्रयास

---

१ डा. झा की डायरी से.

२ (आप हमारे श्वसुर ही नहीं पितातुल्य भी थे। मैंने जो कुछ सीखा उसका श्रेय उन्हीं को है। जीवन में अनुशासन का महत्त्व उन्हीं से सीखा है। मैं ज्ञानहीना भला उस महापुरुष के प्रसंग में अधिक क्या कह सकूंगी ?'

केलक। परिवार पर दुनू गोटेक बड़ प्रभाव छलनि। हुनक समक्ष वा परिसर में सिगरेट पीबाक साहस क्यों नहि कए सकैत छलाह।[१]

गर्मी छुट्टी बिताने के लिए वे नियमित रूप से सरिसब आया करते थे। गंगा नदी के प्रति इतनी आस्था थी कि गंगाजल भी साथ आता था। चाय उन्हें अत्यधिक प्रिय थी। सरिसब पाही में चाय का प्रचलन मेरे परिवार से ही हुआ। विभूतिनाथ बाबू भी चाय के बड़े शौकीन थे। गाँव में भी सर झा प्रातः तीन बजे उठ जाया करते थे। गाँव में प्रायः बाहर बैठकर ही लिखा करते थे। सहस्र गायत्री और तर्पण का क्रम मृत्यु से एक सप्ताह पूर्व तक चलता रहा था। जब वे गाँव आते थे तो गाँव में नवजीवन आ जाता था। शाम को वे मोटर या तांगा से कमला बलान या लखनदेई के किनारे जाते थे। नित्य पण्डितों और नैयायिकों का आना होता था। हम महिलाओं के लिए यह समय अपने पाक-कला के प्रदर्शन के लिए सर्वोत्कृष्ट था। सर झा सुन्दर पकवानों के पुरस्कार भी देते थे। किन्तु मुझे स्मरण नहीं कि उन्होंने कभी किसी व्यंजन की अवहेलना की हो। अन्नपूर्णा का सदैव आदर करते थे। बच्चों की चुहलबाजियों से हमें क्रोध आ जाता था किन्तु आप सदैव हँसकर कहते- 'अब ये बच्चे यदि शरारत न करेंगे तो हम तो करने से रहे।'

काशी, इलाहाबाद, मसूरी तथा गाँव में अनेक विपन्न छात्रों के लिए आवास तथा भोजन की व्यवस्था थी। कोई हीन भावना न जगे इसलिए आप कहते थे- 'मैं मुफ्त किसी की मदद नहीं करता। आप को सुविधानुसार किसी भी समय में पोते-पोतियों का नियमित अध्यापन करना होगा। इसके लिए मैं पारिश्रमिक भी दूँगा।' छात्रों में इतना लोकप्रिय अब किसी को कहाँ देखती मैं।

गाँव में जब भी किसी ने सहायता की याचना की आपने किसी को निराश न किया। बच्चों के प्रति अतिरिक्त सदय थे वे। उनकी मान्यता थी कि बच्चों का स्वाभाविक विकास होना चाहिए। सदैव परिजनों को शिक्षा की ही प्रेरणा दिया करते थे। कहते थे- 'सरस्वती प्रसन्न हेतीह तँ लक्ष्मी दौड़ले औतीह आ जँ पहिने लक्ष्मी केँ प्रसन्न करब तँ सरस्वती तक जएबाक मार्ग स्वतः अवरुद्ध भए जायत।' किसी को हतोत्साहित करना वे हत्या की तरह समझते थे। 'मैंने एक स्वीटर बुनना आरंभ किया। मैं बुनती गयी और ऊन जुड़ते गए अन्ततः उस स्वीटर का आकार आजकल प्रचलित पञ्चू के आकार का हो गया। सर

---

१ (सासजी के देहावसान के उपरान्त जैसे पूरा परिवार अनाथ हो गया था। स्वयं सर झा के प्रयास से सभी अपना-अपना कार्य करने लगे और एक दूसरे को ढाढस देने लगे। पूरे परिवार पर दोनों प्राणियों का बड़ा प्रभाव था। उनके समक्ष या पूरे परिसर में सिगरेट पीने का साहस कोई नहीं कर सकते थे।)

झा इलाहाबाद से आये और मेरी ननद को हँसते देखकर जिज्ञासा की। सारा प्रकरण सुनकर स्वीटर ले लिया और बोले-'ऐसा ही स्वीटर मैंने एक फ्रांसीसी प्राध्यापक के पास देखा था। यह मुझे मिल जाता तो बड़ा उपयोगी होता।' मैं शर्म से गड़ी जा रही थी किन्तु पूरे अवकाश भर वे उसका उपयोग करते रहे।

शिवकोटी का मकान जो गंगा के ठीक किनारे था उन्हें विशेष प्रिय था। जब भी इच्छा होती तो दो चार दिनों के लिए सपरिवार शिवकोटी चले जाते थे। बनारस, शिवकोटी, मसूरी, इलाहाबाद के सभी मकान में स्थायी नौकर तथा छात्र रहते थे। मैंने कभी अपने ससुर को सोते हुए नहीं देखा। एक बजे रात में भी किसी कारणवश यदि लाइट जलाया जाता तो आप पूछते थे 'क्या बात है ?' मैंने उन्हें निरामिष भोजन लेते हुए भी कभी न देखा। व्यक्तिगत जीवन में वे अहिंसा के अनुयायी थे। कभी किसी पर हाथ उठाया हो या किसी को अपशब्द कहा हो मुझे स्मरण नहीं। मेरी सास अवश्य तीव्र स्वर में बोलती थीं किन्तु उनका हृदय अत्यन्त सरल था। मुझे मेरे पति ने बताया था कि सर झा को इस बात का बड़ा दुःख था कि मेरे किसी पुत्र ने संस्कृत को विषय के रूप में नहीं लिया। स्नातक में मेरे पति के अंक इतने सुन्दर थे कि जेठजी (डा. अमर नाथ झा) ने अंग्रेजी पढ़ने की सलाह दी। इसी आधार पर छोटे साहब (डा. आदित्य नाथ झा जी) से उन्हें ज्ञात हुआ कि आप भी अंग्रेजी पढ़ने की दिशा में हैं। सायंकाल जब सभी एकत्र हुए तो अत्यन्त बुझे स्वरों में सर झा ने कहा कि अब मेरी पुस्तकों को किसी पुस्तकालय में सजने का समय आ गया है। मुझे आशा थी कि पाँच पुत्रों में से कोई अवश्य मेरी अमानत को सुरक्षित रख सकेगा किन्तु इसका मुझे खेद नहीं। इसका छात्रों के द्वारा तो उपयोग होना ही चाहिए। मेरे पति ने तत्काल उठकर प्रतिवाद किया और कहा कि अंग्रेजी पढ़ने की सलाह अवश्य दी गई है। किन्तु संस्कृत पढ़ने का तो निर्णय लिया जा चुका है। सुनते ही सर झा गद्गद हो उठे थे। मेरे पति ने संस्कृत का अध्ययन किया और सर्वोच्च अंक की प्राप्ति की।

सुमित्रा देवी ने वर्तमान पीढ़ी के प्रसंग में कहा कि अब किसी में वैसी मेधा नहीं किन्तु मेरे बड़े पुत्र डा. दयानाथ झा में पितामह और पिता की छाया स्पष्ट देखी जा सकती है। ज्येष्ठ पुत्र ने मुझसे मात्र एक ईंट लेकर निज बल पर नये भवन का निर्माण किया है। इसमें सरस्वती के प्रति आस्था है। सुमित्रा देवी का परिवार काफी विशाल और सम्पन्न है। दुग्ध धवल परिधानों में आप गाँव की माता प्रतीत होती। भूतकाल के कुहासे से निकलकर आपने कहा-

सर झा ने आदेश दिया था कि उनके वंशज कभी बलि प्रदान न करें। इसके बदले यथेष्ट लड्डू[१] और माधुरी पुष्प चढ़ाने की व्यवस्था दी थी। एक बार उनके आदेश को अनदेखा कर किसी वाममार्गी के प्रभाव में आकर मेरे पति ने विन्ध्यवासिनी के दरबार में बलि दी थी। दो माह के अभ्यन्तर मेरा स्वस्थ शिशु चल बसा। मैंने इसे देवी के कोप से अधिक गुरुजनों की आज्ञा की अवहेलना का परिणाम मानकर स्वीकार किया। सर झा की मृत्यु के उपरान्त जब सम्पत्ति का विभाजन हुआ तो मेरे पति ने मेरी इच्छा के अनुरूप गाँव माँग लिया। गाँव से सर झा के बाद सर्वाधिक लगाव इन्हीं का था। इस भवन में भी स्वनिर्मित हिस्से में मैं कभी नहीं रही। पूज्य पिताश्री जहाँ रहते थे मैं वहीं रहती आई हूँ। अब तो सब कुछ बदल गया है। अध्ययन में मेरे पुत्रों को भी अत्यधिक रुचि नहीं है। विगत बाढ़ की विभीषिका में सारी सम्पदा विलीन हो गयी। घर के भीतर सात-आठ फुट जल प्रवाह में सब डूब गया। पुस्तकें क्या डूबी समझिये मैं ही डूब गयी।[२] अब तो मैं काल के चाप की प्रतीक्षा कर रही हूँ ।

सर झा की पुत्रियों में सीता देवी तथा शैवालिनी देवी (शेवी दाई) जीवित हैं। अपने भाई का स्मरण कराने से बूढ़ी आंखों में उत्साह का ज्वार उमड़ आता है। महादेवी वर्मा, सरोजिनी नायडू, विजयालक्ष्मी पंडित के साथ रह चुकी डा. झा की पुत्रियों में अपूर्व तेज और मेधाजन्य उत्साह है। सर झा के अनुशासित जीवन, माता के कठोर अनुशासन, भाइयों की विद्वत्ता, अनुजों का स्नेह, गंगाजल के प्रति अतिरिक्त श्रद्धा आदि का विस्तार से उल्लेख करते हुए आपने कहा-

'ओ तँ सरस्वती क पुत्र छलाह। अर्थक लेल कहियो प्रयास नहिं केलनि। संतोषी तँ तेहन छलाह जे परसनों मँगबा में संकोच करथि। हम सब भाइ-बहिन हुनक विशेष ध्यान रखैत छलियनि आ हमरा लोकनिक लेल तँ ओ मात्र पिता नहि देवता छलाह।'[३]

सभी बेटियों में जगद्धात्री देवी का वहाँ सर्वाधिक वर्चस्व था। आप निःसन्तान थी और घर चलाने के लिए सभी आवश्यक गुणों को जानती थी। नौकरों पर भी उनके आदेश का विशेष प्रभाव पड़ता था। लोग पढ़ें इसके लिए

---

१ सरिसब ग्राम का प्रसिद्ध मिष्टान्न.

२ १९८७ में यह परिसर बाढ़ की विभिषिका झेल चुका है।

३ (वे तो सरस्वती के पुत्र थे। अर्थ के लिए कभी प्रयास नहीं किया। ऐसे संतोषी कि कभी दुबारा कोई खाद्य पदार्थ नहीं माँगा। हम सभी भाई-बहन उनका विशेष ध्यान रखते थे। हमलोगों के लिए वे मात्र पिता नहीं देवता भी थे।)

कोई संभव प्रयास वे छोड़ते नहीं थे। किसी को दिये गये समय का वे कठोरता से पालन करते थे। किन्तु भाइजी (डा. अमरनाथ झा) जैसी कठोरता उनमें नहीं थी। बनारस से एक छात्र मिलने आया। भाइजी ने ठीक ग्यारह बजे आने के लिए कहा।

छात्र ने इसे अतिरिक्त गंभीरतापूर्वक नहीं लिया। ग्यारह बजकर दस मिनट पर वह कार्यालय पहुँचा। भेंट न हुई। लगभग एक सप्ताह तक वह नित्य कार्यालय जाता और शाम होने पर लौट आता। नौवें दिन वह ठीक ग्यारह बजे पहुँच गया और तब डा. अमरनाथ झा जी से वह मिल सका।

दोनों बहनों की सन्ततियाँ परम्परानुरूप विद्या के प्रति असीम अनुराग रखती हैं।

सर झा के कनिष्ठ पुत्र स्व. आदित्यनाथ झा की पत्नी आद्या झा परम विदुषी और अध्यवसायिनी हैं। अनेक युगान्तरों को आत्मसात करने वाली इस मिथिला-पुत्री ने जीवन के प्रांगण में निराशा को फरकने तक न दिया। सर झा की साधना-भूमि इलाहाबाद में रह रही इस महीयसी महिला का व्यक्तित्व अत्यन्त प्रभावशाली है। 'पद्मश्री' से विभूषित आद्या झा में सीता, सावित्री, भारती और मैत्रेयी का मिला-जुला रूप है। सर झा को आप सम्पूर्ण मिथिलांचल के विद्वानों का आर्दश मानती हैं। प्राचीन मैथिल संस्कार तथा आधुनिक जीवन दर्शन का जैसा मणिकांचन मेल परमादरणीय सर झा में था वैसा न किसी में देखा है न ही देख सकूँगी।

'ओहन प्राचीन प्रथाक अनुगामी होइत तथा ओहि तरहें आचार-विचार रखैत अपन छोट पुत्र वधू के निज आज्ञासँ कान्वेन्ट (सेन्सलीलिया) पठओनाइ, जतय छौड़ा-छौड़ी संगहि पढ़ैं छल, तथा जूनियर कैम्ब्रिज में दाखिला दियओनाइ बहुते उदार विचारक विषय थिक। एगारह वर्षक पुत्रवधू के विवाहक एके मासक बाद कैम्ब्रिज में भरती करओनाइ हिनके कार्य छल'[१]

डॉ. आद्या झा अपने आप में एक अति विशिष्ट संस्था हैं। दिल्ली प्रवास में आपके द्वारा सम्पन्न रचनात्मक सेवाओं को विस्मृत नहीं किया जा सकता। आपकी मान्यता है कि 'हरदम शांत, गम्भीर आ प्रसन्न रहनिहार एहन

---

१ (प्राचीन प्रथा के अनुगामी होते हुए भी निज आज्ञा से अपनी पुत्रवधू को कान्वेन्ट शिक्षा के लिए सेन्सलीलिया भेजना जहाँ सहशिक्षा की व्यवस्था थी तथा जूनियर कैम्ब्रिज में दाखिल दिलवाना आपसे ही संभव था।

महापुरुषक एकोटा गुण जँ केयो अपनाओत तँ महान् भए जायत। हमरा सर झा के पुत्रवधू होएबाक स्पृहणीय गौरव प्राप्त अछि।'[१]

विद्वान् पिता के पुत्रों में भी सरस्वती का वैसा ही प्रवाह देखने को आता है। पाँच स्वनामधन्य पुत्रों में सर्वाधिक प्रख्यात नाम है डा. अमरनाथ झा। कुलपति पिता के कुलपति पुत्र ने कभी नीचे झुककर नहीं देखा। डा. हरिवंश राय बच्चन ने अपने 'बसेरे से दूर' का प्रारंभ 'भला हो डा. अमरनाथ झा जी का' लिखकर अपने आदरणीय आदर्श को विनयांजलि प्रदान की है। राष्ट्रकवि दिनकर की लेखनी के अन्तिम पृष्ठ इसी देदीप्यमान नक्षत्र को समर्पित है।[२] दिनकर जी के शब्दों में-

'मेरे साहित्यिक जीवन में जो स्थान श्री रामवृक्ष बेनीपुरी का है, पं. बनारसीदास जी चतुर्वेदी का है, डाक्टर काशी प्रसाद जायसवाल का है, वहीं स्थान मैं पं. अमरनाथ झा जी का मानता हूँ।'

पद्मविभूषण डा. झा का जन्म २५ फरवरी, १८९७ ई. में पैत्रिक गाँव सरिसब-पाही में हुआ। महामहोपाध्याय के इस दूसरे पुत्र में प्रारंभ से ही अद्वितीय प्रतिभा का वास था। आपकी सम्पूर्ण शिक्षा इलाहाबाद में हुई। इलाहाबाद विश्वविद्यालय से वर्ष १९१९ में आपने अंग्रेजी में स्नातकोत्तर की उपाधि प्राप्त की। डा. झा सदैव प्रथम स्थान पाते रहे। संस्कृत, अंग्रेजी, हिन्दी, मैथिली, उर्दू, बंगला आदि भाषाओं पर इनका समान अधिकार था।

सत्य है कि यशस्वी पुरुषों को मृत्यु का भय नहीं व्यापता-

नास्ति येषां यशःकाये जरामरणजं भयम्।

पलिवार महिसी मूल के इस नक्षत्र को अपने प्रकाश की तीव्रता का आभास था। ऐसा मेधावी पुत्र पाकर सरिसब की धरती धन्य हुई। इलाहाबाद विश्वविद्यालय ने डा. झा को जो दिया डा. झा ने उससे कहीं अधिक इलाहाबाद विश्वविद्यालय को लौटा दिया। इसी विश्वविद्यालय में पुस्तकाध्यक्ष, संकाया-ध्यक्ष, कुलसचिव और विश्वविद्यालय अंग्रेजी विभागाध्यक्ष के पद को सुशोभित करनेवाले डा. झा कालान्तर में कुलपति के पद पर आसीन हुए। कुलपति के

---

१ (हमेशा शांत, गम्भीर और प्रसन्न रहनेवाले उस महापुरुष का एक भी गुण कोई अपना ले तो निश्चय ही वह महान् हो जाएगा। मुझे सर झा की पुत्रवधू होने का गौरव प्राप्त है।)
(महीयसी आद्या झा का देहावसान हो गया है।)

२ अभिलेखादि में प्रमाण संकलित.

तीन कार्यकालों को पूरा करते हुए आप १९३८ से १९४७ तक इस पद पर आसीन रहे। विश्व के इतिहास में यह अपूर्व घटना है कि कुलपति पिता के पद से मुक्त होने पर पुत्र ने पद भार ग्रहण किया हो।

अंग्रेजी साहित्य के उद्भट विद्वान् प्रो. झा की रचना SHAKESPEAREAN COMEDIES अंग्रेजी की मौलिक आलोचनात्मक कृतियों में अप्रतिम है। हर्षनाथ ग्रन्थावली, शृंङ्गार भजनावली, विश्राधरा आदि इनकी अन्य मूल तथा संपादित कृतियाँ हैं। इनके गवेषणापरक निबन्धों की संख्या गिनने योग्य नहीं। ये निबन्ध दिये की भाँति निरन्तर प्रकाशमान रहकर अनुसन्धीत्सुओं का उत्साहवर्द्धन करते हैं। वर्ष १९४८ में डा. झा बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय के कुलपति नियुक्त हुए। मिथिला विश्वविद्यालय के निर्माण की योजना प्रथमतः डा. झा ने ही बनायी थी। १९४७ में गठित समिति के आप ही अध्यक्ष थे और श्री हरिनाथ मिश्र इस समिति के सचिव बनाए गए थे। इलाहाबाद के छात्र-समुदायों तथा नगरजनों में डा. झा और सर झा का अत्यधिक सम्मान भाव था। आपकी इच्छा को सभी आज्ञा मानते थे। उत्तरप्रदेश प्रशासनिक सेवा के एक वरीय सदस्य एस.एन. शास्त्री ने प्रसंगवश कहा था कि 'आपको पद से नहीं, आपसे पद की शोभा थी।'

इलाहाबाद की वर्त्तमान पीढ़ियों में भी मैंने इन मनीषियों के प्रति अपूर्व सम्मान भाव अनुभव किया। विद्वानों का अवसान नहीं होता यह परम सत्य है। पिता की भाँति पुत्र में भी अनुशासन की पराकाष्ठा थी। सीता देवी के अनुसार अमरनाथ बाबू में माता और पिता का मिश्रित अनुशासन था। अमरनाथ बाबू को अनुज डा. आदित्यनाथ झा जी के प्रति अतिरिक्त स्नेह था। स्व. विभूतिनाथ बाबू ने मुक्त कण्ठ से स्वीकारा था कि भाइयों में सर्वाधिक प्रतिभा सम्पन्न है हमारा आदित्यनाथ। अमरनाथ बाबू आभिजात्य संस्कृति के अग्रदूत थे। आपके मित्रों में आपका बड़ा सम्मान था। पत्नी के निधन के पश्चात् आपने दूसरी शादी नहीं की। अग्रज कैप्टन भवनाथ झा की तरह आप भी संतान सुख से वंचित रहे किन्तु लड़कों को वे पुत्रवत् मानते थे। उन्होंने अपने असंख्य छात्रों में ही अपने को बाँट लिया। उनका सर्वस्व छात्रों के लिए ही था। अमरनाथ झा जी वर्ष १९४७ से १९४८ तक उत्तर प्रदेश लोक-सेवा-आयोग के अध्यक्ष तथा १९५३ से वर्ष १९५५ तक बिहार लोक-सेवा-आयोग के अध्यक्ष रहे। डा. झा भारतीय रक्षा अकादमी, देहरादून के पुनर्गठन से भी जुड़े रहे। एक प्रामाणिक अभिलेखानुसार-

'His association with Allahabad University was wide and varied. He was librarian, Registrar, Dean of the Faculty of Arts, Head of the English Department and ultimately the Vice-Chancellor of the University

which post he held for three consecutive terms from 1938 through 1947. It was probably the first instance that a son took over the charge of the office of Vice-Chancellor from the father. Dr. Jha was also the Chairman, U.P. Public Service Commission from 1947 to 1948; he was appointed the Vice-Chancellor of Banaras Hindu University in 1948 and later he was Chairman, Bihar Public Service Commission from 1953 to 1955. He was also associated with the reorganization of the Indian Defence Academy at Dehra Dun. Dr. Jha was President of All Indian Education Conference in 1941; Chairman Inter University Board of India and Ceylon; Representative of India at the first Conference of UNESCO; was President of Hindi Sahitya Sammelan, Prayag; Kashi Nagri Pracharini Sabha; President, Anjuman-e-Rooh-Ullah; President Indian Association of Adult Education, besides being the President and member of many other institutions and associations of India.[1]

सर झा के परिजन स्व. दयानाथ झा जी, सह-शिक्षक लक्ष्मीश्वर अकादमी सरिसब-पाही प्रथम दृष्टि में ही किसी विशाल तथा सुदृढ़ परम्परा के अग्रदूत दिखाई देते थे। सम्बन्ध में डा. झा के नाती लगने वाले दयानाथ झा जी सुविख्यात साहित्य सेवी थे। इनका विश्वास कर्म पर था। सामाजिक विकृति को दूर करने के लिए आपने मानो मंत्र ले लिया था। प्रातःकालीन भ्रमण के क्रम में आपने बताया था कि-

'पहले उन्हें प्रणाम कर लेने दो भाई। उनके प्रसंग में कुछ कहना बड़बोलापन ही होगा किन्तु तुमने पूछा तो भला चुप भी कैसे रहूँ। वे जब गाँव आते थे। तो सभी बच्चे उनसे मिलने जाया करते थे। उस समय बच्चों में पारिवारिक पार्थक्य बोध नहीं था। सर झा हमें पास बिठाकर नींबू के फाड़े के आकार का एक मिष्टान्न विशेष दिया करते थे। गाँव में आते तो शीतलपाटी[२]

---

१ Padma Vibhushan Dr. Amar Nath Jha- Dr. Amar Nath Jha Memorial Foundation, L.N.M.U. DARBHANGA.

२ मिथिला में प्रचलित चटाई विशेष।

पर बैठकर घंटों हम बच्चों से बातें करते थे। छोटे-छोटे हास्य प्रसंग हममें गुदगुदी भी जगाते और हमारा मानस पोषण भी करते। धीरे-धीरे हम बाल गुप्तचरों से वे गाँव की हर छोटी-बड़ी घटनाओं की जानकारी प्राप्त कर लेते थे। अपने पूर्वजों की भूमि के प्रति डा. झा का आदर भाव शुरू से ही रहा। गंगाश्रम भवन का कोना-कोना उस मनीषी के संस्पर्श को पाकर तीर्थ बन गया है। सरिसब-पाही के मध्य में अवस्थित गंगाश्रम हरे-भरे दुर्लभ वृक्षों से आच्छादित है। डा. झा स्वयं वृक्षारोपण करते थे। और अपने पुत्रों सहित परिजनों को इस पुनीत कार्य के प्रति उत्साहित किया करते थे। हम पर वनस्पतियों का, आकाश का, धरती का, अग्नि का, और वायु का जो ऋण हैं, वृक्षारोपण से उससे सहज ही मुक्ति मिल जाती है। सर झा के पौत्र ने बताया- 'बाबा हमें इस कार्य में अभिरुचि जगाने के लिए अनेक कथाएँ कहा करते थे। पद्मपुराण पर आधारित कोलाहल दैत्य की कथा आज भी मुझे स्मरण है। परिवार के सभी बच्चे बाबा के निकट शीतलपाटी पर बैठे हुए थे। अपना प्रिय पेय चाय (जो उस समय इस गाँव के लिए अजीव पेय था) पीकर उन्होंने कहा-

पिप्पलाद तीर्थ से कुछ दूर साभ्रमती नदी के किनारे सम्पूर्ण आधि-व्याधियों को मिटानेवाले पिचुमन्दार्क (मन्दार्कतीर्थ) है। प्राचीनकाल में वहाँ एक प्रचण्ड शक्तिशाली और विशालकाय कोलाहल नामक दैत्य रहा करता था। वह अत्यन्त घमण्डी और प्राकृतिक शान्ति का अवरोधक था। देवताओं को पराजित करने के उद्देश्य से वह इधर-उधर घूमा करता था। उसे अनेक सिद्धियाँ और वरदान प्राप्त थे। वह निर्भय विचरण करता और देवताओं को अपने हुंकार से भयभीत किया करता था। अन्ततः उसके साथ देवताओं का युद्ध छिड़ गया। उस कोलाहल के भीषण प्रहारों से घबराकर अपने-अपने प्राण बचाने के उद्देश्य से देवतागण सूक्ष्म रूप धारण कर वृक्षों पर जा छिपे। जब तक महाविष्णु ने उस परम शक्तिशाली दुष्ट कोलाहल नामक दैत्य का वध नहीं किया जब तक शंकर विल्व वृक्ष पर, विष्णु पीपल वृक्ष पर, इन्द्र शिरीष वृक्ष पर और सूर्य निम्ब वृक्ष पर छिपे रहे। उस समय जिन-जिन वृक्षों पर देवता विशेष का वास था वे वृक्ष उन्हीं के नाम से सुविख्यात हुए। यही कारण है कि ये वृक्ष 'देवाह' माने जाते हैं। ऐसे वृक्षों को देववृक्ष कहते हैं जिन्हें काटना निषिद्ध माना गया है। जिस स्थान पर सूर्य ने निम्ब वृक्ष का निवास किया था वह निम्बार्क तीर्थ कहलाता है। सभी वृक्ष आदरणीय हैं और प्रत्येक जन का पुनीत कर्त्तव्य है कि वह धरती पर वनस्पतियों की रक्षा करे और उनकी संख्या में अभिवृद्धि करे।

डा. झा के शिष्य और इलाहाबाद विश्वविद्यालय के छात्र रह चुके डा. श्याम कान्त ठाकुर से जब मैं मिला तो लकवा से पीड़ित होते हुए भी आपने मुझे सादर बैठाया। सुभ्यस्त होने के उपरान्त रुक-रुक कर संयमित वाणी में आपने कहा — मैं तो उन्हें देवता मानता हूँ। भटके हुए छात्रों को पुनः मार्ग पर

लाने का जैसा मन्त्र उनके पास था यदि आज के अध्यापकों को वह ज्ञात हो जाय तो कोई समस्या ही न रहे। गुरुदेव के यहाँ अद्भुत अनुशासन का साम्राज्य था। बिना सोचे-विचारे बोलना तो अपराध था। मेरे एक मित्र ने अपने एक निबन्ध दिखाने के क्रम में आत्म प्रशंसा के कुछ शब्द कह दिये। संयोग से डा. अमरनाथ बाबू उसी समय अध्ययन-कक्ष में जा रहे थे। सर झा ने एक पल लेखक के चेहरे पर दृष्टि स्थिर कर दी। मेरा मित्र इस दृष्टि को तत्काल समझ गया और धृष्टता के लिए क्षमायाचना करने लगा। गायत्री महात्म्य का बोध मैंने गुरुदेव से ही ग्रहण किया। आप कहते थे-

'गायत्री परब्रह्मस्वरूपा है। निर्वाण परमपद देनेवाली है। ब्रह्म तेजमयी शक्ति है और परब्रह्म ही उसका अधिष्ठाता है। रुद्रगायत्री के अनुसार-

गायत्री सा महेशानी परब्रह्मात्मिका मता।

वास्तव में यह गायत्री ही देवाधिदेव शंकर की शक्ति और परब्रह्म-स्वरूपा है। सर झा गायत्री को परादेवता और चित्स्वरूपा साक्षात् ब्रह्म मानते थे। विभिन्न शास्त्रों पर उनका जैसा अधिकार था वैसा न किसी में देखा है और न अब देख सकूँगा।

महामहोपाध्याय पं. जयदेव मिश्र के शिष्यों में डा. झा को सर्वाधिक ख्याति मिली। पं. मिश्र ने उत्तम शिष्य को पाकर अपना सर्वस्व समर्पित कर दिया। मैथिल परम्परा में गुण की सार्थकता उसे सत्पात्रों में वितरित करने में ही मानी जाती रही है। काशी की पांडित्य परम्परा में पं. जयदेव मिश्र, पं. मार्कण्डेय मिश्र, पं. बालकृष्ण मिश्र तथा डा. सर झा को सादर स्मरण किया गया है। उदात्त व्यक्तित्व को निज सम्मान की स्पृहा नहीं होती। पं. जयदेव मिश्र अपने शिष्यों से कहा करते थे कि — आप सभी देखना एक दिन मेरा यह शिष्य (गंगानाथ झा) भारतीय संस्कृत साहित्य का नक्षत्र प्रमाणित होगा। गुरु का यह आशीर्वाद पूर्णतया फलित हुआ। गुरु से बढ़कर चेले की गरिमा इस देश के लिए गौरव का विषय है। यहाँ बापू (महात्मा गाँधी) का शिष्य बाबा (विनोबा भावे) बन जाता है। किन्तु इसका यह अर्थ नहीं कि विनोबा गाँधी से महान थे अथवा गाँधी विनोवा से हीन थे। ये दोनों गुरु शिष्य तो एक-दूसरे के पूरक थे। वास्तव में गाँधीजी ने अपनी इच्छाओं को विनोवा में प्रतिरोपित किया और गाँधी से प्राप्त इसी अदम्य इच्छा शक्ति तथा अहिंसा-बल के कारण विनोबा बाबा बने।

ऐसी ही घटना महामहोपाध्याय पं. जयदेव मिश्र और उनके प्रिय शिष्य डा. झा के साथ भी हुई। शिष्य के शिष्य उनके अपने पुत्रों ने भी उन सभी सोपानों को छूने का प्रयास किया जिन्हें सर झा स्पर्शित कर चुके थे और सफल भी हुए। कुलपति पिता की सेवा मुक्ति के बाद पुत्र, कुलपति पद पर आसीन हुआ हो विश्व इतिहास में यह अप्रतिम घटना है। डा. सर झा के उपरान्त डा.

अमरनाथ झा जी इलाहाबाद विश्वविद्यालय के कुलपति पद पर आसीन हुए। कहते हैं म.म. उमेश मिश्र को इलाहाबाद विश्वविद्यालय में नियुक्त कर डा. सर झा ने प्रतीक रूप में गुरुदक्षिणा चुकाई थी। ये बातें तो अब इतिहास बन चुकी हैं। मिश्र जी के सभी पुत्रों ने मिथिला की महिमा को मंडित किया और आज भी सर झा के सरल तथा उदार स्वभाव की चर्चा करते नहीं अघाते। विश्वनाथ मन्दिर के अधिशासी रह चुके भा.प्र. सेवा के अधिकारी पं. रमाकान्त मिश्र पर डा. अमरनाथ झा और सर झा का स्पष्ट प्रभाव परिलक्षित होता है। चर्चा मात्र से वे भी उन मनीषियों को सादर प्रणाम किये बिना नहीं रहते।

सरिसब-पाही में सर झा के नाम पर एक वाचनालय है। मैथिल मुकुटमणि महामहोपाध्याय के सम्मानार्थ इसकी स्थापना १९५२ ई. में हुई थी। स्वयं महाराजाधिराज कामेश्वर सिंह ने इसका शिलान्यास किया था। इस पुस्तकालय का तीन कमरे का भवन और अपनी जमीन है। समुचित अनुदान न मिलने के कारण वाचनालय आज दुःस्थिति को प्राप्त कर चुका है। वाचनालय की अमूल्य पुस्तकें असुरक्षित हो गयी हैं। स्वयं डा. झा के हस्तलेख, उनकी डायरी, प्राचीन पत्रिकाओं के असंख्य जिल्द, हिन्दी, संस्कृत तथा अंग्रेजी साहित्य की अमूल्य पुस्तकें स्थानाभाव के कारण एक पर एक पड़ी हुई हैं। इनके रख-रखाव की समुचित व्यवस्था नहीं है। इस सम्बन्ध में पूछने पर इसके वर्त्तमान परिचालक समाजसेवी श्री तारानाथ झा जी ने कहा— 'आब पहिलुका बात नहिं रहल। वाचनालय आबऽबलाक संख्या नगण्य भए गेल अछि। बाढ़ि सेहो बड़ प्रभावित केलकैक संग-संग बरसात में ओहुना छत टपकए लगैत छैक। सरकारी अनुदान आब एकदमें नहिं भेटैछ। तखन तँ ई वाचनालय अछिये तेहन महान् आत्माक नाम पर जे एखनहुँ सुरक्षित अछि।'[१]

तारा बाबू सर झा के परिजन हैं और वाचनालय की दुःस्थिति का दर्द आपकी आँखों से झाँक जाता। यहाँ दिन में स्थानीय मेधावी छात्रों के सहयोग से सातवीं कक्षा तक अध्यापन की व्यवस्था है। अभी भी इसके केन्द्रीय कक्ष में तीस सहस्र पुस्तकें सुरक्षित हैं। चार सहस्र से अधिक पुस्तकों पर मूल लेखक, डा. सर झा, डा. आदित्यानाथ झा अथवा डा. अमरनाथ झा जी के हस्ताक्षर सुरक्षित हैं। इसके अतिरिक्त डा. सर झा तथा अमरनाथ झा जी को सम्बोधित कई पत्र

---

१ 'अब पहले की बात नहीं रही। वाचनालय आनेवाले विद्याप्रेमियों की संख्या नगण्य हो गई है। बाढ़ के कारण भी सम्पूर्ण भवन क्षतिग्रस्त हो गया है। बरसात में छत टपकने से भयंकर तबाही होती है। सरकारी अनुदान अब एकदम बन्द है। उसी पुण्यात्मा के नाम के प्रताप से यह अभी तक सुरक्षित है।'

सुरक्षित हैं जो महादेवी वर्मा, हरिवंशराय बच्चन, बाबूराम सक्सेना, पं. बालकृष्ण मिश्र, सरोजिनी नायडू, विजयालक्ष्मी पंडित आदि के द्वारा लिखे गए हैं।

The guiding spirit of my life

महापुरुषों की मित्रता भी विलक्षण होती है। भोजन और पुस्तक के प्रेमी, सहस्र गायत्री जाप करने वाले गंगानाथ बाबू को जब काशी के क्वींस कालेज जाकर पढ़ने का सुयोग मिला तो अतिरिक्त उत्साह के साथ दुश्चिन्ताओं का भी अभाव नहीं रहा। नये परिवेश का भय स्वाभाविक ही था। महाराज दरभंगा जो स्वयं क्वींस कालेज के छात्र रह चुके थे, ने जब वहाँ की भव्यता और स्तरीयता का वर्णन किया तो इस परिवेशजन्य भय में और भी वृद्धि हुई किन्तु बलशाली और मेधा-सम्पन्न गंगानाथ ने स्वयं से कहा- 'जब शिव की नगरी जाना है फिर भय कैसा ? फिर वहाँ अनेक प्रतिभाशाली छात्र होंगे जिन्हें मैं अपना मित्र बना सकूँगा।' किन्तु काशी पहुँचने पर पता चला कि कुछ प्रतिभाशाली छात्र तो नये छात्रों से बात तक नहीं करते। मित्र की तलाश के क्रम में इन्हें द्वितीय वर्ष के प्रतिभाशाली छात्र गोविन्ददास से भेंट हुई। उन्हें देखते ही खोज को पूर्ण विराम दे दिया गया। सर झा स्वयं लिखते हैं- 'प्रथम साक्षात्कार में ही ऐसा लगा कि किसी जीवन भर मित्रता का निर्वाह करनेवाले अभिन्न मित्र से मिल रहा हूँ। गोविन्ददास जी मेरे अग्रज विन्ध्यनाथबाबू को अच्छी तरह जानते थे। मैत्री का वह बंधन जीवन पर्यन्त शिथिल न हुआ। हमारी मित्रता प्रगाढ़ से प्रगाढ़तर होती रही।' गोविन्ददास और उनके अनुज भगवान दास, जो बाद में सुविख्यात डा. भगवानदास बने, का डा. झा के प्रति अद्भुत स्नेह था।

सर झा ने जहाँ अपने संस्मरण में अपने इस मित्र के लिए 'The guiding spirit of my life' लिखा है वहीं अपनी प्रसिद्ध पुस्तक को गोविन्ददास जी सर झा को समर्पित करते हुए लिखते हैं-

'More than my brothers are to me.'

जीवन भर यह मित्रता मलिन न हुई। 'दुर्गाकुण्ड' में गोविन्ददास जी का अपना मकान था। काशी प्रवास का अधिक समय अब दुर्गाकुण्ड में ही बीतने लगा। यहीं पर पं.हरिनाथ जी से भी परिचय हुआ। दुर्गाकुण्ड में पं. हरिशास्त्री और हरिनाथ जी नियमित आते थे। सांस्कृतिक चर्चा के क्रम में मेघदूत और संस्कृत श्लोकों का सस्वर पाठ अत्यन्त मनोरंजक होता था। व्यक्तिगत जीवन की एक घटना से प्रभावित होकर हरिनाथ जी सन्यासी हो गए। एक दिन इनके हरिनाथ स्वरूप का तिरोभाव हुआ और स्वामी मनीषानन्द तीर्थ नाम से नये व्यक्ति का आविर्भाव हुआ। इन्हीं मनीषानन्द तीर्थ से सर झा ने

'छान्दोग्योपनिषद्' का एक अत्यन्त क्लिष्ट अंश पढ़ा था। परम्परागत शिक्षण में आप अद्वितीय थे।

मित्र गोविन्ददास जी की प्रेरणा से ही सर झा 'थियोसॉफिकल सोसाइटी' के सम्पर्क में आए। यहीं पर कर्नल ऑलकाट तथा श्रीमती एनी बेसेन्ट से भेंट हुई। मित्र गोविन्ददास और थियोसॉफिकल सोसाइटी को सर झा कभी नहीं भूले।

एक बार ग्रीष्मावकाश बिताने के लिए हरिद्वार जाने का निर्णय हुआ। दोनों मित्र हरिद्वार पहुँचे। गंगा किनारे बैठकर गंभीर सांस्कृतिक चर्चा में निमग्न हुए तो लगातार बीस घंटे तक वहीं बैठे रहे। अपने-अपने संस्मरणों में दोनों मित्रों ने इस घटना का मार्मिक वर्णन किया है। सर झा लिखते हैं- 'उस रात हमलोगों ने बहुत कुछ सीखा।'

हँसी में दोनों मित्र एक दूसरे को व्यास और गणेश कहा करते थे। अपनी एक 'हिन्दू धर्म विषयक' पुस्तक गोविन्ददास जी ने हरिद्वार के गंगा तट पर बैठकर मित्र गंगानाथ झा जी से ही लिपिवद्ध कराया था। दुर्योग से इसका प्रकाशन गोविन्द दासजी के देहावसान के उपरान्त ही हुआ। सर झा लिखते हैं- "गोविन्ददासजी से प्राप्त सौहार्द्र मेरे जीवन के लिए सर्वाधिक महत्वपूर्ण और आनन्ददायी संस्मरण है। आज भी उस दिव्य मैत्री भाव से मैं मुक्त नहीं हुआ हूँ, और न होना ही चाहूँगा।"

काशी महात्म्य के अनुसार ऋषि व्यास ने काशी को शापित करते हुए कहा कि यहाँ उत्पन्न हुई मित्रता तीन पीढ़ियों तक भी नहीं टिक सकेगी। किन्तु गंगाबाबू और गोविन्दबाबू की अपूर्व मित्रता के प्रसंग में यह शाप भी फलित नहीं हुआ। गोविन्ददासजी के पिता बाबू माधोदास, गोविन्ददास, उनके पुत्र और पौत्रों का इस परिवार के प्रति स्नेह भाव और मैत्री भाव अभी तक कायम है। चार पीढ़ियों तक इसका निर्वाह हो चुका है और पीढ़ियों तक इसकी अक्षुण्णता असंदिग्ध है।

'अश्रुकण' के कृतिकार मनमोहन झा प्रथमतः सर झा को भाव-प्रणाम करते हैं और प्रकृतिस्थ होकर उनकी प्रतिभा सम्पन्नता तथा सामाजिक छवि की चर्चा के लिए प्रस्तुत होते हैं। श्री झा वयोवृद्ध साहित्य सेवी हैं। मैथिली साहित्य में इन्हें वही सम्मान प्राप्त है जिसके अधिकारी बंगला साहित्य में शरतच्चन्द्र तथा हिन्दी में जयशंकर प्रसाद हैं। श्री झा पर सर झा का अमिट प्रभाव अंकित है। 'नर रत्न थे वे और उनकी पत्नी साक्षात् त्रिपुर सुन्दरी थीं। डा. झा जैसे पति और डा. अमरनाथ झा सहित पाँच-पाँच पुत्रों की माता बनना किसी तपस्विनी के कठोर तप का ही सुपरिणाम हो सकता है। इनकी पत्नी का जब निधन हुआ तो स्वयं मालवीय जी डा. झा के निकट आकर संवेदना प्रकट कर गए थे। आपने विलखते डा. झा से कहा- पंडित जी आप मीमांसक हैं, नैयायिक हैं, दार्शनिक

हैं, वेदाध्यायी हैं। आप जैसे ज्ञानी पंडित को शोक कैसे छू सकता है ? मैं तो ऐसी विकट परिस्थितियों में आपसे सान्त्वना की अपेक्षा करता हूँ।' सर झा ने संयमित स्वर में कहा कि आपका कहना सत्य है। अपनी पत्नी के लिए मैं नहीं भी रोता किन्तु महामना ! उस रत्नगर्भा माँ के अवसान पर अपने अश्रुकणों को मैं नहीं रोक सका।'

पत्नी की स्मृति में आपने मनीगाछी में धर्मशाला का निर्माण कराया तथा वहाँ समुचित व्यवस्था का निर्देश दिया। मनीगाछी स्टेशन तक जाकर इन्दुमती देवी को ठहरने में कष्ट का अनुभव हुआ था। कुलवधुओं को वह कष्ट न हो इसीलिए धर्मशाला बनवाने का निर्णय लिया गया।

सर झा अत्यन्त धार्मिक स्वभाव के थे। प्रयागराज को कर्म भूमि बनानेवाले गंगाबाबू ने शारदापुर, अपनी ससुराल में शारदा देवी का मन्दिर बनवाया।

महाराज माधव सिंह के जन्मस्थान पर श्वेत शिवलिंग की स्थापना में भी उनके अवदान को भूला नहीं जा सकता। सरिसब-पाही के मध्य में मुख्य सड़क से उत्तर दिशा में अवस्थित यह मन्दिर वास्तुकला का अपूर्व नमूना है। स्फटिक के शिवलिंग को देखने के बाद दृष्टि हटाने की इच्छा नहीं होती। शंकर भवन (वर्तमान में अयाची-शंकर-शोध-संस्थान) के लिए प्रथम आर्थिक सहयोग डा. झा ने ही किया था। अपने मौसेरे भाई पं. बलदेव झा को भी आपसे धार्मिक प्रेरणा मिलती थी। ग्रामीण शिक्षा के प्रति इनका विशेष ध्यान था। आपने दो विद्यालयों का शिलान्यास भी किया था। डा. अमरनाथ झा ने इस प्रसंग में अपने एक निबंध में लिखा है कि- 'अपने गाँव के प्रति उनका असीम अनुराग था।'

अन्तिम प्रमाण-पत्र

डा. झा के हाथ से अन्तिम प्रमाण-पत्र प्राप्त करने का सौभाग्य सुविख्यात कथाशिल्पी मनमोहन झा जी को ही है। सर झा के साथ मैथिल समाज में प्रचलित भोज में भी आप दो बार सम्मिलित हुए थे। संस्कृत पढ़नेवाले छात्रों का वे अत्यधिक सम्मान करते थे। मनमोहन बाबू ने पटना विश्वविद्यालय से संस्कृत के साथ स्नातक परीक्षा में उत्तीर्णता प्राप्त की थी। अपने प्रमाण-पत्र में सर झा ने लिखा था कि- 'आपने संस्कृत विषय को लेकर स्नातक उपाधि प्राप्त की है यह मेरे लिए आनन्द का विषय है। आप यदि संस्कृत में एम.ए. करें तो मुझे और भी खुशी होगी। मैं इनकी मंगलमय अभ्युन्नति की कामना करता हूँ।'[१]

---

१ मूलतः यह प्रमाण-पत्र अंग्रेजी में है।

दरभंगा गोशाला के लिए आयोजित समारोह में सम्मिलित होने के लिए डा. झा और पं. मदन मोहन मालवीय आये हुएथे। महाराज के समीप चार पाँच आसनों पर सम्मानित अतिथि बैठे हुए थे। तभी मालवीय जी का ध्यान श्रोताओं के मध्य आसनस्थ महामहोपाध्याय पं. बालकृष्ण मिश्र पर गया। मालवीयजी तुरंत उठ गये और कहा कि भला मैं कैसे बैठ सकता हूँ जबकि पंडितजी भूमि पर बैठे हुए हैं। पंडितजी से उनका तात्पर्य पं. बालकृष्ण मिश्र से था। बनारस में उनके शिष्यों की सुदीर्घ परम्परा थी। महाराज ने स्थिति की गंभीरता को समझकर तत्काल ही आसन की व्यवस्था का आदेश दिया और पंडित जी को बैठाकर ही मालवीय जी बैठे।

आभूषण और अश्रुकण

काशी उस समय पंडितों, महामहोपाध्यायों और विद्यावारिधियों से आपूरित था। अध्यवसायियों से शिवपुरी की गरिमा में अपूर्व अभिवृद्धि हुई थी। काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के लिए दरभंगा नरेश ने मालवीयजी को सर्वाधिक पाँच लाख मुद्रा प्रदान करने का अभिवचन दिया था। इस पुनीत कार्य में स्वयं सर झा जी सहायक थे। मालवीयजी के साथ आपका सम्बन्ध अत्यन्त स्नेहपूर्ण था। पं. मदन मोहन मालवीय कालजयी पुरुष थे। नट की भाँति आप कहीं भी विद्यानुरागियों को एकत्रित करने की अद्भुत क्षमता रखते थे। काशी में हिन्दू विश्वविद्यालय की चर्चा सर्वत्र फैली हुई थी। एक दिन दोपहर में चौक बनारस में जहाँ चतुर्दिक विशाल और भव्य-अट्टालिकाएँ हैं, आपने एक सभा का आयोजन किया। अपने ओजपूर्ण भाषण में बनारसवासियों का दिल जीत लिया मालवीय जी ने। अन्त में शिक्षा के लिए तन-मन-धन दान देने का आह्वान कर महामना ने अपना अंग वस्त्र फैला दिया। यह एक व्यंग्यपूर्ण संकेत था। विद्या प्रेमियों की कौन कहे अल्पशिक्षित नगरजनों ने भी इस महत् उद्देश्य की गंभीरता को समझ लिया। मालवीयजी के शिष्यों ने एक विशाल वस्त्र खण्ड फैलाया। काशी वासियों के लिए यह अभूतपूर्व घटना थी। याचकों में काशी के सभी दिग्गज पंडित जमा थे। अट्टालिकाओं पर रमणिओं का भी अभाव नहीं था। फिर मालवीयजी के करुण स्वर ने करुणामयी माताओं को अपने लाडलों की दुःस्थिति से अवगत करा दिया था। पहले तो नगरजनों ने, श्रेष्ठियों ने सिक्कों की वर्षा कर दी और फिर ऊपर अट्टालिकाओं से केयूर, मणिबन्ध, मणिमाला, मणिमेखला, सोने की चूड़ियाँ, बहुमूल्य हार झरने लगे। अश्रुकणों और आभूषणों से पूर्ण वस्त्र ने बतला दिया कि अब भारत को कोई दबा नहीं सकता। नैतिक अभ्युन्नति, बौद्धिक शक्ति और करुणा सबसे बड़ी मानवीय निधि है।

लक्ष्मीश्वर एकेडमी, सरिसब-पाही के प्रधानाचार्य रह चुके श्री अम्बिका नाथ मिश्र परिसर के प्रमुख विद्वान् हैं। आपने भी डा. सर झा की अध्ययन परम्परा को आत्मसात कर अपूर्व ख्याति अर्जित की। सेवा मुक्त होकर श्री मिश्र

स्वाध्याय में निमग्न रहते हैं। आप पं. केशीनाथ मिश्र के दौहित्र हैं। केशी बाबू सर झा के समसामयिक तथा अत्यन्त प्रिय व्यक्ति थे। आपके द्वारा प्रकाशित ग्रन्थ 'आर्या सप्तशती' की भूमिका स्वयं डा. सर झा ने लिखी है।

जिस प्रकार मलय पर्वत पर रहनेवाले छोटे-छोटे पेड़ भी चन्दन वन की वायु से संपोषित होकर अपना पृथक् परिचय रखते हैं ठीक उसी प्रकार इस परिसर के अध्यवसायियों में परम्परा की सुदृढ़ता को आज भी अनुभव किया जा सकता है। अम्बिका बाबू के पितृकुल में पं. अयाची मिश्र और म.म. शंकर मिश्र जैसे महापुरुष हो चुके हैं। शंकर मिश्र ने बाल्यावस्था में ही राजसभा में अपने पाण्डित्य का परिचय देते हुए कहा था-

बालोऽहं जगदानन्द न मे बाला सरस्वती।
अपूर्णे पञ्चमे वर्षे वर्णयामि जगत्त्रयम्॥

राज स्कूल का संस्मरण सुनाते हुए आपने कहा कि उस समय मैं उसी विद्यालय का छात्र था। उत्तरप्रदेश के एक विद्वान् को सुनने के लिए सभा का आयोजन था जिसमें स्वयं महाराज भी पधारे थे। डा. झा उस समय राज पुस्तकालय के अध्यक्ष थे। ठीक समय पर विशिष्ट अतिथियों तथा विद्वानों का आना शुरू हुआ। मंच पर विशिष्ट अतिथियों के लिए सम्मानित आसन की व्यवस्था थी। श्रोताओं तथा सामान्य नागरिकों के लिए दरी की व्यवस्था थी। वायसराय (सर मौरिस हैलेंट मुख्य अतिथि), आयोजक तथा स्वयं महाराज मंच पर आसीन हुए और सभा का आरंभ हुआ। तभी मंच पर बैठे विशिष्ट अतिथि ने कहा कि 'वे (संकेत कर) सज्जन जो वहाँ बैठे हुए हैं कौन हैं ? उन्हें तो मैं जानता हूँ।'

आदरणीय अतिथि को जैसे स्मरण हो आया और वे मंच से उठकर उस सज्जन की ओर चले। अकचकाये से उन्होंने पूछा पंडितजी उत्तर प्रदेश से कब आना हुआ ? आप यहाँ क्यों बैठे हैं ? आप कृपया ऊपर चलें नीचे बैठकर सुनने के लिए हम जैसों का अभाव नहीं। हाथ पकड़कर वे उन्हें मंच तक ले गये और आयोजक से पूछा कि आप इन्हें पहचानते हैं ? उत्तर प्रदेश की इस प्रतिभा का अपमान कर आपने अच्छा नहीं किया। बाद में यह जानकर कि डा. गंगानाथ झा इसी क्षेत्र के हैं। सज्जन को और भी खेद हुआ। मिट्टी ही यदि सोना न पहचाने तो और कुछ भी कहना व्यर्थ है। स्वयं महाराज इस भूल पर लज्जित हुए और मुख्य अतिथि के आसन पर डा. गंगानाथ झा जी को आसनस्थ किया गया। उस दिन उन्होंने जो भाषण दिया मिथिला के इतिहास में अब तक वह अप्रतिम है। मुख्य अतिथि की नम्रता और सर झा की विद्वत्ता से श्रोताओं ने अमूल्य प्रेरणा प्राप्त की और असंख्य वैचारिक रत्न लेकर घर लौट आए।

वयोवृद्ध स्वतंत्रता सेनानी पं. मतवीर मिश्र इस इलाके के प्रतिष्ठित नागरिक हैं। सर झा के वीर पुत्र कैप्टन भवनाथ झा के अनुयायी, अंग्रेजों से डँटकर लोहा लेने वाले नब्बे वर्षीय वीर सेनानी ने सैनिक मुद्रा में सर झा को विनयांजलि दी और भरे नयनों से सुनहले विगत के पृष्ठों में कुछ तलाशने लगे। उन्होंने कहा 'ओहि समय हम नेना रही। किन्तु हम देखने छी जे छोटो बच्चाक अएला पर सर झा ठाढ़ भए जाइत छलाह।'

ग्रामीण बटुकों के लिए यह अत्यन्त गौरव की बात थी। बच्चों से आपको असीम लगाव था। मिथिला में सहस्र गायत्री जाप करने वालों को 'सहस्रजापी' कहा जाता है। डा. झा अपने पूज्य पिता के समान सहस्रजापी थे। ग्रामीणों की मान्यता है कि माता गायत्री और माता तारा की कृपा से ही इस परिवार पर सरस्वती और लक्ष्मी की विशेष अनुकम्पा हुई। गंगाबाबू की दैनन्दिनी नियमित थी। वे बड़े विद्वान् थे यह कहना आवश्यक नहीं किन्तु मैं यह कहना आवश्यक समझता हूँ कि आप 'विद्या ददाति विनयम्' के साक्षात् प्रतिमूर्त्ति थे।

श्रीमान् दरभंगा नरेश जब इंगलैण्ड गये थे तो श्रोत्रिय समाज ने उनका खुलकर विरोध किया था। पूरा समाज स्वदेशी और विदेशी के खेमों में बँट गया था। उस समय लोगों की मान्यता थी कि म्लेच्छों के देश में जाकर लोग प्रायश्चित्त के भागी हो जाते हैं। कुलीन व्यक्ति तो दूर, पढ़े लिखे लोगों ने भी महाराज का विरोध किया। डा. झा का दृष्टिकोण सुधारवादी था। आप बनारस से दरभंगा आए और सभाओं का आयोजन कर महाराज के विचार का आदर करते हुए अपना व्याख्यान दिया। इस भाषण ने लोगों के उभरते आक्रोश को कम किया और स्थिति स्पष्ट होते ही लोगों ने महाराज की यात्रा को स्वीकार लिया।

इस सेनानी को डा. झा के श्राद्ध-कर्म में सम्मिलित होने का भी गौरव प्राप्त है। आप ग्रामीणों के साथ श्रद्धांजलि अर्पित करने प्रयाग गये थे। इलाहाबाद के निवासी अपने प्रिय विद्वान् 'पण्डित जी' के लिए रो उठे थे। 'एक विशिष्ट बात जो मैंने देखी वो ये कि वहाँ उपस्थित लोगों में विभिन्न समुदाय के तथा प्रायः सभी श्रेणी के लोग थे।' इससे डा. झा के सर्व-धर्म-समभाव का प्रमाण मिलता है। वैसा सम्मान, वैसी ख्याति अब असंभव है।

स्व. नरसिंह झा, झा- परिवार के कुल पुरोहित थे। इसी वर्ष सौ वर्ष की आयु में उनका अवसान हुआ है। मृत्यु पूर्व साक्षात्कार में आपने कहा था कि- 'भगवती तारा अहाँक कार्य कैँ सफल करथु। आब ओहि मनीषीक महत्त्व बुझनिहार लोको की भेटत ? अहा !की दिव्य स्वरूप छल हुनकर। सुन्दर तँ विभूती बाबू आ शांतिनाथ बाबू सेहो छलाह किन्तु ओ कांति ओ आभा आब

असंभवे बुझू।'[१] आपने कहा कि मैं भी तो उस समय छोटा ही था किन्तु मुझे स्मरण है वे जब भी गाँव आते तो स्वयं ग्राम-भ्रमण कर उसकी सूचना वे दे दिया करते थे। वृद्धों का, विद्वानों का, बीमारों का हाल-चाल जानने के साथ असहाय लोगों की सहायता करना भी वे अपना धर्म समझते थे। अनेक मन्दिर, पाठशाला उनकी उदार मनोवृत्ति के जीवन्त प्रमाण हैं। सविधि पूजा पाठ करनेवालों में आप अप्रतिम हैं। आपने सहस्र गायत्री का जाप, नियमित संध्यावन्दन और तर्पणादि का निश्चय किया था। गंगाजल के लिए आपके मन में बड़ी श्रद्धा थी। प्रयाग-प्रवास का प्रमुख कारण यही था। डा. झा की पत्नी के कठोर अनुशासन की चर्चा ज्योतिषाचार्य नरसिंह झा ने भी की। पारिवारिक ख्याति के मूल में आप उनके पिता को और उनके तांत्रिक भ्राता पं. गणनाथ झा को सादर स्मरण करते हैं। गायत्री जाप के द्वारा पिता ने और तांत्रिक अनुष्ठानों के द्वारा भाई गणनाथ झा जी ने पारिवारिक विद्या-वैभव जन्य समृद्धि का बीजारोपण किया। कुल पुरोहित ने नयनोन्मीलित स्वर में कहा-

तन्त्रवापी तन्त्रजीवा तन्त्रसाफल्यदायिनी।
तन्त्रसारा तन्त्रसिद्धा तन्त्रमन्त्रा च तन्त्रिणी॥
तन्त्र ऋद्धिकरी तन्त्री तन्त्रीवादनतत्परा।
तन्त्रवीरा तन्त्रधीरा तन्त्रचण्डेश्वरी च तम्॥
तन्त्रमुद्रातन्त्रगोष्ठी तन्त्ररूपा च त्रःकरा।
त्रः स्वाहा तन्त्ररूपी च नाम साहस्रमुत्तमम्॥
सारूप्यनामसाहस्रं तारादेव्या पुरोहितम्।
कोटिसिद्धीश्वराख्यं च सर्वसारोत्तमोत्तमम्॥[२]

विद्यावाचस्पति स्व. पं. कविशेखर झा जी ने सरिसब-महिमा शीर्षक कविता में दोनों दिव्य नक्षत्रों को सादर स्मरण किया है-

गङ्गानाथ अमरनाथक जत शोभित यश हिमधाम।
मार्कण्डेय बालकृष्णादिक विद्या वैभव धाम॥

अपने छात्रों से कविशेखर जी गंगाबाबू के अनुशासित स्वभाव और नियमित दिनचर्या की चर्चा अवश्य करते थे। स्थानीय साहित्यिक संगोष्ठियों

---

१ भगवती तारा आपको सिद्ध काम करें। अब उस मनीषी के महत्व को समझने वाले लोग भी कहाँ मिलेंगे ? अहा! क्या दिव्य स्वरूप था उनका। सुन्दर तो विभूतिनाथ बाबू और शांतिनाथ बाबू भी थे किन्तु वैसी कांति किसी में नहीं थी।

२ तारा सहस्रनाम से.

में डा. झा और उनके पुत्रों के प्रेरक प्रसंगों की चर्चा आप अवश्य करते थे। डा. वीरेन्द्रनाथ दास, पं. नरेन्द्रनाथ दास, पं. वेणीदत्त बाबू आदि प्रतिभाशाली सामाजिकों ने सरिसब की मिट्टी का पावन स्मरण करते हुए गंगाश्रम को तीर्थ की संज्ञा से अभिहित किया है। गंगा बाबू के सामान्य किन्तु स्वच्छ रहन-सहन का प्रभाव पूरे समाज पर पड़ा। विद्वत्ता के विशाल पहाड़ को झुका हुआ देख सामान्य नगरजनों ने सीखा कि उदात्त व्यक्तित्व के लिए नम्रता आवश्यक है।

युगों से चली आ रही परम्पराओं को परिशोधित करने का भी सर झा ने महत्त्वपूर्ण कार्य किया। हरिशयनी एकादशी से देवोत्थान एकादशी तक मैथिलों में कन्या को विदा करने की व्यवस्था नहीं थी। सर्वप्रथम इस व्यवस्था को महामहोपाध्याय पं. सचल मिश्र ने व्याख्यायित किया। डा. झा ने विद्वान् पंडित मिश्र का उदाहरण देकर इस व्यवस्था को परिवर्तित करने की अनुशंसा की। उनके स्पष्टीकरण से विजयादशमी को कन्या विदा करने के लिए आदर्श दिन माना जाने लगा—

In Mithila no ceremonies connected with marriage are permitted during the हरिशयन period i.e. dring the four months Akharh 26 to Kartik 26. According to this custom the द्विरागमन ceremony - the coming of the bride to the bridegroom's house - which it may be noted, does not usually take place along with the marriage - had to wait till Kartik 26. the Devothana Ekadashi. Sachal Mishra however gave it as his opinion that Vijayadashami - which is 25th of Ashwin - being the day par excellence for all journey, must be treated as favourable also for the bride's journey to her husband's house. Such was the position in the world of scholars attained by Sachal Mishra that his opinion prevailed and Vijaya dashmi continues to be regarded in Mithila as a suitable day for द्विरागमन।'[१]

रसमंजरीकार भानुदत्त की जन्म भूमि इसहपुर के अप्रतिम नक्षत्र महावैयाकरण दीनबन्धु झा के प्रति सर झा का अत्यधिक आदरणीय भाव था।

---

१ Arya Sapta Sati: Foreword by - Dr. Ganganatha Jha,M.A.D.Litt. L L D.I.E.S

'मिथिला-भाषा-विद्योतन' के कृतिकार पं. दीनबन्धु झा जी काशी के उद्‌भट विद्वान् पं. शिवकुमार मिश्र जी के प्रिय शिष्य थे।

अनेक काव्यनिर्माता वैयाकरणभूषणे।
टीकां नटीमिषातन्वत् नानाभावप्रकाशिकाम्॥
सर्वतन्त्राटवीसिंहो मिश्रः शिवकुमारकः।
छात्रमेनं समासाद्य काश्यामध्यापने रतः॥
वैदुष्यमद्वितायन्तु शब्दशास्त्रे मुदाददात्।
यत्प्रसादादयं काले स्वकीयेऽनुपमोऽभवत्॥

व्याकरण, धर्मशास्त्र और अलंकारशास्त्र के स्वनामधन्य आचार्य दीनबन्धु झा जी के प्रति महामहोपाध्याय सर झा ने विस्तृत चर्चा की है। दीनबन्धु बाबू की आर्थिक स्थिति अच्छी नहीं थी। विद्वान् आचार्य के प्रति संकेत शैली में सर झा ने शुभकामना प्रकट करते हुए लिखा है-

Muir Central College,
Allahabad

Indian Thought

Pandit Dinbandhu Jha has been known to me since his boyhood. I have been watching his scholastic career with interest, as early in life he gave evidence of being a keen student. Having studied Sanskrit Vyakarana in the earlier stages at Darbhanga he went to Banaras to finish his studies. There he had the unique advantage of undergoing a thorough training in Vyakarana, in all its branches, Sahitya and cognate Nyaya, under Mahamahopadhyaya Pandit Shiva Kumara Mishra. He is one of his favourite pupils. After returning from Banaras he has devoted his entire time to the work of teaching. His learning and affable manners, coupled with a rare tac and art of teaching, soon collected round him a large number of pupils who have not passed the various examinations of the Bengal Board of Sanskrit Education with credit. The Pandit himself is a distinguished 'Vyakaranatirtha' having passed the examination in the first class. Subsequently he appeared at the examination of Pandits held by

the Darbhanga Raj and there also he proved himself to be by far the best Pandit of the year.

He possesses a facile pen and his Sanskrit poems-someof which he has published-bear eloquent testimony to his command of language and in-born poetic sensibility, which enabled him to avoid the artificiality and bombast that disfigure most of the modern Sanskrit poetry.

Above all, he is a born teacher, He is erudite without being overbearing, polite without undue leniency. He is equally at home in all the most difficult works of Vyakarana and Sahitya, and there is not a single known work which he cannot teach with ease, having himself learnt all that is to be learnt as the first of the most perfect Pandits of the time.

Unfortunately, however, he has not as yet been able to secure appointment as a paid adhyapaka; for the last ten years he has been carrying on the work of teaching sincerely on the line of the ancient teachers-providing not only teaching but also, in many cases food and lodging to his pupils. The death of his father, however, now compels him to seek his livelihood elsewhere. And in the best interests of Sanskrit studies of the best type .. it is my earnest hope that he shall secure service in one or the other of the several Sanskrit Colleges that are coming to be started under the auspices of the Government.

June 5 1915 **Ganga Nath Jha**

पं. दीनबन्धु झा जी प्राचीन विचारधारा को अधिगृहीत कर 'भृतिकाध्यापन' को अनुचित मानते थे। अर्थाभाव में रहकर साहित्य-साधना करनेवाले इस मनीषी के प्रति सर झा की चिन्ता उनकी सदाशयता को प्रमाणित करती है। सर झा अपने परिजनों के साथ समाज के विद्वानों, छात्रों तथा गुरुजनों से सदैव सम्पर्क बनाए रखते थे। सूचना प्राप्ति के निमित्त उनकी व्यवस्था इतनी चुस्त थी कि गाँव की हर छोटी-बड़ी घटनाओं की जानकारी आपको यथासमय मिल जाती थी। मिथिला में पंडितों और ज्योतिषियों की प्राचीन परम्परा रही है। सर झा के भ्राता तंत्र-विद्या में पारंगत थे। ज्योतिषियों पर सर झा का पहले अधिक

विश्वास नहीं था किन्तु पिता की अन्तिम यात्रा में ऐसे अनेक अवसर आये जब उन्हें ज्योतिषशास्त्र पर विश्वास करना पड़ा। काशी में एक मैथिल पंडित बड़े विख्यात थे। नाम था पं. मनोहर झा जी। मनोहर बाबू को सम्पूर्ण काशी खण्ड कण्ठस्थ था। काशी महात्म्य का यह अंश मृत्यु के लिए प्रतीक्षारत महापुरुषों को सुनाया जाता है जिससे मृत्यु की पीड़ा नहीं हो और मुक्ति की प्राप्ति हो। पौराणिक मान्यता है कि काशीखण्ड सुनकर मणिकर्णिका पर मरने वालों को मोक्ष की प्राप्ति होती है।

पंडित धरानाथ बाबू को उनकी इच्छा के अनुरूप मृत्यु से पूर्व मणिकर्णिका घाट ले जाया गया था। अनेक विख्यात पंडित और सामाजिक उन्हें देखने आते थे। बाबू कालीचरण चटर्जी भी धरानाथ बाबू के दर्शनार्थ पधारे थे। धरानाथ बाबू को श्वासावरोध हो गया था और उन्हें कष्ट सा हो रहा था। लक्षणादि के आधार पर ज्योतिषियों तथा पंडित मनोहर बाबू ने घोषणा की कि आपकी मृत्यु मध्याह्न काल में होगी।

काशी पुराण के अनुसार

मध्याह्ने मणिकर्णिकास्नपनजं पुण्यं न वक्तुंक्षमः ॥

अर्थात् मध्याह्न काल में मणिकर्णिका की पुण्यकारिता बढ़ जाती है। धरानाथ बाबू की पीड़ा बढ़ गई थी। ठीक मध्याह्न बेला में पंडित मनोहर झा जी आये और शीघ्रता से काशी महात्म्य सुनाने लगे। पश्चात् तीव्र गति से उनके निकट गये तो देखा धरानाथ बाबू को दायें करवट लिटाया गया है। सर झा की ओर निहार कर उन्होंने कहा- 'व्यावहारिक ज्ञान का अभाव है। आपलोगों ने यह क्या अनर्थ किया है। इस महान् दृश्य को देखने के लिए चर्मचक्षु नहीं आध्यात्मिक चक्षु की आवश्यकता है। मैं जो दृश्य देख रहा हूँ वह मेरे लिए अपूर्व घटना है। मैं स्पष्ट देख रहा हूँ कि स्वयं काशी विश्वनाथ शंकर, पंडित प्रवर के सिरहाने बैठकर मुक्ति मंत्र देना चाहते हैं । किन्तु दायाँ कान तो आप लोगों ने दबा रखा है। शीघ्रता कीजिए और करवट बदल दीजिए, पंडित मनोहर बाबू के निर्देशानुसार करवट बदल दिया गया और पाँच मिनट में ही मृत्यु के लक्षण प्रकट होने लगे। यह पूर्णतया मध्याह्न की बेला थी। उस समय मिथिला के उस सदगृहस्थ की कांति देखते ही बनती थी। एक अपूर्व आभा से स्नात हो गये थे धरानाथ बाबू। इसी क्रम में दो विचित्र घटनाएँ हुई। जब शव को स्नानादि कराकर चन्दन लेप लगाया जा रहा था तभी किनारे से एक भयंकर नाग निकल आया और फण काढ़े उन्हें निहारता रहा। जब तक शव को उठाया न गया वह नाग उसी प्रकार पड़ा रहा। शव के उठते ही वह विलुप्त हो गया। परिजन जब शव को चिता पर रख रहे थे तभी एक नग्न प्राय फकीर सा दिखने वाला सुन्दर साधु आया और निकट के शिलाखण्ड पर आसन लगाया। वह याचना के स्वर में शव के गले में पड़ी रुद्राक्ष की माला माँग रहा था जिसे देना

सर झा ने अस्वीकार कर दिया। संध्या पर्यन्त वह साधु वहीं बैठा रहा और जब भस्म को गंगा में प्रवाहित कर लोग लौटे तो वह साधु खोजने पर भी नहीं मिला। इन घटनाओं का सर झा पर बड़ा प्रभाव पड़ा।

बुद्धिर्यस्य बलंतस्य

स्वयं सर झा ने स्वीकारा है कि बाल्यावस्था से ही उनमें मोटे होने के लक्षण थे। महाराज ने व्यायाम तथा घुड़सवारी की व्यवस्था करवा दी किन्तु अध्ययन के अतिरिक्त बालक गंगानाथ को कुछ न सुहाता था। महाराज लक्ष्मीश्वर सिंह जी का आपके प्रति अत्यधिक स्नेह था। जब एक दिन दरबार में बालक गंगानाथ भी महाराज के निकट बैठे हुए थे तभी एक हृष्टपुष्ट बालक को लेकर उसके पिता दरबार में आए। उन्हें अपने बालक की वीरता पर बड़ा घमण्ड था। वे बात बात में बल को सर्वोपरि मानने की बात कहते थे। अपने बालक की पीठ सहलाते हुए उन्होंने कहा कि- 'राजन् मेरा यह पुत्र अपने से दुगुने आयु के पहलवानों को भी पराजित करता है। परिसर के सभी बालक इसका लोहा मानते हैं। और यह सर्वाधिक बलिष्ठ है।' अपने पुत्र की प्रशंसा में लगातार वे शब्दों को जोड़ते ही जा रहे थे। धीरे से महाराज ने बालक गंगानाथ को निकट बुलाकर पूछा- 'की अहाँ हिनकासँ कुश्ती लड़ि सकैत छी ?'[१] गंगा ने बालक की प्रशंसा सुनी थी और उसका दीर्घकाय स्वरूप भी तीन गुना अधिक लग रहा था। उन्होंने अस्वीकार सूचक मुद्रा बताई। तभी राजा ने कान में कहा 'घबराउ जुनि। ई बालक मंद-बुद्धि अछि। एकरा बलक अभिमान छैक। त्वरित गतिसँ जँ एकटा नंगरी (टाँग फसाकर गिराना) मरि कए चित्त कए सकी तँ तत्काले एकरा होश भए जेतैक। हँ एहि लेल अहाँकेँ आध सेर रसगुल्ला नित्य भेटल करत।'[२]

कौतुक भाव से गंगा बाबू ने कुश्ती की स्वीकृति दी। विशेषज्ञों के सम्मुख कुश्ती का आयोजन हुआ और राज-बुद्धि से सहज ही वह बलिष्ट बालक चित्त हो गया। परिणाम-स्वरूप जहाँ अभिमानी बालक और उसके डपोरशंखी पिता की भद हुई वहीं लगातार तीस वर्षों तक गंगानाथ झा जी को नियमित मिष्टान्न की प्राप्ति होती रही। संगीत के प्रति सर झा का अत्यधिक आकर्षण था। पुत्रियों के आने पर आप उन्हें पारंपरिक लोक-गीत का मर्म समझाते और

---

१ 'क्या इस बालक से तुम कुश्ती लड़ सकते हो ?'

२ 'घबराओं नहीं। यह बालक मंदबुद्धि है। यह अभिमानी है। त्वरित गति से लंगरी मार कर यदि इसे चित्त कर सको तो तत्काल यह पराजित हो जाएगा। इसके घमण्ड का टूटना आवश्यक है। हाँ, इस सफलता के लिए तुम्हें सदैव आधा सेर रसगुल्ला नित्य मिला करेगा।'

उनके गीतों का आनन्द लेते। अग्रज पं. गणनाथ झा जी मिथिला के प्रसिद्ध गीतकार थे। आपके पद आज भी मिथिलावासियों के कण्ठों में तथा स्मृतिकोश में सुरक्षित हैं। गोसाओनिक गीत रचने वालों में आप महाकवि विद्यापति की परम्परा को आगे बढ़ाने वाले सफल कवि हुए। डा. जयकान्त मिश्र के अनुसार-

The Gosaunika-gita (or Devipada or Bhagavatika Gita) is the devotional song or hymn in praise of the several forms of Sakti. Notable contribution to this type has been made by Vidyapati, the Malls of Nepal, Ratnapani and Gananatha Jha, though almost every poet is known to have written in this form.[1]

गणनाथ झा तथा विन्ध्यनाथ झा के पद मिथिला में अत्यधिक प्रचलित हैं। सर झा द्वारा सम्पादित 'गणनाथ-विन्ध्यनाथ-पदावली' में दोनों के उत्कृष्ट पद संकलित हैं। मैथिली में इस प्रकार के संग्रह का यह पहला प्रयास था। सर झा ने प्राकृतपैङ्गलम् का उल्लेख करते हुए मैथिली के प्राचीन पदों की खोज की आवश्यकता पर बल दिया-

Ganganath Jha pointed out that a thorough knowledge of prosody was necessary to be acquired by vernacular poets.[2]

गीत गोविन्द और विद्यापति के पदों के आप अनन्य प्रेमी थे। मित्रों से उगना की कथा को आध्यात्मिक स्पष्टीकरण के साथ सुनाते थे और महाकवि की पंक्तियों के दुहराते-

जे मोर उगना के
कहता उदेस
देव मञ तनिका
कंगन सनेस ।।
उगना रे मोर कतय गेला
कतय गेला शिव किदहु भेला।

---

१ History of Maithili Literature - Dr. Jai Kant Mishra, Pp. 39-40.

२ Ibid.

विद्यापति के प्रति अतिरिक्त श्रद्धा के कारण आपने 'पुरुष-परीक्षा' का सुन्दर अनुवाद किया। यह अनुवाद इतना सटीक और मार्मिक हुआ कि कुछ लोगों ने अनुवाद पढ़ने के पश्चात् मूल पुस्तक पढ़ने की प्रेरणा प्राप्त की।

सर झा का सम्पूर्ण जीवन प्रेरक-प्रसंगों की मणिमाला है। यदि कभी ईश्वर ने अवसर दिया तो संकलित प्रसंगों का कोश सुधी साहित्य प्रेमियों की सेवा में प्रस्तुत कर सकूँगा। शोध की मर्यादा अधिक विस्तार की अनुमति नहीं देती। 'पग-पग होत प्रयाग' की भाँति इनके जीवन के किसी भी अंश से प्रेरणा ग्रहण करने वाला अध्यवसायी एक कुशल दार्शनिक तथा मनस्वी आचार्य बन जाय तो आश्चर्य नहीं।

****

V

सर गंगानाथ झा का रचना संसार

'यस्माद्ऋते न सिध्यति यज्ञोविपश्चितश्चत । स धीनां योगमिन्वति' ।

दिव्य एवं महनीय परम सत्ता के आलोक में सम्पूर्ण कौलिक वैदुष्य सर झा में उतर आया । माता गायत्री अपने इस भक्त की आस्था से चकित थीं और भगवती भारती अपने वरदपुत्र की प्रतिभा से विमुग्ध । सूर्योपासना से जिस अद्‌भुत जागृति-शक्ति की प्राप्ति हुई वह साहित्य निर्माण के लिए सबल आधार प्रमाणित हुई । वेदोक्त ज्ञान, कर्म और उपासना का अवलम्बन करते हुए सर झा ने साहित्य की अपूर्व सेवा की । मात्र अठारह वर्ष की आयु में काव्यप्रकाश का सफल अनुवाद करने वाले प्रतिभाशाली विद्वान् ने अपनी प्रतिभा सम्पन्नता से सबको चमत्कृत कर दिया मिथिला की गौरवशाली परम्परा में अनेक दिव्य नक्षत्रों के नाम जुड़े हुए हैं । मिथिला ने भारतीय संस्कृति को पूर्ण और व्यापक बनाने की जो महती साधना की वह सर्वविदित है । वैदिक काल से ही मिथिला प्राचीन विद्या के केन्द्र के रूप में प्रख्यात रही है । भारतीय दर्शनों में से चार दर्शनशास्त्रों ता उद्गम-स्थल मिथिला ही है । गार्गी, मैत्रेयी, याज्ञवल्क्य, गौतम, कपिल, कणाद, उदयन, मण्डन, भारती, प्रभाकर, उदयनाचार्य, पक्षधर, गंगेश, पार्थसारथि, शंकर, भवानीनाथ आदि सभी यशस्वी महापुरुष मिथिला के ही थे । कुमारिल, मुरारि, शालिकनाथ तथा पार्थसारथि जैसे मीमांसकों की भूमि मिथिला ही है । मिथिला की शास्त्रार्थ परिपाटी विश्वविश्रुत है । शुक-सारिकाओं की शास्त्र-चर्चा-भूमि मिथिला के केन्द्रीय सिद्धपीठ सरिसब-पाही के अधिवासी महामहोपाध्याय गंगानाथ झा जी मिथिला के नररत्नों में अग्रगण्य हैं ।

अस्माकन्तु निसर्ग सुन्दर ! चिराच्चेतो निमग्नं त्वयी-
त्याद्धानन्दनिधौ तथापि तरलं नाद्यापि सन्तृप्यते ।
तन्नाथ ! त्वरितं विधेहि करुणां येन त्वदेकाग्रतां
याते चेतसि नाप्नुवाम सततं याम्याः पुनर्यातनाः ।।[१]

---

१ न्यायकुसुमांजलि, उदयनाचार्य - १/६१.

हे स्वभाव से सुन्दर ! हमारा चित्त सदैव आप में अनुलग्न रहता है। हमें सहज ही आपका विश्वास प्राप्त है। लेकिन प्रभो ! हमा मन अत्यधिक चंचल है। सांसारिक विषयों में आबद्ध होकर यह बार-बार लौट आता है। यही कारण है कि अभी तक पूर्ण परितृप्ति (मोक्ष) की प्राप्ति नहीं हुई है। हे नाथ ! अब विलम्ब न करें। कृपा कर शीघ्र करुणा की वर्षा करें जिससे यह चित्त केवल आपका संधान कर सके और इस एकाग्रता के फलस्वरूप त्रिविध ताप रूपी यमयातना से मुक्ति मिल सके। ऋग्वेद के अनुसार देवपद के अभिलाषी मनुष्य सरस्वती की अभ्यर्थना करते हैं।

इसी पूर्ण परितृप्ति प्राप्ति के लिए महामहोपाध्याय डा. सर गंगानाथ झा जी ने विद्याभ्यसन को जीवन का पाथेय बना लिया। संस्कृत भाषा के साथ मातृभाषा मैथिली तथा राष्ट्रभाषा का भी आपने अपरिमित उपकार किया है। आपके अग्रज पं. वि-नाथ झा तथा पं. गणनाथ झा अत्यन्त मेधावी पुरुष थे। पं. विन्ध्यनाथ बाबू को मैथिल समुदाय का प्रथम स्नातक होने का गौरव प्राप्त है। गणनाथ झा नेत्रदोष के कारण विश्वविद्यालयी शिक्षा प्राप्त न कर सके किन्तु स्वाध्याय के बल पर आपने प्रकाण्ड पाण्डित्य लाभ किया। कालान्तर में आप तंत्रोपासक हुए और अन्ततः काशी जाकर एकान्तवास किया। गणनाथ बाबू एक सिद्ध तांत्रिक होने के साथ-साथ सरसकवि भी थे। मातृभाषा मैथिली तथा हिन्दी में आपने असंख्य पदों की रचना की। अग्रज विन्ध्यनाथ बाबू भी स्वान्तःसुखाय गीतों की रचना करते थे। सर गंगानाथ झा ने अत्यन्त आयासपूर्वक उपलब्ध पदों को समेकित कर उन्हें पुस्तकाकार स्वरूप प्रदान किया। 'गणनाथ पदावली ओ विन्ध्यनाथ पदावली' नाम का यह संग्रह स्वयं गंगानाथ झा के संपादन में प्रकाशित हुआ।

तन्त्र मार्ग अत्यन्त रहस्यमय और गूढ़ है किन्तु गणनाथ झा ने तन्त्र के सिद्धान्तों को मैथिली के सरल शब्दों में प्रस्तुत करने का विनम्र प्रयास किया है। माता तारा के उपासक पं. गणनाथ झा कहते हैं-

तारा तारा भजहु निरन्तर तारा सम सुखसारा॥ ध्रु.॥
मूलाधार जागि करुणामयि छवओ कमल भय पारा।
सहस्रार गुरुदेव सङ्ग मिलि परमानंद अपारा॥ १॥
गुरु मनु देवि अभेद भाव थिर यतन रहहु निरधारा।
भगति योग अविनाश मोद लहि करमबन्ध करु छारा॥ २॥
विकसित हृदय कमल सरसीरुह अनुप प्रकाश पसारा।
मन अन्हियार विलायत तहिखन नित्यानन्द प्रचारा॥ ३॥
छुटहु प्रपञ्च पञ्च पञ्चन के गुरुवर पद आधारा।
मानु वचन गणनाथ परमहित जगत जाल छुटकारा॥ ४॥

कामेन्द्रिय, ज्ञानेन्द्रिय, मन एवं हृदय में एकता स्थापित कर समस्त विघ्नवाधा का भेदन कर अक्षय आनन्दानुभव ही तन्त्रमार्ग का उद्देश्य और जीवन का परम पुरुषार्थ है। इसी को तन्त्र शास्त्र की भाषा में कुण्डलिनी द्वारा षट् चक्र भेदन कर सहस्रार स्थित अमृतकोष का रसपान कर आनन्द-लाभी सिद्धि कहा गया है। तन्त्रशास्त्रीय भाषा आलङ्कारिक और आवरणयुक्त रहने के कारण सर्वबोधगम्य नहीं रहती किन्तु पं. गणनाथ झा ने मूल सिद्धान्त को भी विलक्षण सरलता से प्रस्तुत किया है-

मूल अधार तारि दल व - श - ष - स
भूषित सुवरन वरन सुसर वस
गुह अरु मेरु मध्य वस सिधि गण नायक रे की ॥ १ ॥
स्वाधिष्ठान विजुरि सन छओ दल
कमल लिङ्ग मुल लस व - भ - म - य - र - ल
सावित्री चतुरानन ततय विराजक रे की ॥ २ ॥[1]

वास्तव में ये पद इतने सुन्दर और वैचारिक हैं कि कोई सहृदय सहज ही विमोहित हो जाता। दशो महाविद्या की स्तुति के क्रम में आप लिखते हैं-

जय - जय ललित छवि मेघ दायिनि ग्रथित कच-कच मुण्डमालिनि।
चरण चुम्बित चिकुर जालिति सकल सुरगण पालिके॥
जय तारिणी सुन्दरी भुवना भैरवी छिन्ना सुधूमा बंगलामुखी
मातङ्गि कमला तुही सब जग जालिके॥
जय सूर्य चन्द्राग्नि त्रिनयना शव करावलि ललित रसना।
चरण तल शिव गगन वसना चराचर भव चालिके॥
जय अभयवर असि मुण्डधारिणि चारि भुज अधपिण्ड धारिणि
कान शवकुण्डल सुहासिनि जयति दक्षिण कालिके॥

देवाधिदेव शिव को विषमता में समता का प्रतीक मानते हुए उनकी अलौकिक सत्ता के प्रति विनयावनत कवि कहते हैं-

जय जय देव देव नटराज ॥ ध्रु. ॥
कनकाचित मणि पीठ उपर भल त्रिभुवन जननि विराज॥
वाणी वीण वेणु चतुरानन हरि मृदङ्ग श्री गान।
सुरपति कर मञ्जीर मधुर धुनि अनुपम छवि परमान॥ १ ॥
आसुतोष सङ्गीत पयोनिधि डङ्का देल बजाय।
शब्द शास्त्र उत्पत्तिमूल चौदह सूत्र कहाय॥ २ ॥

---

१ गणनाथ ओ विन्ध्यनाथ पदावली, पद संख्या - ३२.

सकल अङ्ग सङ्गीत प्रफुल्लित आनन्द शोभासार।
द्वैताद्वैत वेकत दरसाओल ऋषि मुनि मगन विचार॥ ३॥

गणनाथ बाबू के हृदय में मिथिला की मूल संस्कृति प्रवहमान है। गायत्री उपासक कवि गायत्री और ब्रह्मा की स्तुति करते हुए कहते हैं कि-

जय सावित्री सहित चतुरानन।
मूल त्रिदेव मध्य एक ई छथि आदि देव मनभाओन॥
लाल वरन आनन सुचारि भुज वेद कमल मालन।
सकल चराचर सृष्टि भार युत हंस विमलवर वाहन॥
वेद माय सहचरि स्वदेह धय अनुपम शोभा सारन।
आगम निगम सकल यश गावथि भक्त हृदय दुख हारन॥

सर गंगानाथ झा जी ने अपनी वैदुष्यपूर्ण भूमिकाओं में मैथिल लोक संगीत की विस्तार से चर्चा की है।

मैथिली लोक संगीत के सर्वाधिक करुण पक्ष समदाओन की आपने विशेष चर्चा की है। समदाओन एक प्रकार का विदा-गीत है जिसमें मैथिल संस्कार और यहाँ की मिट्टी का सोंधापन है। जिस प्रकार शकुन्तला के प्रस्थान के समय कण्व ऋषि द्रवित हो उठे थे और वन का सम्पूर्ण वनस्पति जगत म्लान हो गया था उसी प्रकार यहाँ जनकनन्दिनी सीता के द्विरागमन के अवसर पर वहाँ की स्थिति का करुण आकलन किया गया है-

सखि हे विनति कहिअ मन लाय।
पोसल बहुत यतन सँ धिया हम आइ सून होअ कोर
सुपरुष चरन लगाय कृतारथ पुरल मनोरथ मोर॥
कएलहुँ यतन जतेक कए सकलहुँ भेल न मन सन्तोष।
हुनक योग आदर की भय सक छमथि करथि नहि रोष॥
नेनपन वयस धिया सँ कत विधि होएत दोष कत वेरि।
छमिहथि सकल दया कय मोहि पर रखिहथि कय वरु चेरि॥[१]

मैथिल लोक-संगीत की प्रतिष्ठा के लिए महामहोपाध्याय के प्रयास को विस्मृत नहीं किया जा सकता। संस्कृत, हिन्दी और मैथिली के विकास के लिए सर झा निरंतर प्रयत्नशील रहे। देवभाषा, राष्ट्रभाषा और मातृभाषा के प्रति सम्मान के बिना सुख-समृद्धि की कल्पना भी नहीं की जा सकती। आपकी अवधारणा भी बाबू भारतेन्दु से मिलती जुलती थी-

---

१ गणनाथ ओ विन्ध्यनाथ पदावली, पद संख्या - १३., भाग-२, प्रकीर्ण

निज भाषा उन्नति अहै सब उन्नति को मूल।
बिन निज भाषा ज्ञान के मिटत न हिय को शूल॥

विप्राणां ज्ञानतो ज्येष्ठ्यं

भारतीय सांस्कृतिक परम्परा के सम्पोषक महामहोपाध्याय सर गंगानाथ झा अपने तेजस्वी व्यक्तित्व एवं विशाल साहित्यिक निधि के कारण सुविख्यात रहे हैं। वाल्यावस्था से ही आपके मन में लेखक बनने की तीव्र इच्छा थी। सरिसब का वातावरण सांस्कृतिक था और दूर-दूर से विद्वान् यहाँ माता सिद्धेश्वरी तथा शास्त्रज्ञों के दर्शनार्थ पधारते थे। राजस्कूल के छात्र के रूप में इसकी प्रेरणा पं. शंकर मिश्र की जीवनी से मिली-

बालोऽहं जगदानन्द न मे बाला सरस्वती।
अपूर्णे पञ्चमे वर्षे वर्णयामि जगत्त्रयम्॥

क्वींस कालेज जाने पर पं. रघुवीर प्रसाद मिश्र नामक अपूर्व प्रतिभा सम्पन्न छात्र से भेंट हुई। मिश्रजी पं. जयदेव मिश्र और पं. शिवकुमार मिश्र के प्रिय शिष्य थे। आपमें श्लोक निर्माण की जन्मजात प्रतिभा थी। पं. रघुवीर प्रसाद मिश्र से प्रेरित होकर गंगानाथ झा ने श्लोकों का निर्माण किया। इन्हीं श्लोकों में से पचास सुन्दर श्लोकों का संकलन 'कतिपयदिवसोद्गम प्ररोहाः' नाम से प्रकाशित हुआ। मित्र मंडली तथा साहित्य प्रेमियों में इसकी काफी चर्चा हुई। मित्र गोविन्ददास ने गंगानाथ की लेखनी की शक्ति को सहज ही देख लिया था। आपका सुझाव था कि क्यों न संस्कृत के पठित ग्रन्थों का अंग्रेजी अनुवाद कर लिया जाय। इससे जहाँ अतिरिक्त आवृत्ति होगी वहीं अनेक महत्वपूर्ण अंशों के प्रकाशन का भी अवसर मिल जाएगा। इस सुझाव के समय गंगाबाबू काव्यप्रकाश का अध्ययन कर रहे थे। मित्र की सम्मति पाकर आपने काव्यप्रकाश का सफलतापूर्वक अनुवाद कर लिया। इसी क्रम में सांख्य तत्त्व कौमुदी तथा न्याय मुक्तावली का भी अनुवाद सम्पन्न हुआ। क्वींस कालेज के छात्र के रूप में आपने जब 'पंडित' में लेखकीय नाम के रूप में जार्ज थीबो, आर्थर भेनिस आदि प्राक्षरों को देखा तो संकल्प लिया कि एक दिन इसी पत्र में मेरा नाम भी जी.एन. (गंगानाथ) प्राक्षर के रूप में छपेगा। आर्थर भेनिस तथा जार्ज थीबो के प्रति गंगानाथ बाबू के मन में अत्यधिक श्रद्धा भाव था। सांख्यकौमुदी का प्रथम प्रकाशन थियोसाफिकलसोसाइटी के पत्र 'थियोसाफिस्ट' में प्रकाशित हुआ। कालान्तर में तुकाराम तात्या ने इसका पुनर्मुद्रण और प्रकाशन थियोसाफिकल पब्लिकेशन फंड, बम्बई के लिए किया। 'काव्यप्रकाश' का प्रकाशन 'पण्डित' में हुआ और महत्वाकांक्षा के अनुरूप जी.एन. प्राक्षरों में आपका नाम अंकित हुआ। बाद में इसके परिवर्द्धित संस्करण का प्रकाशन इण्डियन प्रेस द्वारा सम्पन्न हुआ।

'काव्य प्रकाश' के अपूर्व अनुवाद के प्रसंग में तत्कालीन आलोचना तथा इनसाइक्लोपीडिया की सम्मति है-

In 1898 a young student, 18 years of age, published in the Pandit a translation of the Kavya Prakasa. Since then the youth has ripened in to one of the most eminent scholars of India, and now he republishes his translation in a revised form. The work is .ne of singular excellence, for the translator's unsurpassed mastery of Sanskrit literature. Excellence, for the departments of Alankara and Nyaya, is happily combined with a gift of lucid expression. To the translation are added some useful notes by the Mahamahopadhyaya's son Amar Nath Jha, which are a foretaste of a separate work now in preparation. As Mammata's analysis of the art of Poetry is extremely subtle and at the same time very terse, it presents peculiar difficulties to the translator; but it may be safely asserted that no living sholar could have produced a better version than this.'

दरभंगा राज सेवा में आने के उपरान्त गंगानाथ झा जी ने विज्ञानभिक्षु विरचित 'योगसार संग्रह' का वैदुष्यपूर्ण अनुवाद किया। इसी क्रम में योगभाष्य का भी टिप्पणी सहित अनुवाद किया। प्रकाशन का वास्तविक गौरवानुभव तब हुआ जब दो अनूदित ग्रन्थों श्लोक-वार्तिक और तंत्रवार्तिक का अंगरेजी अनुवाद पं. हरप्रसाद शास्त्री के सहयोग से बंगाल एसियाटिक सोसाइटी के द्वारा प्रकाशित हुआ। इस प्रकाशन से प्राप्त प्रभूत रायल्टी ने जहाँ आपको विस्मित विमुग्ध किया वहीं निरन्तर लेखन की प्रेरणा भी दी। सत्य है कि सरस्वती के उपासकों को लक्ष्मी के लिए प्रयास नहीं करना होता। उत्साही, अदीर्घसूत्री, क्रियाविधि को जाननेवाले, व्यसनों में अनासक्त, वीर, कृतज्ञ, अध्यवसायी और दृढ़ मैत्रीवाले पुरुष के पास लक्ष्मी स्वयं निवास के लिए आ जाती हैं-

उत्साहसम्पन्नमदीर्घसूत्रं क्रियाविधिज्ञं व्यसनेष्वसक्तम्।
शूरं कृतज्ञं दृढ़ सौहृदं च लक्ष्मीः स्वयं याति निवासहेतोः॥

डा. थीबो चाहते थे कि गंगानाथ झा प्रयाग अथवा काशी आकर रहें। गंगानाथ झा की बहुमुखी प्रतिभा का लाभ संस्कृत तथा अंग्रेजी साहित्य के अनुसन्धीत्सुओं को मिले इसके लिए निरन्तर पठन-पाठन और प्रकाशन-जगत का सम्पर्क आवश्यक था। राज सेवा में रहकर पूर्ण अध्यवसायी होना असंभव

था। प्रयाग आगमन के उपरान्त गंगानाथ झा ने अनुभव किया कि यदि विदेशी साम्राज्य की त्रासद बेला में अपनी सांस्कृतिक निधि को सुरक्षित न रखा गया तो अनर्थ की संभावना अधिक है। प्राचीन पाण्डुलिपियों की खोज में मित्र गोविन्ददासजी की भी अपूर्व रुचि थी। आपको काशी के प्रकाण्ड पंडित पं. मधुसूदन सरस्वती द्वारा संग्रहित दुर्लभ पुस्तकों का विशाल भण्डार उपलब्ध हो गया था। अपूर्ण, जीर्ण तथा अप्रकाशित पाण्डुलिपियों को गंगानाथ झा जी ने सर्वाधिक प्राथमिकता दी।

लेखन के क्रम में आप स्वामी विवेकानन्द से बहुत प्रभावित थे। लार्ड-कर्जन ने इंग्लैण्ड की सुविख्यात अंग्रेजी पत्रिका 'एथीनियम' में प्रकाशनार्थ वार्षिक प्रतिवेदन के लिए विभिन्न विद्वानों को निर्देश-पत्र प्रेषित किया। विशेष रूप से दार्शनिक मतों, व्याख्यानों तथा पुस्तकों की समीक्षा का आह्वान किया गया था। यह कार्य गंगानाथ झा की अभिरुचि के सर्वथा अनुकूल था। आपने इस कार्य के लिए स्वामी विवेकानन्द के व्याख्यानों का चयन किया। इस व्याख्यानमाला के विस्तृत अध्ययन ने एक नवीन प्रकाश प्रदान किया। आत्मावलोकन में गंगानाथ झाजी विवेकानन्द साहित्य को पर्याप्त श्रेय प्रदान करते हैं। विशद् अध्ययन के उपरान्त प्रेषित वैदुष्यपूर्ण निबन्धों की भारतीय तथा यूरोपीय विद्याप्रेमियों ने मुक्त कंठ से प्रशंसा की। आध्यात्मिक आह्लाद के क्षणों में लिखित विवेकानन्द की 'ईश्वर-बोध' कविता पर आपने मार्मिक टिप्पणी लिखी। इस कविता की आलोचना के क्रम में आपने अनेक भारतीय तथा यूरोपीय कवियों की उत्तम कोटि की प्रतिनिधि रचनाओं का भी उल्लेख किया है। स्वामी विवेकानन्द की यह कविता स्वयं डा. झा को भी अत्यन्त प्रिय थी-

ईश्वर-बोध

पर्वतों पर, घाटियों में और पर्वत मालाओं में,

मंदिरों में, गिरिजाघरों में और मस्जिदों में

मैंने तुम्हें ढूँढ़ा

किन्तु व्यर्थ।

बीहड़ जंगलों में एक भटके हुए बालक की भाँति

मैं भी चिल्लाता था, और एकाकी-

'तुम कहाँ हो, मेरे परमात्मा, मेरे प्रेम।'

प्रतिध्वनि का उत्तर आया और चला गया।

दिन बीते, रातें बीतीं और वर्ष भी बीत गए।

मन में वह आग किन्तु जलती रही।
जान नहीं पाया,
दिन-रात में कब पिघलता रहा।
हर देश और हर पन्थ के
सब पवित्र नामों से उनको पुकारता रहा
ओ महत ओ आत्मकाम-
कृपा करो, पथ प्रदर्शन करो।'
वर्षों पर वर्ष इसी रुदन में-
बीत चले।
एक-एक पल, युग-युग सा लगता था
और तब-
एक दिन इन्हीं क्रन्दनों के बीच
कोई बुलाता-सा ज्ञात हुआ
एक मृदु और मधुमय स्वर ने-
धीरे से पुकारा-
'ओ मेरे बेटे, ओ मेरे बेटे'
वाणी थी आत्मा-सी निज की,
रग-रग की जानी पहचानी-सी,
मैंने पैरों पर उठकर
वाणी के उद्गम को
पाने की चेष्टा की।
ढूँढ़ा, और, ढूँढ़ा
चारों ओर, पीछे, आगे
बार बार वही स्वर देवी का
मुझसे बातें करता रहा

और मेरा प्राण, शांत एवं तन्मय,
जादू की डोर में बँधा-सा
अध्यात्म-रस में भींगा-भींगा
एक तीव्र आलोक ने मेरे प्राण को जगा दिया।
अन्तस्तल के-
बन्द द्वारों को खोल दिया।
ओ आनन्द, ओ शान्ति
उस दिन से-
जहाँ कहीं जाता हूँ,
उनको पास खड़े पाता हूँ।
पर्वतों में, घाटियों में
पर्वत मालाओं में, उपत्यकाओं में
दूर-अति दूर
ऊँचे और ऊँचे
चन्द्रमा का मृदु प्रकाश
तारों की चमक
दिन का प्रभा मण्डल,
वही तो चमकता है,
उसका ही सौन्दर्य है, उसकी ही शक्ति है,
बाकी तो सबके सब, प्रतिबिम्बित छाया हैं।
उत्फुल्ल प्रात और ढलती हुई संध्या,
असंख्य लहरों में इतराता हुआ सागर,
प्रकृति-सौन्दर्य में,
चिड़ियों की चह-चह में
मैं तुम्हें ही देखता हूँ।

माँ की गोद में पड़े हुए
बच्चों की मुँदी आँखों में
भोले भाले बच्चों की खेल कूद के अवसरों में
तुम मुझे अपने पास ही खड़े दिखाई पड़ते हो।
जब मित्रता का पवित्र हाथ बढ़ता है
तो उस बीच भी तुम्हीं दिखाई पड़ते हो।
माता के चुम्बनों में, बच्चों की पुकारों में
तुम्हीं तो अमृत उड़ेलते हो।
तुम्हीं मेरे देवता हो
भूत के सभी धर्म गुरु
तुममें से ही आते हैं
वेद, बाइबल, कुरान
तुममें ही दृढ़ता और सन्तुलन पाते हैं।
प्राणों के प्राण, तुम ही हो, तुम ही हो।
ओम् तत् सत्
तुम्हीं मेरे देव, मेरी भक्ति
मैं तुम्हारा हूँ, तुम्हारा हूँ।[१]

आर्थर भेनिस ने गंगानाथ झा की उसी आध्यात्मिक तथा अतिरिक्त मेधा शक्ति का अनुभव किया जिसका साक्षात् अनुभव कर भगिनी निवेदिता ने स्वामी विवेकानन्द के प्रसंग में कहा था -

'स्वामी जी की पवित्र विचार-गंगा से इंगलैंड के जिन प्यासे लोगों को तृप्ति मिली उनकी संख्या कम नहीं है। हमारी आत्मा पिछले पचास वर्षो से यूरोप के धार्मिक जगत में हुए अधःपतन से त्रस्त थी। हमें स्वामीजी के सान्निध्य में जीवन का नया प्रकाश मिला। निराशा और अन्धकार के घने बादलों ने हमें विक्षिप्त कर दिया था। स्वामी जी के उज्ज्वल शब्दों ने हमारे मन को प्रसन्नता

---

१ ईश्वर बोध, स्वामी विवेकानन्द (अनूदित)

और प्रकाश की नयी दिशा का दर्शन कराया । स्वामीजी के मुख से 'अहं ब्रह्मास्मि' का घोष सुनकर हमारा जीवन प्रफुल्लित हो उठा । पूर्व और पश्चिम की श्रेष्ठ संस्कृतियों का समन्वय इससे पूर्व कभी नहीं हुआ ।'

गंगानाथ झा ने जर्मनी के सुविख्यात चिन्तक पॉल ड्युसन के निमंत्रण पर विवेकानन्द की कील यात्रा का भी मार्मिक उल्लेख किया है । पॉल ड्यूसन एक विशुद्ध आध्यात्मिक पुरुष थे । इस साक्षात् वेदमूर्ति के प्रसंग में उनके मन में अपूर्व श्रद्धा भाव का उदित होना स्वाभाविक ही था । हिंडलबर्ग, कोलोन आदि नगरों के पश्चात् आप कील पहुँचे । पाल ड्यूसन शोपन हावर के उन शिष्यों में से थे जिन्हें उपनिषदों की आध्यात्मिक विचारधारा ने मुग्ध कर दिया था। आप शंकराचार्य की प्रतिभा से अत्यधिक प्रभावित थे । उनकी धारणा थी कि वेदान्त सूत्र मानवीय आदर्शों , मानवीय प्रतिभा का उत्कृष्टतम उदाहरण है एवं मानवीय नैतिकता की नींव केवल वेदान्त के दिव्य आदर्शों पर ही रखी जा सकती है । मैक्समूलर, एडवर्ड कार्पेन्टर से भी विवेकानन्द ने सुदीर्घ शास्त्र चर्चा की ।

एक दिन एक लम्बे और ओजपूर्ण व्याख्यान के उपरान्त एक वृद्ध आलोचक ने विवेकानन्द से कहा कि- 'स्वामीजी, आपका व्याख्यान तो बहुत प्रतिभाशाली रहा किन्तु आपने कोई नई बात तो नहीं कही है ।' विवेकानन्द ने तत्काल उत्तर दिया- 'महोदय ! मैंने सत्य का स्पष्टीकरण किया है । सत्य शाश्वत होता है । वह उतना ही प्राचीन है जितने पर्वत-शिखर हैं, जितनी मानव सृष्टि है और जितना पुराना भगवान है। यदि मैंने उसी सत्य को आपके सामने विचारोत्तेजक शैली में रखा है, तो आप उस पर विचार करें और यथाशक्ति उसे जीवन में ढालने का यत्न करें । मेरा यह कार्य क्या आपको उपयोगी नहीं लगता ?'

अपने गुरु के प्रति गंगानाथ झा की अपूर्व श्रद्धा थी । महामहोपाध्याय पं. जयदेव मिश्र, महामहोपाध्याय पंडित शिवकुमार मिश्र, महामहोपाध्याय पं. बच्चा झा, महामहोपाध्याय पं. चित्रधर मिश्र, सर आर्थर भेनिस, डा. थीबो, स्वामी मनीषानन्द सबके प्रति आपने जीवन पर्यन्त आदर भाव बनाए रखा । गुरु के प्रति विवेकानन्द की आस्था से आप अत्यधिक प्रभावित हुए थे । अपने गुरु के प्रति श्रद्धा सुमन अर्पित करते हुए स्वामीजी ने कहा था- 'मैं जो कुछ भी हूँ, परमहंसजी के कारण हूँ । मुझ में जो कुछ भी श्रेष्ठ है वह उनका ही वरदान है । उनकी आत्मा ही मेरे माध्यम से अपने ज्ञान को व्यक्त कर रही है । मेरे ज्ञान और अनुभव स्रोत का उद्गम परमहंसजी का अगाध ज्ञानसागर ही है । मैं यदि परमहंसजी के विशद् व्यक्तित्त्व की एक झलक भी संसार को दिखा सकूँ तो मेरा जीवन सार्थक होगा ।'

'एथीनियम' की संपादकीय टिप्पणी में गंगानाथ झा द्वारा अंकित स्वामी विवेकानन्द विषयक गंभीर विचारों की अत्यन्त सम्मानीय शब्दों में प्रशंसा की गयी और भारतीय दर्शन सम्बन्धित डा. झा के गंभीर ज्ञान के लिए उन्हें साधुवाद दिया गया।

इण्डियन थॉट

क्वींस कालेज में ही गंगानाथ झा की प्रतिभा बोलने लगी थी। डा. थीबो ने अनुभव किया कि यह मनीषी यदि मेरे साथ मिलकर काम कर सका तो अनेक योजनाओं को पूरा कर सकूँगा। आपही के सत्प्रयास से गंगानाथ झा जब प्रयाग चले आए तो 'इण्डियन थॉट' की पूर्व योजना को कार्यरूप में परिणत करने का निर्णय लिया गया। इसके लिए प्रथमतः संस्कृत के सभी उत्कृष्ट ग्रन्थों का अनुवाद कर उनके सार संकलन को समेकित करने का निर्णय लिया गया। डा. थीबो तथा गंगानाथ झा जी ने पृथक्-पृथक् ग्रन्थों पर कार्यारंभ किया। दुर्भाग्य से कुछ माह पश्चात् डा. थीबो कलकत्ता विश्वविद्यालय सेवा में कलकत्ता चले गए। प्राच्यविद्या के दिग्गज पण्डित को पुनः प्रयाग आने का अवसर नहीं मिला। अब तक 'इण्डियन थॉट' के दो अंकों का प्रकाशन हो चुका था। यूरोपीय तथा भारतीय प्राच्य विद्याविदों ने जिस उत्साह से इण्डियन थॉट को ग्रहण किया था इससे उसकी उपादेयता प्रमाणित हो चुकी थी। थीबो महोदय के कलकत्ता चले जाने के पश्चात् इण्डियन थॉट का सम्पूर्ण दायित्त्व गंगानाथ झा पर ही आ पड़ा। गंगानाथ झा ने अथक श्रम कर 'इण्डियन थॉट' के ग्यारह अंकों का प्रकाशन कराया। ये ग्यारह अंक अपने आप में एक साहित्य-कोश ही है। सुविख्यात समालोचक डा. कीथ ने जर्नल ऑफ रायल एसियटिक सोसाइटी, लंडन में लिखा-

A melancholy interest attaches to these volumes. 'Indian Thought' made its first appearance in 1907 under the able editorship of George Thibaut and Ganga nath Jha, and seemed to have before it the prospect of a long and prosperous career. The translations of Philosophical works issued in it were detestable system of transliteration forced upon the series by some misguided and inconsistent enthusiasts for phonetic innovation, an example of which is furnished by the title of the present work above, in which the disagreeableness of the system is alleviated only by the inconsistency with which it is applied. And now Thibaut is dead, and 'Indian Thought' after bravely living through eleven volumes, has also expired. The loss to scholarship is great. But the work achieved by

the series is one of the lasting merit; and of it Pars maga fruit the work of Ganganath Jha. The Stout volumes now before us are as good as anything he has produced, and that is saying a great deal. Probably no European can approach him in the mastery which he wields over the rugged realms of Indian Philosophy; and in the mazes of the Logic and epistemology of the Nyaya Sutra and their commentaries he has had full scope for his skill. We congratulate him on the conclusion of his labour of love.'[1](130-131)

सारांश यह कि- 'इस ग्रन्थमाला का उत्कर्ष अवसाद मिश्रित है । इसका प्रथम अंक जार्ज थीबो और गंगानाथ झा के कुशल संपादन में १९०७ ई. में प्रकाशित हुआ । ऐसा लग रहा था कि यह सुदीर्घजीवी और समृद्ध होगा । इसमें जितने दार्शनिक ग्रन्थों के अनुवाद होते थे सभी उत्कृष्ट थे । ग्यारह अंकों तक सफल प्रकाशन के उपरान्त यह अवसन्न हो गया । प्राच्य विद्या के विद्वानों की इससे अपार क्षति हुई । इस ग्रन्थमाला का अवदान स्मरणीय बना रहेगा । वस्तुतः यह गंगानाथ झा के महान् श्रम का ही प्रतीक है । सम्भवतः कोई योरोपवासी भारतीय दर्शन के बीहड़ क्षेत्र में गंगानाथ झा सी प्रवीणता हासिल नहीं कर सकता ।'

गंगानाथ झा ने विविध पुराणों का अध्ययन कर कुछ का अनुवाद किया तथा प्रायः सभी पुराणों का अंगरेजी में सार संकलन किया । 'इण्डियन थॉट' तथा 'ओरियण्टल सिरीज' के माध्यम से इनमें से अधिकांश का प्रकाशन भी हुआ । ब्रह्मपुराण, पद्मपुराण, विष्णुपुराण, शिवपुराण, भविष्यपुराण, ब्रह्मवैवर्त्तपुराण, लिङ्गपुराण, वाराहपुराण, स्कन्दपुराण, वामनपुराण, कूर्मपुराण, मत्स्यपुराण, गरुड पुराण, ब्रह्माण्ड पुराण, आदि का आपने स्वतंत्र अध्ययन किया था । आठ पुराणों का अनुवाद डा. थीबो के साथ मिलकर पूरा हुआ था । डा. बूलर्स एन्साइक्लोपीडिया ऑफ इन्डोआर्यन रिसर्च के विशिष्ट भाग के लिए लिखित डा. थीबो के वैदुष्यपूर्ण समीक्षा से गंगानाथ झा अत्यधिक प्रभावित हुए । उस समय डा. थीबो की कोटि का दूसरा कोई गणितज्ञ, प्राच्यविद् और खगोलशास्त्री नहीं था । डा. थीबो ने काव्यप्रकाश के अनुवाद के क्रम में ही गंगानाथ की प्रतिभा को परख लिया था । आपने समझ लिया था कि यह छात्र-अनुसन्धायक भविष्य में विशाल फैलाव को प्राप्त करेगा ।

---

१ INDICA - (130-131)

गंगानाथ झा जिस समय स्नातकोत्तर के छात्र थे उसी समय आपने प्रसन्नराघव नाटक की सुन्दर टीका लिखी थी। इस अमूल्य नाट्यकृति के प्रसंग में आपके मन में प्रारंभ से ही अत्युच्च धारणा थी। मैथिल कवि जयदेव की वाणी की चारुता साहित्य रसिकों को प्रभूत आनन्द प्रदान करने में समर्थ है। प्रसिद्ध है-

गोवर्द्धनश्च शरणो जयदेव उमापतिः।
कविराजश्च रत्नानि समितौ लक्ष्मणस्य च॥

प्रसन्नराघव और गोस्वामीतुलसी दास विरचित रामचरितमानस में अनेक स्थलों पर अद्भुत साम्य दिखाई देता है। इस साम्य की ओर इंगित करते हुए सर झा ने अनेक उदाहरणों सहित विस्तृत व्याख्या की है।प्रसन्न राघव -

चन्द्रहास ! हर मे परितापं, रामचन्द्र विरहानलजातम्।
त्वं हि कान्तिजितमौक्तिकचूर्णः, धारया वहसि शीतलमम्भः॥[१]

रामचरितमानस-

चन्द्रहास ! हरू मम परितापं रघुपति विरह अनल संजातम्।
शीत निशा तव असिवरधारा, कह सीता हरु मम दुख भारा॥

इसी प्रकार प्रसन्न राघव में-

उदर्कभूतिमिच्छद्भिः सद्भिः खलु न दृश्यते।
चतुर्थी चन्द्रलेखेव परस्त्री-भालपट्टिका॥[२]

गोस्वामी जी के शब्दों में-

सो परनारि लिलार गोसाई, तजहु चौथ चन्दा की नाई॥

इस प्रसंग में स्पष्ट स्वीकारोक्ति है कि-

'लोकोत्तरप्रतिभाप्रकाशेन रामचरितमानसकारेण तुलसीदासेन बाहुषु स्थलेष्वस्या-नुकरणं व्यधायि। तद्यथा पुष्पवाटिकायां सीतारामयोर्मिथः साक्षा-त्कारो भार्गवलक्ष्मणयोरुक्ति-प्रयुक्तयः।'

प्रसन्नराघव जयदेवविरचित एक अत्यन्त उदात्त और उत्कृष्ट आलंका-रिक नाट्यकृति है।

---

१ प्रसन्नराघव (६-३३)
२ प्रसन्नराघव (७-१)

नाट्यविधा के प्रसंग में कहा गया है कि-

न तज्ज्ञानं न तच्छिल्पं न सा विद्या न सा कला।
न स योगो न तत्कर्म नाटके यन्न दृश्यते ।।

अर्थात् वह ज्ञान नहीं है, वह शिल्प नहीं है वह विद्या नहीं है, वह कला नहीं है, वह रोग नहीं है, वह कर्म नहीं है जो नाटक में नहीं देखा जाता। यही कारण है कि भारतीय मान्यतानुसार नाटक को पंचम वेद माना गया है। प्रसन्नराघवकार जयदेव गीतगोविन्दकार जयदेव से पृथक् हैं। मैथिल कवि जयदेव नाटककार, अलङ्कारशास्त्र प्रणेता तथा तर्कशास्त्र के प्रकाण्ड पण्डित थे। आपका दूसरा नाम पीयूषवर्ष था-

चन्द्रालोकमयं स्वयं वितनुते पीयूषवर्षः कृती ।।

प्रसन्नराघव का संस्कृत नाट्य साहित्य में अनुपम स्थान है। सर गंगानाथ झा ने सीता स्वयंवर, परशुराम मानमर्दन, बालि सुग्रीव कथा, गङ्गा-यमुना और सरयू के संवाद द्वारा कथा कहने के अपूर्व ढंग पर विस्तृत टीका की है। नाटक की भाषा के प्रसंग में आप कहते हैं कि इसकी भाषा अत्यन्त प्राञ्जल, मंजुल, अलंकृत एवं सरस है। सीता अपनी सखी से कहती हैं कि-

विकसित पेशलोत्पलपलाश पु जश्यामलो
महेश सौम्य शेखर स्फुटत्सोम-कोमलः ।
लताग्रहे को यमनङ्गरूप-खण्डनो
विलोचनयोर्ददाति मे सुखं शिखण्डमण्डनः ।।[१]

विकसित कोमल नीलकमलों के पत्र समूह के सदृश नीलकर्ण, महादेव जी के मनोहर शेखर में भासमान चन्द्र के सदृश कोमल, कामदेव के रूप को भी मर्दित करनेवाला, लतागृह में अवस्थित यह कौन पुरुष मेरे नेत्रों को सुख दे रहा है ?

कौतुकावस्था में विमुग्ध सीता से उनकी सखी कहतीं-

अत्र ते सखि ! शिखण्डमण्डने, पुण्डरीकरमणीय लोचने।
श्यामतामरसदामकोमले रामनामनि मनो मानोभवे ।।

---

१ प्रसन्नराघव ,पुष्पवाटिका प्रसंग.

हे सखि ! मयूर पिच्छ से भूषित, श्वेत कमलों के सदृश सुन्दर नेत्रों से युक्त और नीलकमल की पंक्ति की नाई कोमल इस रामनाम वाले कामदेव में ही तुम्हारा मन है ।

राम की स्थिति भी दर्शनीय है-

अमल मृणालकाण्डकमनीय कपोलरुचे-
स्तरलसलीलनीलनलिन-प्रतिफुल्लदृशः ।
विकसदशोक शोणकरकान्तिभृतः सुतनो-
र्मदलुलितानि हन्त ! ललितानि हरन्ति मनः ।।[1]

अहा ! निर्मल मृणाल काण्ड के सदृश मनोहर कपोल कान्ति से युक्त, चंचल और विलासपूर्ण नीलकमलों के सदृश विकसित नेत्रों से सम्पन्न और विकसित अशोक पुष्प के सदृश हस्तशोभा को धारण करनेवाली सुन्दरी (सीता) के तारुण्य गर्व से चंचल शृंगार चेष्टाएँ मन को आकृष्ट कर रही हैं । अधोमुखी सुन्दरी सीता का ध्यान कर श्री राम कहते-

उत्तरङ्गय कुरङ्गलोचने ! लोचने कमलगर्वमोचने ।
अस्तु सुन्दरि ! कलिन्दनन्दिनी बीचिडम्बरगभीरमम्बरम् ।।

हे हरिणाक्षि सीते ! कमल के मद का भी अपहरण करनेवाले अपने सुन्दर नेत्रों को ऊपर उठाओ । हे सुन्दरि ! आकाश यमुना के तरङ्ग-समूह के सदृश गहन हो ।

प्रसन्नराघव की नाटकीयता ने गंगानाथ झा को सर्वाधिक आकृष्ट किया था । प्रथमतः पं. हरिनाथ के मुख से प्रसन्नराघव के श्लोकों का सस्वर पाठ सुनकर इसके विस्तृत अध्ययन की इच्छा जगी थी । परशुराम के आगमनवाला अंश भी अत्यधिक आकर्षक है-

अरे क्षत्रियाः ! अपसरत लोचनपथात् । नन्वयम्-
कुर्वन् कोपादुदञ्चद्रविकिरणसटापाटलैर्दृष्टिपातै-
रद्यापि क्षत्रकण्ठच्युतरुधिरसरित्सिक्तधारं कुठारम् ।
तीव्रैर्निःश्वासपातैः पुनरपि भवनोत्पातमासूचयद्भि-
र्गर्जन्मौर्वीकचापस्त्रिभुवनविजयी जामदग्न्यः समेति ।।[2]

---

१ प्रसन्न राघव २/२०
२ प्रसन्नराघव ,चतुर्थोङ्कः (२)

अरे क्षत्रियो ! नेत्रमार्ग से हट जाओ। ये क्रोध की जटा की भाँति उगती हुई रवि किरणों के समान लाल दृष्टिपातों से आज भी कुठार को क्षत्रिय कण्ठों से च्युत रक्त नदी की तीव्र धारा से अभिषिक्त करते हुए फिर भी लोकोपद्रव को सूचित करनेवाले तीव्र निःश्वासपातों से उपलक्षित, गर्जन करती हुई प्रत्यञ्चावाले धनुष को धारण करनेवाले, त्रिलोक विजेता परशुरामजी सामने आ रहे हैं।

इस ग्रन्थ की टीका के क्रम में आपने आलंकारिक पक्ष को सर्वाधिक महत्त्व दिया है। इस नाट्य रत्न की टीका से साहित्य जगत का अपरिमित उपकार हुआ। इसका प्रकाशन वर्ष १९०६ में 'पण्डित' में हुआ। इस गरिमामय प्रकाशन के उपरान्त गंगानाथ झा ने अपनी शोध-उपाधि के प्रसंग से 'प्रभाकर स्कूल ऑफ पूर्व मीमांसा' की रचना की। मित्र गोविन्ददासजी को पाण्डुलिपि संग्रह का अद्भुत आकर्षण था। आपने एक सुअवसर प्राप्त होने पर एक पुस्तकालय ही खरीद लिया था। इसी विशाल कोश से एक खण्डित ग्रन्थ की प्राप्ति हुई। मिथिलाक्षर (तिरहुतालिपि) में लिखित पुस्तक का आधा अंश यही प्रमाणित कर रहा था कि लेखक इसे पूरा नहीं कर सके। न्याय भाष्य पर यह अपूर्व कार्य था।

गोविन्ददास ने 'भाष्य चन्द्र' नामक खण्डित ग्रन्थ को पूरा कर इसके प्रकाशन का दायित्व गंगानाथ झा को सौंपा। खंडित अंश को तदनुरूप पूर्ण कर स्वरचित खद्योत-टीका सहित गंगानाथ झा ने १९२५ में इसे प्रकाशित किया। काशी के पण्डितों में खद्योत टीका की अत्यधिक प्रशंसा हुई। इसके पश्चात् आपने संस्कृत की एक और महत्त्वपूर्ण पाण्डुलिपि का समुद्धार किया। यह ग्रन्थ था पं. मण्डन मिश्र विरचित मीमांसा-ग्रन्थ जिसमें आपने मीमांसा सूत्र के बारह अध्यायों का सार संकलित किया था। मध्वाचार्य ने न्यायमाला की रचना इसी अतिप्राचीन ग्रन्थ के आदर्श पर की थी। गंगानाथ झा जी ने विस्तृत व्याख्या के साथ इस ग्रन्थ को सम्पूर्णता दी। 'मीमांसानुक्रमणिका' नाम से वर्ष १९३० में इसका प्रकाशन हुआ। इस पर लिखी गई गंगानाथ झा की टीका का नाम है 'मीमांसा-मंडन'।

इसमें मूलग्रन्थ के साथ एक-एक अधिकरण वर्णित है। इन अधिकरणों के सम्पूर्ण विषयों को विद्वान् गवेषक ने स्पष्टता प्रदान की है। पण्डित समुदाय में इस ग्रन्थ को भी पर्याप्त ख्याति मिली। मीमांसा अध्ययन के क्रम में गंगानाथ झा जी को प्रतीत हुआ कि अभी तक इस क्षेत्र में कोई ऐसा ग्रन्थ नहीं जिसमें सूत्रावद्ध मीमांसा शास्त्र के सभी तत्त्वों का विशद वर्णन हो। 'मीमांसानुक्रमणिका' की टीका इसी उद्देश्य से लिखी गई।

भारतीय षड्दर्शन पर नागरी प्रचारिणी सभा के अनुरोध पर आपने 'वैशेषिक दर्पण' तथा 'न्याय प्रकाश' का हिन्दी में लेखन किया। इसका लेखन

निर्देशानुसार मैक्समूलर के अनुरूप न लिखकर आपने स्वतन्त्र रुचि के अनुकूल किया।

वर्ष १९२९ ई. में हिन्दुस्तानी अकादमी प्रयाग द्वारा गंगानाथ झा व्याख्यानमाला का आयोजन किया गया। आपने इसमें राजशेखर विरचित काव्य-मीमांसा पर वैदुष्यपूर्ण व्याख्यान दिया। विद्वानों में आपकी उपस्थापन-शैलीपर सुखद आश्चर्य व्यक्त किया गया। इस मैथिल पण्डित की प्रतिभा अब प्रकर्ष पर पहुँच चुकी थी। अकादमी ने 'कवि-रहस्य' के नाम से इसका सम्मानपूर्वक प्रकाशन किया। इसके उपरान्त पटना विश्वविद्यालय ने सर झा को बिहार की भूमि पर सुनने के लिए एक व्याख्यानमाला का आयोजन किया। व्याख्यान की भाषा हिन्दी थी। कालान्तर में इसका प्रकाशन 'हिन्दू लॉ इन इट्स सोर्सेज' के रूप में हुआ। मातृभाषा मैथिली में भी आपकी कुछ स्फुट कविताएँ हैं और 'वेदान्त दीपक' नामक एक निवन्ध संग्रह है। वेदान्त विषयक इन निबन्धों का महत्त्व अप्रतिम है। पत्नी इन्दुमती देवी के निधनोपरान्त लिखा गया शोक-गीत अपनी मार्मिकता में अद्वितीय है। यह शोक-गीत मैथिली भाषा में निवद्ध एक अमर शोक-गीत है-

पति सन्तान उचारित रामकृष्ण शुभ नाम
सुनइत शान्ति पुरस्सर त्यागल प्राण ललाम॥ १॥

पुत्र पुत्रिका कनइत सभकेँ आशिष देल
भागमन्ति पति अनुगत परम धाम चलि गेल॥ २॥

'सेवा अहँक न सकलहुँ कय हम अन्तिम वेरि'
कहइत कानय लागलि नहि किछु बाजलि फेरि॥ ३॥

जनु कानी अहँ चललहुँ सुन्दर ठाम महान
जतय भेटत जे सभ गेल जे अछि तकरो ज्ञान॥ ४॥

सभ केँ त्यागि कतय गेलि कत गेलि प्राण पियारि
कोन विधि जिवन निमाहव बिनु सहचरि सुकुमारि॥ ५॥

कतेक मनोरथ बाँटल दुहु मन हर्ष अपार
संग भय जप-तप करइत तरव संगहि संसार॥ ६॥

से सभ रहल मनहि मन छोड़ि सबहिं चलि गेल
सभक समक्ष पड़ाइलि ललित धाम चलि गेलि॥ ७॥

जीवन अहँक सफल भेल सब खन आनन्दकन्द

सासु पुतोहु शिशुक संग सहब सतत आनन्द ॥ ८ ॥
हमर मनोरथ भंगक जनु करि चित्त में खेद

शीघ्रे आबि मिलब हम जतय फेरि नहि भेद ॥ ९ ॥[१]

विदेशी साम्राज्य का वह प्रकर्ष काल था। अंग्रेज इस तथ्य को समझने लगे थे कि अब अधिक दिनों तक भारतीय समृद्धि को भोगा नहीं जा सकता। भारतीय निधियों को सहेजने के क्रम में प्राचीन पाण्डुलिपियों पर भी उनकी दृष्टि टिकी हुई थी। भारतीय मनीषियों ने अपनी सांस्कृतिक विरासत की रक्षा का संकल्प लिया। इसके लिए सांस्कृतिक निधियों का प्रकाशन और अनुवाद आवश्यक था। संस्कृत ग्रन्थों का अनुवाद कर गंगानाथ झा जी ने अनेक उपेक्षित पुस्तकों को नवजीवन प्रदान करने का महान कार्य किया। इस कार्य के लिए वातावरण के साथ-साथ डा. थीबो, आर्थर भेनिस तथा मित्र गोविन्ददास की भी प्रचुर प्रेरणा मिली।

पूर्व मीमांसा पर कार्य करते हुए आपको सर्वाधिक प्रसन्नता हुई थी। अभी तक पूर्व मीमांसा पर कोई आधिकारिक कार्य नहीं हुआ था। विशेष रूप से प्रभाकर का नाम मात्र लोग जानते थे। प्रकरण-पंचिका के एक अंश विशेष से ही आचार्यों को पूर्व मीमांसा के उद्‌भट विद्वान् प्रभाकर के प्रसंग में संक्षिप्त जानकारी मिलती थी। गंगानाथ झा ने प्रभाकर विरचित मीमांसा सूत्र पर शावर भाष्य की उनकी अपनी टीका का पता लगाया। गवेषणा के परिणामस्वरूप अनेक तथ्य पूर्ण सूचनाओं सहित आधा से कुछ अधिक पाण्डुलिपि की भी प्राप्ति हुई। १९११ ई. में 'प्रभाकर स्कूल ऑफ पूर्व मीमांसा' प्रयाग विश्वविद्यालय द्वारा प्रकाशित हुआ। भारतीय तथा पाश्चात्य समालोचकों ने इसका अत्यधिक आदर किया। प्रभाकर की उपस्थापना के उपरान्त उन पर यही प्रामाणिक और वैदुष्यपूर्ण सामग्री प्रमाणित हुई। इस ग्रन्थ का सर्वाधिक महत्वपूर्ण अंश वह है जहाँ प्रभाकर और कुमारिल दोनों के मतों का आकलन किया गया है। मीमांसा विषयक इस व्याख्यात्मक ग्रन्थ से संस्कृत जगत को प्रभाकर को साङ्गोपांग समझने का अवसर लाभ हुआ। प्रोफेसर आर.डी. राणाडे ने इसके महत्त्वपूर्ण अंश को अपने विश्वकोश में सम्मिलित किया।

काशी नरेश के विद्वान् मुंशी माधोलालजी ने भारतीय दर्शन सम्बन्धी विविध विषयों पर व्याख्यान देने के लिए एक व्याख्यानमाला आयोजनार्थ प्रयाग विश्वविद्यालय को अर्थदान दिया। विभागीय गतिरोध के कारण गंगानाथ झा

---

१ डॉ. सर झा की डायरी से.

ने अपना आवेदन वापस ले लिया था किन्तु जेनिंग्स महोदय ने सभी गतिरोधों को दूर कर गंगानाथ झा को व्याख्यान देने के लिए प्रस्तुत किया। जेनिंग्स और आर्थर भेनिस भारतीय दर्शन पर गंगानाथ झा की स्पष्ट और मौलिक दृष्टि के प्रशंसक थे। व्याख्यान-माला का आयोजन प्रयाग में हुआ और कुल बारह व्याख्यान दिये गए। वर्ष १९१२ में यह महत्वपूर्ण और उपयोगी व्याख्यान 'माधोलाल लेक्चर्स ऑन न्याय' के नाम से 'इण्डियन थॉट' में प्रकाशित हुआ।

सर आसुतोष मुखर्जी की विदुषी पुत्री कमला का असामयिक निधन हो गया था। आपने पुत्री के स्मारक स्वरूप कलकत्ता विश्वविद्यालय को पचास हजार रुपया प्रदान किया था। इसी आय से परिचालित व्याख्यानमाला का आयोजन कलकत्ता विश्वविद्यालय ने किया। इसके लिए कुल चार व्याख्यान देने थे। प्रथम व्याख्याता थी श्रीमती एनीबेसेंट, दूसरे थे पं. श्रीनिवास शास्त्री और तीसरे डा. गंगानाथ झा। एनीबेसेंट का विषय शिक्षा, श्रीनिवास शास्त्री का नागरिकता और गंगाबाबू का विषय था दर्शनशास्त्र। इस व्याख्यान के लिए गंगाबाबू सपरिवार कलकत्ता गए। वहाँ डा. भण्डारकर ने टैगोर-भिला में ठहरने की व्यवस्था की। यह व्याख्यान अत्यन्त प्रभावशाली रहा। इसका प्रकाशन वर्ष १९२८ ई. में हुआ।

इण्डियन थॉट के साथ-साथ गंगानाथ झा जी ने 'सरस्वती-भवन स्टडीज' नाम से एक पत्रिका का आरंभ काशी से किया था। इसमें वैदुष्यपूर्ण निबन्ध तथा अभिलेखादि का प्रकाशन होता था।

वर्ष १९१६ में कलकत्ता विश्वविद्यालय ने टैगोर व्याख्यानमाला के लिए विज्ञापन प्रकाशित किया। व्याख्यान का विषय 'मनु और याज्ञवल्क्य' रखा गया था। आवेदकों से कहा गया था कि अपने आवेदन के साथ सकल व्याख्यान का सार सहित सम्पूर्ण व्याख्यान प्रेषित करें। गंगाबाबू को विषय अनुकूल प्रतीत हुआ और आपने 'सोर्सेज ऑफ हिन्दू लॉ' अर्थात् हिन्दू विधि के स्रोत विषय पर प्रारंभिक व्याख्यान लिखकर प्रेषित कर दिया। इसी को प्रथम अध्याय मानकर गंगानाथ झा ने समस्त हिन्दू विधि का विस्तारपूर्वक वर्णन किया और यह व्याख्यान विशाल पुस्तकीय आकार लेता गया। वर्ष १९३०-३३ के मध्य यह 'इण्डियन थॉट' इलाहाबाद में प्रकाशित हुआ। इस वैदुष्यपूर्ण और सांगोपांग व्याख्यान की सर्वत्र प्रशंसा हुई।

१९३२ ई. में महाराज बड़ोदा की ओर से 'शंकराचार्य और देशोत्थान के लिए उनका योगदान' विषय पर आयोजित भाषणमाला में गंगानाथ झा जी को सादर आमंत्रित किया गया। राजप्रासाद में ही व्याख्यान का आयोजन किया गया था। महाराज तथा महारानी ने प्रातःकाल धार्मिक तथा दार्शनिक प्रश्नों पर डा. गंगानाथ झा जी से विमर्श किया। इस मैथिल पण्डित की अपूर्व प्रतिभा से बड़ोदा के विद्वान् अत्यधिक प्रभावित हुए। मिथिला की गरिमा नेत्रों के सम्मुख

साकार हुई। बड़ोदा में दिये गए सभी व्याख्यान 'कीर्ति मंदिर लेक्चर सिरीज़' वर्ष १९३३ में बड़ोदा से प्रकाशित हुआ।

सर झा ने प्रो. राणाडे के अनुरोध पर उत्तर मीमांसा पर अनेक महत्त्वपूर्ण निबन्धों का लेखन किया। राणाडे महोदय ने अपने विश्वकोश में इसका सदुपयोग किया। बाद में इसी का विस्तृत रूप 'महाराज रमेश्वर सिंह भाषणमाला' के क्रम में भी पढ़ा गया। 'मिथिलेश महेश-रमेश व्याख्यान माला' के क्रम में गंगानाथ झा ने क्रमशः संस्कृत, हिन्दी और मैथिली में तीन व्याख्यान दिये।

योग-सार-संग्रह और योग-भाष्य का परिवर्त्तित-परिवर्द्धित स्वरूप थियोसॉफिकल पब्लिशिंग हाउस, मद्रास से प्रकाशित हुआ। पं. हरप्रसाद शास्त्री, डा. थीबो, डा. भेनिस और मित्र गोविन्ददास की प्रेरणा से गंगानाथ झा लगातार लिखते रहे।

वृहत्काय टीका न्यायकन्दली सहित प्रशस्तपाद भाष्य के अनुवाद के उपरान्त डा. थीबो ने गंगानाथ झा को साधुवाद दिया। यह अत्यन्त कठिन कार्य था। इसका प्रकाशन 'पण्डित' में हुआ था। रायबहादुर श्री चन्द्रवसु ने 'सिक्रेट बुक्स ऑफ द हिन्दूज' नामक महत्त्वाकांक्षी ग्रन्थमाला प्रकाशित करने का निर्णय लिया। 'पूर्वमीमांसा सूत्र' पर लिखने के लिए आपने डा. गंगानाथ झा से अनुरोध किया। इसके लिए आपने तीन प्रभाग का लेखन किया किन्तु अस्वस्थता के कारण इस कार्य को पूरा नहीं कर सके। अवशिष्ट कार्य को उच्चन्यायालय के विद्वान् अधिवक्ता मनमोहन सान्याल ने पूरा किया।

भारतीय दर्शन के क्षेत्र में, संस्कृत साहित्य के अभ्युत्थान तथा राष्ट्रीय गरिमा विस्तार के प्रसंग में सर गंगानाथ झा के महत्त्वपूर्ण अवदान को विस्मृत नहीं किया जा सकता। प्रस्तावित कार्य को सर झा अत्यन्त गंभीरतापूर्वक लेते थे और तत्काल कार्यारंभ कर देते थे। वर्ष १९२० में कलकत्ता विश्वविद्यालय ने आपको मेधातिथि के महाभाष्य का अनुवाद करने का गुरुतर भार दिया। पूर्वमुद्रित पुस्तकें नितान्त अव्यवस्थित और असंगत थी। यह पुस्तक खण्डित स्वरूप में ही उपलब्ध थी। ग्यारहवीं शताब्दी में मदन नामक नृपति ने इसे सहेजने का प्रयास किया था-

मान्या कापि मनुस्मृतिस्तदुचिता व्याख्याऽपि मेधातिथेः
सा लुप्तैव विधेर्वशात् क्वचिदपि प्राप्यन्न तत्पुस्तकम्।
धीरः श्रीमदनः सहारुणिसुतो देशान्तरादाहृतैः
जीर्णोद्धारमचीकरत्तत इतस्तत्पुस्तकैर्लेखितैः॥

इस महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ के उलटे-पुलटे क्रम को उपलब्ध प्रामाणिक पाण्डुलिपियों के आधार पर आपने क्रमबद्धता दी और उसका वैदुष्यपूर्ण अनुवाद किया।

इसी क्रम में संयोजित ग्रन्थ का संशोधित पाठ बंगाल एसियटिक सोसाइटी के द्वारा प्रकाशित हुआ। वर्ष १९३१-३२ में बड़ोदा राज के अनुरोध पर शाबर भाष्य का विस्तृत अनुवाद किया जो बड़ोदा ओरियंटल इंस्टिच्यूट से तीन खण्डों में प्रकाशित हुआ। बड़ोदा राज के अनुरोध पर ही आपने बौद्धमत 'तत्त्व संग्रह' का अनुवाद किया। इसका प्रथम खण्ड वर्ष १९३७ ई. में और अन्तिम खंड कालान्तर में प्रकाशित हुआ। इन ग्रन्थों के अतिरिक्त आपने अनेक ग्रन्थों का संपादन तथा भूमिका लेखन किया। 'आर्या सप्तशती' की भूमिका अपने आप में एक स्मरणीय निधि है।

विभिन्न ग्रन्थों में उपलब्ध तथ्यों तथा डा. सर झा विरचित निजविषयक उल्लेखों के आधार पर सर गंगानाथ झा की प्रमुख रचनाएँ अधोलिखित हैं-

महामहोपाध्याय डा. सर गंगानाथ झा की रचनाएँ

१. **आर्यन इन्भेजन ऑफ इण्डिया: इज इट ए मिथ** ? भंडारकर पुष्पांजलि, कलकत्ता।

२. **भागवतम्** कुप्पुस्वामी शास्त्री स्मृति ग्रन्थ, मद्रास।

३. **न्याय प्रकाश,** नागरी प्रचारिणी सभा, काशी।

४. **कवि-रहस्य,** हिन्दुस्तानी एकेडमी, प्रयाग।

५. **हिन्दू लॉ इन इट्स सोर्सेज,** पटना विश्वविद्यालय, रामदीन भाषण-माला, पटना।

६. **कुमारिल एण्ड वेदान्त,** थियोसॉफिकल सोसाइटी, बम्बई।

७. **मैगनेटिज्म ऐज एक्सप्लेन्ड बाइ शान्ति रक्षित** इस्टर्ड एण्ड इण्डियन स्टडीज, बम्बई।

८. **ए नोट ऑन दि शाबर भाष्य,** डा. मोदी स्मृति ग्रन्थ, बम्बई।

९. **दि फिलासाफिकल डिसिप्लिन** कमला भाषण-माला, कलकत्ता विश्वविद्यालय, कलकत्ता।

१०. **'प्रभाकर स्कूल ऑफ पूर्व मीमांसा'** इण्डियन थॉट, इलाहाबाद।

११. **प्रभाकर ए थ्योरी ऑफ एरर** भंडारकर पुष्पांजलि, कलकत्ता।

१२. **पूर्व मीमांसा इन इट्स सोर्सेज,** बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय, बनारस।

१३. **रेलिजन, दि नीड ऑफ दि प्रेजेन्ट जेनरेशन** रंगस्वामी आयंगर स्मृति ग्रंथ, मद्रास।

१४. **शंकर वेदान्त,** महाराज सर रमेश्वर सिंह भाषण माला, इलाहाबाद, लॉ जर्नल प्रेस।

१५. **न्याय फिलासफी ऑफ गौतम,** इण्डियन थॉट, प्रयाग।

१६. **सम रेयर वर्क्स ऑन वैद्यक** कृष्णास्वामी आयंगर स्मृति ग्रन्थ, मद्रास।

१७. **सोर्सेज ऑफ प्रापर्टी अंडर हिन्दू लॉ** मालवीय स्मृति ग्रंथ, बनारस।

१८. **दि टीचिङ्ग ऑफ लॉइन इण्डियन युनिभर्सिटीज,** वाल्टेयर।

१९. **वैशेषिक दर्शन,** नागरी प्रचारिणी सभा, काशी।

२०. **योग दर्शनः ए क्लासिक एक्सपोजिशन ऑफ योग थियोसाफिकल** पब्लिशिंग हाउस, आड्यार।

२१. **वेदान्त दीपक,** मैथिली साहित्य परिषद्, दरभंगा।

२२. **मीमांसा न्याय प्रकाश,** आपदेव कृत, पंडित, अंक (२६-२७) बनारस।

२३. **वाणभट्ट कृत कादम्बरी** (संक्षिप्त) इण्डियन प्रेस, इलाहाबाद।

२४. **गौतम न्याय सूत्र** वात्स्यायन भाष्य तथा स्वरचित खद्योत टीका में यथाग्रहीत मूल मात्र, ओरियण्टल बुक एजेन्सी, पूना।

२५. **न्याय दर्शनः** सूत्र तथा वात्स्यायन भाष्य रघुत्तम भाष्यचन्द्र टीका तथा अम्वादासीय टिप्पणी सहित, काशी।

२६. **न्यायसूत्र ऑफ गौतमः ए सिस्टम आंफ इण्डियन लाजिक,** ओरियन्टल बुक एजेन्सी, पूना।

२७. **गौतम न्याय सूत्र,** वात्स्यायन भाष्य, उद्योतकर वार्त्तिक, वाचस्पति मिश्र विरचित न्यायवार्त्तिक टिप्पणी तथा उदयनाचार्य की तात्पर्य परिशुद्ध टीका सहित (अंग्रेजी अनुवाद) इण्डियन थॉट-प्रयाग।

२८. **हिन्दू एथिक्सः प्रिन्सिपुल्स ऑफ हिन्दू रेलिजियोसोशल-रीजेनरेशन** जी.ए. नटेशन एण्ड कम्पनी, मद्रास।

२९. **पूर्व मीमांसा सूत्र,** जैमिनि कृत स्वरचित टीका सहित अंग्रेजी अनुवाद।

३०. **प्रसन्नराघव,** जयदेव कृत संस्कृत भाववोधिनी टीका सहित, मेडिकल हाल प्रेस, इलाहाबाद।

३१. **न्यायकलिका,** जयन्तभट्ट कृत स्वभूमिका सहित सम्पादित, सरस्वती-भवन, काशी।

३२. **चतुरग्निविधानेन जलाशयोत्सर्ग पद्धतिः** पं. हर्षनाथ झा विरचित, इण्डियन प्रेस, इलाहाबाद।

३३. **कविकुलगुरु कालिदास विरचित मेघदूतम्** टिप्पणी सहित, इण्डियन प्रेस, इलाहाबाद।

३४. **तर्कभाषा,** पं. केशव मिश्र कृत अंग्रेजी अनुवाद, पूना ओरियन्टल सिरीज, पूना।

३५. **गीत गोपीपति काव्य** पं. हर्षनाथ झा कृत भावदीपक व्याख्या सहित निर्णय सागर प्रेस, बम्बई।

३६. **कृष्णदीक्षित कृत परिभाषा,** पण्डित, काशी।

३७. **मीमांसापरिभाषा**-संपादित, मेडिकल हॉल प्रेस, काशी।

३८. **कुमारिल भट्ट कृत श्लोक वार्तिक सुचरित** मिश्र कृत टीका, काशिका तथा पार्थसारथि उद्धरण सहित अंगरेजी अनुवाद।

३९. **तन्त्रवार्तिक अंगरेजी** अनुवाद बंगाल एसियाटिक सोसाइटी, कलकत्ता।

४०. **अद्वैत सिद्धि, मधुसूदन** सरस्वतीकृत स्वविरचित अंगरेजी अनुवाद तथा टिप्पणी इण्डियन थॉट, इलाहाबाद।

४१. **मण्डनमिश्र कृत** 'भावना विवेक' भट्ट उम्बेक कृत टीका तथा निज भूमिका सहित सम्पादित, सरस्वती-भवन, इलाहाबाद।

४२. **मीमांसानुक्रमणिका स्वकृत** मीमांसामण्डन टीका सहित सम्पादक-ढुंढिराज शास्त्री, चौखम्बा।

४३. **मनुस्मृति**, मेधातिथि भाष्य सहित अंगरेजी अनुवाद, कलकत्ता विश्वविद्यालय, कलकत्ता।

४४. **तन्त्ररत्न**, पार्थसारथि मिश्रकृत भूमिका सहित सम्पादित सरस्वती-भवन टेक्स्ट्स, काशी।

४५. **योगदर्शन** पतंजलि विरचित योगसूत्र तथा व्यासकृत भाष्य वाचस्पति मिश्र कृत तत्व वैशारदी, विज्ञान भिक्षुक, योगवार्तिक तथा भोजराजकृत राजमर्तण्ड से उद्धृत टिप्पणी के साथ अंगरेजी में अनुवाद बम्बई थियोसॉफिकल पब्लिकेशन्स, बम्बई।

४६. **पदार्थ धर्म संग्रह**, प्रशस्तपादकृत श्रीधर कृत न्यायकन्दली टीका सहित अंगरेजी अनुवाद, पण्डित, काशी।

४७. **शाबर भाष्य** अंगरेजी अनुवाद, ओरियंटल इन्स्टीच्यूट, बड़ोदा।

४८. **पं. शंकर मिश्र कृत 'वादि विनोद'** सम्पादित, इण्डियन प्रेस, इलाहाबाद।

४९. **तत्व संग्रह**, शान्तरक्षित कृत कमलशील कृत टीका सहित अंगरेजी अनुवाद ओरियन्टल इन्स्टिच्यूट, बड़ोदा।

५०. **श्री हर्ष कृत खण्डन खण्ड खाद्य**, डा. थीबो के साथ अंगरेजी अनुवाद, इण्डियन थॉट, इलाहाबाद।

५१. **आनन्दपूर्णकृत खण्डनखण्ड खाद्य खण्डन फक्किका विभाजन तथा चित्सुख**, शंकर मिश्र तथा पं. रघुनाथ की टीका उद्धरण सहित सम्पादित सहयोगी सम्पादक-पं. लक्ष्मण शास्त्री, चौखम्बा-काशी।

५२. **छान्दोग्योपनिषद**, शांकर भाष्य सहित अंगरेजी अनुवाद, जी.ए. नटेशन एण्ड कम्पनी, मद्रास।

५३. **पुरुष परीक्षा**, महाकवि विद्यापति संपादित वेलवेडियर प्रिन्टिंग प्रेस, इलाहाबाद।

५४. योगसार संग्रह, विज्ञान भिक्षु कृत अंगरेजी अनुवाद, थियोसाफिकल पब्लिकेशन्स, बम्बई।

५५. **गोवर्द्धनाचार्य विरचित आर्यासप्तशती** महामहोपाध्याय पं. सचल मिश्र रचित रस प्रदीपिका टीका सहित, प्रकाशक - पं. केशीनाथ मिश्र भूमिका-डा. सर गंगानाथ झा विद्यापति प्रेस, लहेरियासराय।

५६. **छान्दोग्यमन्त्र भाष्य**, गुण्विष्णु कृत कलकत्ता संस्कृत साहित्य परिषद् कलकत्ता।

५७. **तत्त्व कौमुदी**, वाचस्पति मिश्र कृत मूल सहित अंगरेजी अनुवाद। बम्बई थियोसा-फिकल पब्लिकेशन्स, बम्बई।

५८. **विवाद चिन्तामणि**, वाचस्पति मिश्र कृत अंगरेजी अनुवाद सहित टिप्पणी।

५९. **तत्त्व कौमुदी**, वाचस्पति मिश्र कृत अंगरेजी अनुवाद, मूलभूत सिद्धान्तसार ऐतिहा-सिक भूमिका सहित समीक्षात्मक टिप्पणी, सम्पादक - पं. हरदत्त शर्मा ओरियण्टल बुक एजेन्सी पूना।

६०. **वामन विरचित काव्यालंकार सूत्र** अंगरेजी अनुवाद इण्डियन थॉट, इलाहाबाद।

६१. **कवीन्द्राचार्य सूची पत्र**, अनंतकृष्ण शास्त्री, ऐतिहासिक टिप्पणी गायकवाड ओरि-यंटल सिरीज, बड़ोदा।

६२. **ए हिस्ट्री ऑफ वैदिक लिटरेचर**, आर्थर एन्थनी मैकडोनल संस्कृत में रूपान्तरण।

६३. **कन्सेप्शन ऑफ मैटर एकार्डिंग** टु न्याय वैशेषिक भूमिका लेखन।

६४. **इन्टेलिजेन्ट मैन्स गाइड टु इण्डियन फिलासाफी** ले. मनुभाई, चन्द्र विद्यानंद डी.बी. तारापुरवाला एण्ड सन्स, बम्बई।

भारतीय तथा यूरोपीय शिक्षाविदों में सर झा को अपूर्व सम्मान प्राप्त था। षष्ठिपूर्ति पर पूना से प्रकाशित अभिनन्दन ग्रंथ के लिए शीर्षस्थ विद्वानों ने अपने-अपने श्रद्धा-सुमन प्रेषित किये। सर झा का रचना संसार इतना विस्तृत और सुरभित है कि साहित्य मार्ग के सहृदय पथिक हों या न्याय, दर्शन के अनुसन्धीत्सु, सहज ही उनका ध्यान इस वैभव की ओर चला जाता है। वैशेषिक न्याय के प्राध्यापक श्री श्रीशंकरदेव शर्मा लिखते हैं-

नीरन्ध्रं नवकाशकाननशतान्याशासु तन्वानया
कालेनापि यशःश्रिया विशदयन्पारं पयोधेः परम्।
प्राचां नः परिपालयन्नविकलं त्वं पण्डितानां प्रथां
गङ्गानाथ सनाथयस्यतितमां विद्यावतां मण्डलीम्॥ १॥
विद्यावैभव जीविनामिह कुले पाश्चात्य वात्याकुले
व्यत्यस्ते च समस्तवस्तुनि बलात्कालात्करालादतः।
श्रीमन् श्रोत्रिय मौलिमण्डनमणे गीर्वाण वाणीपुन-
र्द्विर्तत्रानेव भवादृशः शरणदानालम्बते जीवितुम्॥ २॥
भाग्यान्यमूनि भवतो गमयन्ति पूर्णं
पुण्यात्मनस्त्वमि पितुस्तव सम्प्रसादम्।
आशास्महे बधुसमा भवता सनाथा
तेनैव पण्डितशतं शरदां भवित्री॥ ३॥

प्रयाग विश्वविद्यालय भूतपूर्व कुलपतीनाम् महामहोपाध्याय गङ्गानाथ झा महोदयानां षष्ठि संवत्सर सौवर्ण महोत्सवे भिनन्दनम्।

महामहोपाध्याय श्री माधव शास्त्री भाण्डारी मिथिला की पौराणिक वैदुष्य परम्परा को स्मरण करते हुए महापुरुष के प्रति विनयांजलि प्रदान करते हुए कहते हैं-

धन्यैषा मिथिला मही निरुपमा या विश्व सारायते
विद्वद्रत्नरखनीयते मतिमतां वैदुष्य शाणायते।
ज्ञानाम्भोधि विधूयते नृपगुणै राजन्वती गीयते
शास्त्रार्थः शुकसारिकादिमुखतोऽप्यत्रानिशं श्रूयते ॥ १ ॥
शुक्लानां यजुषां प्रवर्त्तकचरः श्री याज्ञवल्क्यो मुनी
राजर्षिर्जनकाभिधः श्रुतिशिरोगीतश्च यत्रोदभूत्।
साध्वीनां हि शिंखामणिर्जनकजा सीतात्र सीताजनि-
राम्नायाम्बरभास्करो यतिवरो यां मण्डनोऽमण्डयत् ॥ २ ॥
एवं नैकविभूतितया सत्पुरायपु जोत्करैः
खातायामवनौ विशेषविदुषां सौभाग्याजां नृणा ॥
स्यान्नूतं सततोदयः, नहि भवेन्नैर्मल्यसारे म्बरे
सूर्याचन्द्रमसौ सुदीप्तभगणान् मुक्त्वा न्यवस्तूद्भवः ॥ ३ ॥
अस्माद्भाग्यवशेन साम्प्रतमपि ब्रह्मर्षिकल्पो महा-
भागः श्री मिथिला भावो पि सकले स्मिन्भारते मराडनः।
ख्यातीनां जनकःश्रुतौ परिचितः श्री याज्ञवल्क्यो न्वयं
गङ्गानाथ सुधीः समस्त जनता नन्दाय चन्द्रायते ॥ ४ ॥
मीमांसायुग तर्क तन्त्र निपुणः साहित्य पण्या पण
श्रौत स्मार्त परम्परा विमलधीः पाश्चात्य विद्यानिधिः।
धीरोदात्त गुणाग्रणीः प्रतिभया संसस्तु चूडामणि-
र्यस्या शा मुख मण्डनायितमहो सौजन्य जन्यं यशः ॥ ५ ॥
अण्यालोच्य सरस्वतीसमुदयं लक्ष्मीरसूया न्विता
सारा सार विवेकिनी परिभवं स्वीयं न चामन्यत।
गङ्गानाथमिमं स्वकीय जनकं रत्नाकरं जानती
नूनं हृष्टमनाश्चकार वसतिं कन्येव पित्रान्ति के ॥ ६ ॥
तन्त्र ग्रन्थ गरिष्ठ सौष्ठवलसद्भाषान्तरादे र्गुणैः
पाश्चात्यान्मतिमद्वरानपि निजं शिष्यत्वमानीतवात्।
देशं ज्ञानखनिं विहाय हि निजं पाश्चात्य तीर्थाटनैः
प्राप्तज्ञान लवानवादा विमवान् न्यक्कृत्य संराजते ॥ ७ ॥
प्रयागेथो काश्यां प्रमुख पदम्ध्यासितवता
ततो यू.पी. प्रान्ते कुलपति पदं मण्डितवता।

कृता दिव्याः शिष्या निजवचन गङ्गा प्रवहणैः
कृतं गङ्गानाथेत्यनुगुणमहो नम कृतिभिः ॥ ८ ॥

उस अध्यवसायी के प्रति समकलीन तथा बाद के विद्वानों में अत्युच्च धारणा रही है । पं. श्रीधर शास्त्री के अनुसार विद्वानों को सम्मान प्रदान कर व्यक्ति स्वयं को गौरवान्वित करता है । महान् व्यक्ति को विनयाञ्जलि प्रदान कर हम स्वयं निज चेतना को परिष्कृत और निज कर को परिशुद्ध और सार्थक करते हैं[१]

पं. श्री नारायण शास्त्री खिस्ते, साहित्याचार्य काशी राजकीय सरस्वती भवन के पुस्तकाध्यक्ष ने महामहोपाध्याय के अभिनन्दन में लेखनी को मुक्त कर दिया है । जिस गंगानाथ ने लाखों छात्रों के जीवन में प्रकाश की किरणों का सूत्रपात कर अज्ञान की कुहेलिका से मुक्ति दिलायी हो उनके प्रति भला कार्पण्य कैसा ? गंगानाथ झा जी के गौरवशाली साहित्य-संसार में अवगाहन करनेवाला व्यक्ति उनके प्रसंग में अधिक से अधिक कहकर भी यही अनुभव करता कि कहीं कुछ छूट गया है । शास्त्रीजी लिखते हैं-

श्रीमद्गङ्गानाथोपाध्याय प्रशस्तिः

विश्वविद्यालया धीशो मरनाथ निषेवितः
गङ्गानाथो विजयते विभूति परिभूषितः ॥ १ ॥

स्वस्ति श्रीमदसीमसद्गुणमणि प्राम्भारवारां निधिः

सौजन्या नधता दिशेवधिरव्यं वैदुष्यभूषा वधिः ।
राकाशारदशीतरश्मि शतका तिक्रान्त कान्तिस्फुट-
त्कीर्ती राजति मैथिलावनिसुरो गङ्गादिनाथः सुधीः ॥ २ ॥

श्रीमन् ! समस्तसुजनार्च्यपदाम्बुजात ।

विश्वम्भरातलसुधा शनवृन्द मौले ।
वाचस्पते ! विधृतपार्थिवभव्यदेह !
गङ्गादिनाथ ! गुणगृह्य जनाग्रयायिन् ॥ ३ ॥

यच्छिमता स्वजननीस्तन मुज्झतैव

वाग्देवता स्तनसुधाधयने प्रवृत्तम् ।
तच्छैशवौचितमपीह जरादशायां
किं शोभते ? 'वन सतां चरितं विचित्रम्' ॥ ४ ॥

कौमार यौवनदशाद्वितयान्तराले

पश्चात्यवाग्रससुधां परिपीय कामम् ।
पौरस्त्यत्रीः स्तनसुधामधुना प्यभु चन्
वृद्धस्तनन्धय ! वचो तिगचेष्टितो सि ॥ ५ ॥

यावन्तो रचिताः समुज्जवल रुचस्तत्तन्महादर्शना-
म्भोधिं द्राक् परिमथ्य तत्वनिधयो ग्रन्थाननु श्रीमता।
साकल्यादपि तावनां परिचयादेके महापण्डिताः
ख्यायन्ते, रचनापदुध्रुवमहो मूर्धाभिषिक्तोविदाम् ॥ ६ ॥
या रण्ये शबराश्रित हितहविर्वोहैः कुशाग्रक्षत
प्राज्यप्रौढ़किवाङ्क पणभिरभूत् विप्रैर्धृतता केवलम्।
मीमांसा किलसा स्वदिष्टि विजयं श्रीमत्प्रसादं पृथुं
प्राप्याकर्षीति सर्वदेशविदुषां चेतांस्यहो साम्प्रतम् ॥ ७ ॥
पाश्चात्याङ्ग्लभाषया वहुविधान् ग्रन्थाननूद्यद्रुतं
पौरस्त्यामरभारती परिचयं सर्वेविदो ग्राहिताः।
एतेनोपकृता निरस्ततिमिराः सत्कर्मणा श्रीमता
श्लाघन्ते गुणगौरवं सुरगिरां प्राच्यप्रतीच्यावुधाः ॥ ८ ॥
वेदान्तान् विदित प्रमेयनिवहान् व्याख्याय विख्यापयन्
साङ्ख्यं योगमपि प्रयोग कुशलः संयोजयत् सज्जनैः।
साहित्या हितसौहृदः सुरसविन्मीमांसया मांसल-
स्तर्के प्यप्रतिमः प्रदे प्रतिभरः श्रीमान् समः श्री मता ॥ ९ ॥
सम्राट्स्थापित काशिका सुरगवीविद्यालया ध्यक्षतां
सम्पाद्या नुपदं पदं कुलपते रारुह्य तद् दुर्लभम्।
विश्वस्मिन प्रसृतामल स्थिरयशाः शिष्यैरसङ्ख्यैश्रितः
सौभाग्योदयभूधराग्रशिखरे श्रीमान् स्थितो राजते ॥ १० ॥
उत्पत्तिः श्रुतिपारगा वनिसुरो त्तंस प्रशस्ता न्वये
ज्ञानं देव गुरोरिवा तिविपुला सम्प्रद्यशोनिर्मलम्।
विद्याबुद्धिपदा धिकार महिताः पुत्राः प्रभावो महान्
सर्वं यस्य तथा विधो भुवि भवानादर्शभूतः पुमान् ॥ ११ ॥
उच्चैः पदेष्वधिकृतो पि बहूनि राज
कार्यारायहर्निशमखिन्नहृदा विनन्वन्।
वाग्देव्युपासनममु चदपि क्षणाय
श्री मान् जयत्यभरगीः प्रणयी प्रसिद्धः ॥ १२ ॥
सम्प्रत्युज्झितत राजकीय सकलोदग्राधिकारस्पृहः
शान्तो दान्त उदात्तचारुचरितस्त्यक्तैषणा न्वेषणः।
एकान्ते श्रुतिमर्धतत्वमननं कुर्वन् प्रयागेस्थितो
गङ्गानाथ सुधीर्महानिव मुनिर्भान्यो जयत्युच्चकैः ॥ १३ ॥
क्षेत्रेशा मरनाथमुख्य विबुधै रन्ते वसद्भिः स्तुतो
गोपीनाथ कवीश्वरादि सुहृदां वृन्दैर्गिरा राधितः।
विद्येशो द्विजराजमौलिमहिते मेशप्रथा प्रीतिमान्
स श्री मान् विबुधः प्रसाद सुमुखो गङ्गादिनाथोस्तुतः ॥ १४ ॥

शास्त्रज्ञैः प्रतिभा विकास महितैः शिष्येरिह श्रीमतो
विख्यातै र्बुधपुङ्गवैश्च सरिवर्भिर्भान्यैः सपक्षैः परैः ।
ग्रन्थो यं स्वनिबन्ध रत्नघटितो भक्तयोपहारीकृतः
प्रीतिं कामपि कौतुकेन सहितां कुर्याच्चिरं चेतसि ॥ १५ ॥
दीनाभिमां सुरगवीमपमान गर्त्ता-
युद्धर्तुमेव सततं विहित प्रयत्नः ।
विद्वज्जोन्नयनयज्ञ गृहीत दीक्षः
प्रक्षालितेन्दु विशदा मित कीर्त्ति राशिः ॥ १६ ॥
रक्षिततुमिवमर्यादां विदुषां धृत विग्रहः सुनयः ।
श्रीमान गङ्गनाथोपाध्यायो भारती तनयः ॥ १७ ॥
अस्मिन् महति विद्धद्भिराब्धे वचना ध्वरे ।
मितैरप्युदेतैर्भक्त्या प्रीणातु वचनैर्मम ॥ १८ ॥

कर्मकाण्डी सर झा भारतीय संस्कृति के महान् उपासक थे । उस समय जबकि अंगरेजी सभ्यता के चाकचिक्य में लोग अपनी संस्कृति और परम्परा का उपहास करने लगे थे । सर झा ने उसी भाषा में पारम्परिक गरिमा से उन्हें परिचित कराया । सरल अंगरेजी में कठिन से कठिन विषयों को प्रस्तुत करने की आप में अपूर्व-क्षमता थी । इस प्रसंग में उनका यज्ञोपवीत विषयक एक निबन्ध सर्वथा स्मरणीय है-

Yajnopavita

Mahamahopadhyaya Dr. Ganganath Jha

(A) What is Yajnopavita ?

The earliest reference that we find is in the Taittiriya aranyka (2.1) where it is described as consisting of the skin or the cloth worn in a certain manner. Coming to the time of Manu, however, it seems to have become a mere thread, twisted in a particular manner (Manu - 2-44). This thread is to consist of three yarns twisted in to a cord. The exact number of such cords to be worn seems to have been a matter of option. Medhatithi says, either one,or three or five or seven are to be worn according to the view taken of the sacrifices at which it is to be worn; and according to him it is called 'Yajnopavita' because it is connected with sacrificial performances.

The thread primarily is to be of cotton; further are other substitutes; such as silk, Kusha, Jute, tree-bark or even a piece of cloth, according to RS Vashrnga. In fact Rsvashrnga and other authorities seem to support the view expressed in the Taithiriya aranyaka that it is a piece of cloth that should form the Upavita and the various kinds of threads are only substitutes to be employed in the absence of cloth. As regards the exact number of yarns to be twisted there is some difference of opinion.

The number of Upvitas to be worn depends upon the stage of life; for instance according to Bhrigu there should be one upavita for the student, two for the house holder and recluse are for the 'renunciate' only one.

(B) What is it to be worn ?

We have seen that Medhatithi seems to connect the wearing of the Yajnopavita with sacrificial session. The Grhya-Sutra also do not seem to speak of habitual wearing. In fact Apastamba has declared that it should be worn while saluting teachers, old men and guests, as also during Homa, Japa, meals, achamana, and recitation of the Veda. A quotation is however made from Katyayana's Chhandoga-Parishista in support of constant wearing-

सदोपवीतिना भाव्यं सदावङ्गशिखेन च ।

but when we read it along with the next line-

विशिखी व्युपवीतश्च यत् करोति न तत्कृतम् ।

We find the contact wearing mentioned in the first line is meant to apply to the time during which certain religious acts are being performed. This interpretation of this text is supported by the vir-mitrodaya. Like all older writers, Medhatithi appear to be wearing. On Manu (2-44), he has spoken of the thread as to be worn during sacrificial performances;

but while under 2.63 he speaks of it as to be worn at all time. Later on under 2.64, he says that the thread along with the staff and other things, should continue to be taken up through out the 'student age' and that the wearing of the thread forms part of vratas of the religious student. Devala says-

यज्ञोपवीतं द्वे धार्ये श्रौते स्मार्ते च कर्मणि

which also implies that it is to be worn only during religious performances. Bodhayana declares that one should not be without the Yajnopavita during the achamanas, so also Gautama. (1.38) Both point to the same conclusion.

The virmitrodaya (Saṁkara, Page 422) says that the wearing of of the Upavita is 'Karmanya' i.e. a part of the ritualistic performances. It however goes on the quote Bhrigu to be effect that when once the Upavita has been worn, it should never be removed; unless, of course, it breaks or become defiled, in which case a fresh one is to be worn.

Jaimint in his Mimamsa-Sutra describes the various methods of wearing the Upavita. A Vedic text is quoted, describing three methods:- (1) Nivita, where the thread hangs on the neck, both side of it, hanging ever the chest up to the navel, (2) Prachinavita, where the thread hangs on the right shoulder passing under the left arm and (3) Upavita, where it rests on the left shouder passing under the right arm. The third method is to be adopted during performances in honour of the Gods, the second, during those in honour of human beings, (Guestete), or during one particular physical act (according to the Parishista quoted in Viramitrodaya). According to the Mimamsa bhasya and other commentators the text that describes the three methods does not contain any injunction of wearing the thread at any time except during the performance of a particular sacrifice.

Even so, they describe it as mere arthvada. From this also it would appear that, the only vedic text that lends any colour to the view that the thread should be worn, supports the practice of occasional not habitual wearing.[1] (62-64).

गायत्र्युपासना नित्या सर्व वेदैः समीहिता ।
गायत्री मात्र निष्णातो द्विजो मोक्षमवापुयात् ॥

गायत्री के उपासक सर झा ने काव्य प्रकाश का वैदुष्यपूर्ण अनुवाद कर विभिन्न काव्यशास्त्रीय विषयों पर प्रकाश निक्षेपित किया । काव्यशास्त्र के आदि से अन्त तक के वैशिष्ट्यों का आपने गंभीरतापूर्वक अवलोकन कर उसकी विस्तृत समीक्षा की । सर झा के शब्दकोश में क्लिष्ट नामक कोई शब्द नहीं था । कोई विषय तभी तक क्लिष्ट है जब तक किसी गंभीर अध्येता की वहाँ तक दृष्टि न चली जाती । मात्र अठारह वर्ष की आयु में आपने काव्यशास्त्र का अनुवाद कर लिया था । महामहोपाध्याय कविशेखर बदरीनाथ झा जी ने सर गंगानाथ झा की गंभीर समीक्षा शक्ति तथा विस्तृत वर्ण्य विषयों को श्रद्धापूर्वक समेकित किया है । आपके विनम्र प्रयास को सहृदयों ने सादर स्वीकारा है । गंगानाथ झा स्मारक-ग्रन्थ में इसे ससम्मान प्रकाशित किया गया है । 'साहित्य-मीमांसा' अपने आपमें एक अतिविशिष्ट निधि है-

साहित्य मीमांसा

मंगलम्

तिरयन्ती कविचेत-स्तभः सतेतश्च कोरनिरम्वम् ।
मदयत्नी नक्तन्दिवभविलक्ष्या कोमुदी जयति ॥
(साहित्य स ज्ञानि रुक्तिस्त द्वैशिष्ट्यं च)
साहित्यं सहितानां भावः काव्येतदङ्गानाम् ।
सहितानि तानि वा तत् सप्तममाख्यायते शास्त्रम् ॥ २ ॥
प चदशं विद्यानां स्थानं सप्तममङ्कं श्रुतीनाम् ।
एकोनविंशतितमा विद्या तन्मन्यते प्राच्यैः ॥ ३ ॥

काव्य लक्षणा परीक्षे

काव्यं तत्र सहृदय-ह्लादक शव्दार्थयोर्युगलम् ।
न तु शब्दार्थो सगुणौ सालङ्कारवदोषो च ॥ ४ ॥

---

१ Sir Asutosh Memorial Volume (62-64).

शब्दार्थयोर्गुणानां विरहाद् भूषणभूयतः समेषाम्।
द्विविद्यालङ्कारणां, दोषाणां तत्वहान्प्राक्तेश्च ॥ ५ ॥
नापि रसात्मक वाक्यम रसषैधुर्म्यै पि केषाचित।
विच्छित्याधातृणां वाक्यानां तत्वतो नुभवात् ॥ ६ ॥
इदमेवेष्टार्थाव-च्छिन्नपदावलिरभ्यधायि पूर्वैः।
रमणीयार्थक शब्दश्चाप्यूचे वैश्चनार्वाम्भिः ॥ ७ ॥
किन्त्वथौ यदि काव्यं न स्यात्, तर्हि कथं तदेकनिष्ठाः।
उपमादयो भवेयुः केयूरादिवदलङ्कारः ॥ ८ ॥

काव्यजीवित निरूपणम्

ध्वर्थन्निरात्मनेव शरीरं जीवितमस्यामिधीयते कैश्चित्।
वक्रोक्तिमेव षोढ़ा निर्दिश्यात्मानमभिदधुः केचित्।
गुणवत्पदसङ्घटना - रूपां रीतिं तथैवान्ये ॥ १० ॥
औचित्यमेव नाना-भेदं जीवितमस्य के व्यवोचन्।
इतरे लङ्गारं त-न्नाम्ना व्यवहृतेः शास्त्रस्य ॥ ११ ॥
एषु तुममं द्वितीयं मतमुपयतेः सचेतसां विदुषाम्।
अव्याप्त्यादिकवलनदितरेषां स्वीकृतिः कठिना ॥ १२ ॥

काव्यात्मध्वनि निरूपणम्

वस्तुरसालङ्गार-स्वरुपमूचुर्ध्वनिं त्रिविधम्।
तत्प्रत्यायनकर्त्री वृत्ति च क्य जनानाम्नीम् ॥ १३ ॥
वस्तुस्वरुप मलङ्गार स्वरुप च
वस्त्वर्थः पृथगुक्तर्मिन्नो लङ्गार-रसप्रभृतिभ्यः।
व्यक्तोपमादयस्ते प्रकाश्यमानास्त्वलङ्कारः ॥ १४ ॥

रसादिनिरूपणम्

रस-भाव-तदाभासा भावोदय-शम-सन्धि-शाबल्यग्नि।
अष्टाविभे नुशिष्टा रसादयः केवलं व्यङ्गयाः ॥ १५ ॥
स्थात्यनुभाव विभाव-व्यभिवारिभिरन्वितो भावः।
आसादयति रसत्वं रसिकैरास्वाद्यमानः सन् ॥ १६ ॥
आस्वादामिन्नो सा-वानन्दाखण्ड चिद्रूपः।
ज्ञेयान्तराविभृष्टो ब्रह्मसदृक् स्वप्रकाशश्च ॥ १७ ॥
केचित् तत्सल्लग्नं मग्नावरणां चितं रसं प्राहुः।
वास्तविविवेचनाया भुमयोरैक्यं तयोः स्फुरति ॥ १८ ॥
अपरिच्छिन्न त्वादति-लौकिक भावाद्भुतानन्तरायत्वात्।

नित्या नित्य विलक्षण-भावाच्चैषो स्त्यनिर्वाच्यः ॥ १९ ॥
स्वामेदेनास्वादस्तत्सद् भावे सचेत सां मानम् ।
अतएवैषं नवीनैः सामाजिक वृत्तिरेवोक्तः ॥ २० ॥
रामादावनुकार्ये नटे नुकर्तरि च नैवायम् ।
अस्ति विरसता पातात् सचेत सामनुव्यवसितेश्च ॥ २१ ॥
शृङ्गार वीर करुणात् हास्याद्भत रौद्र वीभत्सात् ।
शान्तं भयानकं च व्याजह्वर्नव रसान् सुधियः ॥ २२ ॥
रतिमात्मजादि विषयां भाँवं स्थायिनमभ्युपेत्य केचित् ।
दशमं वत्सलस ज्ञक मधिकं रसमूचिरे कृतिनः ॥ २३ ॥
पूज्यरतिस्थयिक मपि भक्ति रसं केचनावोचन् ।
कार्पण्यमपि क्रियन्तो रसं स्पृहास्थायिकं जज्ञुः ॥ २४ ॥
कतिचिद् गर्वस्थायिकमुद्धत्तम ज्ञं रसं जगदुः ।
धैर्ये स्थायिनि दान्तं रस च धीराः परे विविदुः ॥ २५ ॥
आर्द्रयस्थायिक मितरे जगदुः स्नेहं रसं सुधियः ।
सत्यभिलाषे स्थायिनि लौल्यरसं भेनिरेचाये ॥ २६ ॥
शिष्टानुशिष्ट पद्धति-रेवात्र श्रेयसी श्रेया ।
भावेष्वन्तर्भाव मन्ये सुकरं यदन्येषाम् ॥ २७ ॥
उत्साहो वीरे स्याद् रौद्रे क्रोधो रतिश्च शृङ्गारे ।
शान्ते शमो जुगुप्सा वीभत्से विस्मयो द्भुतके ॥ २८ ॥
करुणे रसे च शोको हास्ये हासो भयानके भीतिः ।
स्त्रजिगुणवत् सम्पृक्तो भावः स्थायीरितः कृतिभिः ॥ २९ ॥
चेतोवृत्ति विशेष-स्थायिजनयितेदितो विभावो यः ।
आलम्बन मुद्दीपन मितिभेदद्वय मेतदीयम् ॥ ३० ॥
व्यभिवारिणस्तु भावा निर्वेदाद्यास्त्रयस्त्रिंशत् ।
आलम्बन चेष्टाद्याः स्थायिभावाश्चानु भावास्ते ॥ ३१ ॥
स्थाय्येकलः प्रमुखतां व्यभिचारीचाप्नुवन्भावः ।
रसभावानौचित्य-प्रवृत्ति योगात् तदाभासौ ॥ ३२ ॥
भावोदयस्तु भावे व्युदेत शान्ते च तच्छान्तिः ।
तत्सन्धिः समबलयोर्मिश्रणतश्चानयोर्ज्ञेयः ॥ ३३ ॥
कथितं तच्छावल्यं भावानां पूर्वपूर्वसम्मर्दात् ।
आविर्भावः, सर्वे मन्यन्ते भी रसारसनयोगात् ॥ ३४ ॥

काव्यकारण निरूपणम्

व्युत्पत्यभायासाम्यां सहितां प्रतिभां तदुद्भवेहेतुम् ।
तामेव वा स्वतन्त्रां मन्यन्ते तौ च तद्धलकौ ॥ ३५ ॥

काव्यप्रयोजनकथनम्

तस्य फलं निर्मातुः कीर्त्तिचतुर्वर्गकलुषमोषाद्यम्।
प्रतिपत्तुविज्ञानं निर्वृतिरसमोपदेशश्च ॥ ३६ ॥

काव्यभेद निरूपणम्

काव्यं त्रिधोत्तमं वा मध्यम मद्यमं, ध्वनिस्तत्र।
प्रथमं शब्दार्थाधिक-विच्छित्याधायिनि व्यङ्ग्ये ॥ ३७ ॥
व्यङ्ग्ये गौणे तुगुणो-भूत व्यङ्ग्यं द्वितीयं तत्।
चित्रमलङ्कृतिचित्रं तृतीयमविवक्षिते व्यङ्ग्ये ॥ ३८ ॥
यश्चत्तमोत्तममिति-प्रकारमाख्यत् तुरीयं सः।
निज काव्य पक्षपातादनवस्थापातभवमेने ॥ ३९ ॥
द्वेधा ध्वनि रविवक्षित-वाच्यो यल्लक्षणामूलः।
अभिधामूलः ख्यातो विवक्षितान्यपरवाच्यश्च ॥ ४० ॥
तत्राद्यस्यार्थान्तर-सङ्क्रमितस्वार्थनामैकः।
अपरो न्यन्ततिरस्कृत-वाच्यो भेदो मतः कृतिनाम् ॥ ४१ ॥
चरमस्यासल्लंक्ष्यक्रमो रसादिध्वनिः प्रथमः।
शब्दार्थ शक्तिजन्मा भेदो लक्ष्यक्रमो प्यपरः ॥ ४२ ॥
इतराङ्गं व्यङ्ग्यं स्यादगूढमस्फुटं वाच्यसिद्ध्यङ्गम्।
सन्दिग्धप्रधान्यं तुल्य प्राधान्यम सुन्दरं यत्र ॥ ४३ ॥
काक्वाक्षिप्तं च गुणीभूतव्यङ्ग्यस्य ते भेदाः।
शब्दार्थ चित्र भेदाद् द्विविधं चित्रं समाम्नातम् ॥ ४४ ॥
यत्काव्यस्य नवीनै रसादिमात्रात्मतां मत्वा
व्यसनं तद् व्यसनं ध्रुवमस्य तृतीयप्रकारस्य ॥ ४५ ॥
तदवान्तर प्रकारा विवृताः प्राच्यैर्विशेषेण।
विपुलत्वादिह तेषां सङ्ख्यानं नो विधीयते स्माभिः ॥ ४६ ॥

प्रासङ्गिक व्यजनानिरूपणम्

सङ्केतानुपुलम्भात् स्वशब्दवाच्यत्वदोषाच्च।
अभिधा स्वकृत्यविरता नास्ति रसादि प्रकाशनेशक्ता ॥ ४७ ॥
वाच्यार्थबाध विरहात् प्रयोजनादेरदर्शनाच्चेवम्।
एतान् प्रत्याययितुं जातु भवेन्नापि लक्षणा दक्षा ॥ ४८ ॥
सम्बन्ध बोधनार्थं कियद्भिरेवाश्रिता तद्वत्।
तात्पर्यवृत्ति रपितान् बोधयितुं न क्षमा भवति ॥ ४९ ॥
व्यभिचारासिद्धिभ्यां दुष्टत्वादिष्टहेतूनाम्।
अनुमानमपि कथचित् प्रभवति नैतान् प्रकाशयितुम् ॥ ५० ॥

तद्रूपा र्थापत्ति-व्यभिचारग्रासतो हेतोः ।
स्मृतिरपि नैवामीषां धत्ते प्रत्यापने शक्तिम् ।। ५१ ।।
पद वाक्य वर्ण रचना चेष्टा र्थाद्याश्रया तस्मात् ।
उरीकृता तदर्थ तुर्या त्रव्य जनावृतिः ।। ५२ ।।

काव्याङ्गनिरूपणम्

रीति गुणालङ्कङ्करच्छन्दांस्यङ्गनि काव्यस्य ।
अङ्गविहीनं वपुरिव तद्विकलं शोभतेनेदम् ।। ५३ ।।
व्यवहितरसोपकर्त्री पदसन्दर्भात्मिका रीतिः ।
नीवृद्विशेष रचना-परिपाटी भेदतो भिन्नता ।। ५४ ।।
वैदर्भी गौड़ी तां पा चालीं च त्रिधा केचित् ।
लाटीयुतां चतुर्धा तामेव व्याहरन्त्यपरे ।। ५५ ।।
प्राच्यावन्ती सहितां षोढ़ा तामुपदिशन्त्यन्ये ।
आसु तु गुणानुसारात् त्रिधा व्यवस्थैव साधिष्ठा ।। ५६ ।।
वैदर्भ्युपनागरिका गौड़ी परुषा पुरातनैः कैःश्चित ।
पा चाली ग्राम्येत्थं रीतिवृंतिः स्फुटं कथिता ।। ५७ ।।
रसमात्र वृत्तयो ये साक्षादेवोपकारकास्तेषाम् ।
उक्तास्त्रयो गुणास्ते माधुर्य्यौजः प्रसादाख्याः ।। ५८ ।।
शब्दान् दशदश चार्थान् मन्यन्ते यद्गुणान् प्राच्याः ।
खण्डितभर्वाचीनै-र्भङ्गीमिस्तद् विचचित्राभिः ।। ५९ ।।
तत्रेदं द्रष्टव्यं सौन्दर्य्याद्या यथा वपुषि लोके ।
शब्दार्थ वृत्तयः स्युस्तथा गुणानो कथं काव्ये ।। ६० ।।
शब्दार्थयोर्मधुरयोरु चितवसरे श्रुति प्रतीबितचेत् ।
आह्लादयतो रसिकान् किंन तदा ते गुणाःकल्प्याः ।। ६१ ।।
शब्दार्थावधिशयितास्तदभिन्ना ये परम्परया ।
उत्कर्षका रसानां, मन्यन्ते तानलङ्करान् ।। ६२ ।।
ते नृप्रासप्रमुखः शब्दे र्थे चोपमाद्यास्तत् ।
प्रत्येकं विविधा अपि सामान्येन द्विधा कथिताः ।। ६३ ।।
पुनरुक्तवदाभास-प्रभृतीनां श्लेषिरुपकन्यायात् ।
अन्तर्भावः श्रेया-नर्थालङ्कार निकुरम्बे ।। ६४ ।।

पुनरन्यथा काव्य भेदनिरूपणम् ।

काव्यं पुनर्द्विधातद् दृश्यं श्रव्यं च रुपक प्रमुखम् ।
अभिनयं दृश्यं स्याच्छव्यमनेतत्तु सर्गबन्धादि ।। ६६ ।।

उपसंहारम्

स्वमत गुणेन ग्रथिता चिररत्नसिद्धान्तरत्नमालेयम् ।
सहृदयहृदये राधा-गोविन्दानुग्रहाल्लसतु ॥ ६७ ॥
मानुष्यक सुलभ त्रुटि-पूर्त्तिमिहः श्लाध्यसौजन्याः ।
बिवुधाः समाधि कुशलाः स्वयं विधास्यन्त्यनाभासम ॥ ६८ ॥
बदरीनाथ विरचिता सूक्ष्मा साहित्य मीमांसा ।
श्रुत जलधिचारदृश्य श्री गङ्गानाथ तुष्टयेभूयात् ॥ ६९ ॥

इति साहित्य मीमांसा ॥[१]

किसी भी विषय को स्पष्ट करने की सर झा में अपूर्व क्षमता थी। भारतीय दर्शन के बीहड़ में मार्ग निकाल लेना साधारण प्रतिभा से संभव नहीं। तत्त्व कौमुदी में प्रयुक्त अहंकार शब्द की व्याख्या आपने इस प्रकार की है कि कहीं किसी शंका का शेष नहीं रह जाता-

	अहङ्कार	
सात्त्विक (वैकृत)	राजस (तैजस)	तामस (भूतादि)
इन्द्रिय		तन्मात्राप चक्र

	अहङ्कार	
सात्त्विक	राजस	तामस
मनस्	इन्द्रिय	पञ्चतन्मात्रा

वैकाश्किस्तैजसश्च तामसश्चेत्यहं त्रिधो ।
अहं तत्वादिकुर्वाणान्मनो वैकारिकादभूत् ॥
वैकारिकाश्च ये देवा अर्थाभिव्य जनं यतः ।
तैजसादिन्द्रियाण्येव ज्ञानकर्ममयानि च ॥
तामसो भूतसूक्ष्मादिर्यतः खंलिङ्गमात्मनः ।

श्लोकवार्त्तिक के मुख्य पृष्ठ पर अंकित है-

---

१ कविशेखर बदरीनाथ झा.

BIBLIOTHECA INDICA

A

COLLECTION OF ORIENTAL WORKS

PUBLISHED BY THE

ASIATIC SOCIETY OF BENGAL

C, LOKA VARTIKA

Translated from the Original Sanskrit with Extracts From the Commentaries of SUCARITA MISHRA (The KASIKA) And PARTHASARATHI MISHRA (The NYAYA RATNAKAR)

By

GANGA NATH JHA, M.A.

Professor of Sanskrit, Muir Central College,

ALLAHABAD

CALCUTTA

ASIATIC SOCIETY, 57, PAR STREET

1909

श्लोक वार्त्तिक का प्रकाशन वर्ष १९०९ में बंगाल एसियटिक सोसाइटी के द्वारा हुआ। श्लोक वार्त्तक जैसे ग्रन्थ का सफलतापूर्वक अनुवाद कर आपने साहित्य जगत को अपनी मेधा का अभिनव परिचय दिया। उदाहरणार्थ-

(183)The Mimamsakas again do not necessarily admit the existence of atoms; and so upon that ground you cannot postulate the falsity of a perceived entity.

(184)One, who would the visible concrete whole, by means of invisible atoms, would also assert the absence of here, through its horns;

(185)It is only when the existence of a concrete whole is established as a faot, that the existense of

atoms is postulated, and that simply as a means for the accomplishment of the idea of the whole.[1]

Purva Mimamsa in its sources

पूर्व मीमांसा विषयक सर गंगानाथ झा जी के ग्रन्थ का सम्पादन सर्वपल्ली डा. राधाकृष्णन ने किया है। इसकी भूमिका का लेखन डा. राणाडे ने किया है। परिचयात्मक टिप्पणी देने का गुरुतर कार्य डा. अमरनाथ झा जी ने किया हैं। संपादकीय टिप्पणी के अन्तिम अंश में राधाकृष्णन लिखते हैं-

In this series, it is proposed to bring out studies of ancient Indian classics and thought by competent scholars who have looked at them with new eyes and greater freedom. We are proud that the first volume is by that great scholar Mahamahopadhyaya Dr. Sir Ganganath Jha. His refined, gentle and retiring nature, combined with his wide culture and intence seriousness gave us the impression of one who lived the religion he professed and this volume by him is a masterpiece of completeness, clarity and compression.

Radha Krishnana

भूमिका लेखन के क्रम में डा. राणाडे ने सर झा के प्रति स्वाभाविक श्रद्धा भाव समर्पित करते हुए लिखा है-

I do not know that there has been any scholar in the whole length and breadth of India who has worked on the Philosopy of Mimamsa so much and so intently as Dr. Sir Ganganath Jha has done. His translation of the SLOKAVARTTIKA and Tantra Vartika, as well as Shabarabhasya have been monumental. A pinnacle was required to be placed on the edifice and the present work, summing up in a Philosophical manner the teaching of the great Mimamsaka Philosopher, supplied the much needed desideratum. It is no exaggeration to say that if reincarnation may be regarded as valid, Dr. Ganga nath Jha might be

---

१ श्लोकवार्त्तिक, पृष्ठ - २०७

taken to be an avatara of Kumarila. His Doctorate thesis was on Prabhakara no doubt, but the cosummation of his Life's work was in the exposition of the Philosophy to Kumaril which has not been attempted by any body hitherto. Like Kumaril, Sir Ganga nath Jha left his mortal body on the banks of the Ganges at Prayaga..

R.D. Ranade

कुमारिल भट्ट विरचित शाबर भाष्य की टीका 'तन्त्रवार्त्तिक' का अनुवाद संस्कृत साहित्य के लिए अत्यधिक लाभप्रद प्रमाणित हुआ। इसका पुनर्प्रकाशन वर्ष १९२४ में हुआ। तन्त्रवार्त्तिक के परिचयात्मक परिच्छेद में सर झा ने पूर्व मीमांसकों, जैमिनि, शाबर, कुमारिल, प्रभाकर सहित अपने गुरुजनों के प्रति आदर भाव प्रकट करते हुए लिखा है-

I cannot let this opportunity pass of acknowledging my obligations to -

1.Mahamahopadhyaya Pandit Chitradhar Mishra with whom I read all the Mimansa that I know

2.to my friend Babu Govinda Dasa of Banaras, my life-long 'literary mentor' and (3) to my patron, the late Maharaja Lakshmishwar Singh Bahadur of Darbhanga, to whose kindness and loving care I owe what I am, have, and am going to be in the world.

विशुद्ध ज्ञानदेहाय त्रिवेदी दिव्य चक्षुषे।
श्रेयः प्राप्तिनिमित्ताय नमः सोमार्द्धधरिणे॥

तन्त्रवार्त्तिक के अनुवाद से आपको जहां अत्यधिक ख्याति मिली वहीं इस विशालकाय ग्रन्थानुवाद ने आपको प्रचुर अर्थ भी प्रदान किया। तन्त्रवार्त्तिक का अनुवाद संस्कृत साहित्य के शोधार्थियों तथा यूरोपीय साहित्य रसिकों के लिए एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण अवदान प्रमाणित हुआ। इसका अनुवाद अत्यधिक उदात्त और उपयोगी है-

Adhikarana (10)

(Treating of the fact of words like 'Vaic, Vadeva' being names of Sacrifices)

Sutra (13) In the case of the word 'Vaic, Vadeva' there is an option'.

The case of the word 'Vaic, Vadeva in the sentence 'Vai, Cvadevena Yajeta' does not come in any of the foregoing Adhikaranas; for (1) the Accessory - Deity in the case being mentioned by means of the nominal affix, (2) the acceptance of such an Injunction does not necessitate the assumption, and as such there can be no syntactical split; (3) nor is there any other Injunction of the Deities of the whole chaturmasya sacrifice; (4) nor is the nominal affix inexplicit in this case, as is the compound in the word 'Agnihotra', specially as in all cases, the eity is laid down by means of such nominal affixes.

महत्वाकांक्षी अनुवाद 'शाबर भाष्य' का प्रकाशन महाराज बड़ौदा के सहयोग से बड़ौदा ओरियंटल सिरीज, बड़ौदा से हुआ। इसके अनुवाद का प्रारंभ 'इण्डियन थॉट' के प्रसंग से स्वयं डा. थीबो ने किया था।किन्तु कलकत्ता चले जाने के उपरान्त वे कार्य को आगे न बढ़ा सके। सर झा ने परिश्रमपूर्वक इस कृति का पूर्णानुवाद किया और इसे गायकवाड ओरियन्टल सिरीज ने प्रकाशनार्थ स्वीकृति प्रदान की। सर झा ने इस पुस्तक के पुरोवाक् में लिखा है-

It is a matter of satisfaction to me that this work of mine (perhaps the last in my present life) has been able to secure a place in the 'Gaekwad's Oriental Series'. It is a well known fact that much important work has been, and is being, done at Baroda; and it is difficult now a days to find a publisher for a work that has the misfortune of appertaining to a field of scholarship which never 'popular', is becoming increasingly 'unpopular' under the stress of the pressing conditions of modern times. The encouragement therefore that an oriental scholar receives at the hands of H.H. the Gaekwad becomes all the more appreciated, one hopes that the work offered here to the world of scholarship will be received with due indulgence, on account of the fact that Shabarna Bhasya has been

regarded as one of the most difficult 'Bhasyas' by reason of its archaic Language and Cryptic style. The fact of its having been included in the 'Gaekwad's Series' lends encouragement to that hope.

Ganga Nath Jha

'वादिविनोदः' का संपादन कर आपने एक महत्वपूर्ण ग्रन्थ से साहित्य संसार को परिचित कराया। श्री श्यामाचरण संस्कृत ग्रंथावली के ग्रन्थाङ्क - २ के रूप में इसका प्रकाशन हुआ। इसकी भूमिका में सर झा ने मूल लेखक महामहोपाध्याय पं. शंकर मिश्र का सादर उल्लेख कर उनकी मूल अभ्युक्ति का भी उल्लेख किया है-

याभ्यां वैशेषिके तंत्रे सम्यग्व्युप्तादिते स्मयहम्।
कणाद भवनाथाभ्यां ताभ्यां मम नमः सदा॥
भवनाथ सुक्ति गुम्फनमिह खंदनखाद्यटीकायाम्।
श्री शंकरेण विदुषा विदुषामानन्दवर्धनं क्रियते।
स्वभ्रातुर्जयनाथस्य व्याख्यामाख्यातवान् यतः।
मत्पिता भवनाथो यं तामिहालिखभुज्ज्वलम्॥

संपादन तथा संशोधन जन्य भ्रान्तियों के लिए खेद प्रकट करते हुए सर झा लिखते हैं-

महत्ता यासेन संशोधिते प्यास्मिन्ग्रन्थे पुस्तकयोर्षिकलाङ्गतया वहुषु स्थलेषु स्खलितनि सन्त्येव तदर्थं विदुषां सहृदयानां क्षमां प्रार्थयते।

विद्वज्जनानुचरो

गंगानाथः

वादि विनोद एक उत्कृष्ट ग्रन्थ है। इसे प्रकाश में लाने का सम्पूर्ण श्रेय डा. गंगानाथ झा को ही है। इस पुस्तक की भाषा अत्यन्त सुन्दर, आकर्षक और उदात्त है-

जयति रति विलासे सागसः शङ्करस्य
स्मरनिग निबन्धः का चनः शैलपुत्रयाः।
गरलकवल काली भूत भूतेश कण्ठ-
स्थल जलधर विद्युद्दिभ्रमा बाहुवल्ली॥ १॥
उपकर्तुं विजिकीषूनपकर्तुंभहंगतान् विदुषः
वादिविनोदः क्रियते शङ्करकृतिना विविच्य तन्त्राणि॥

ग्रन्थ के पंचम उल्लास में कवि की उक्ति है-

विवाद प्रारम्भः कथयतितरां नाम भवति,
गुणानां गाम्भीर्ये भवति वतासाक्षी कलकलः।
पयः कुम्भःपूर्णो ध्वनति न तथा वातवलितो
यथा रिक्तम्भाण्डम ध्वनिभनिभृतम्भु चतिमुहु ॥

ग्रन्थ के अन्त में आप कहते हैं-

अकृत भवानीतनयो भवनाथ सुतो भवार्चने व्यग्रः।
एतं वादि विनोदं जगदुपकाराय परिकरः श्रीमान् ॥

संकर्षकाण्ड सहित षोडश लक्षणी पूर्व मीमांसा और चतुरध्यायी उत्तरमीमांसा में अधोलिखित आचार्यों के नामोल्लेख पूर्वक मत उद्धृत हैं-

आत्रेय ४/३/१८ ॥ ६/१/२६ ॥

आश्मरथ्य ६/५/१६ ॥

एतिशायन ३/२/४३ ॥ ३/४/२४ ॥

कामुकायन ११/१/५६ ॥

कारुर्णाजिनि ४/३/१७ ॥

जैमिनि ३/१/४ ॥ ६/३/४१ ॥ ८/३/७१ ॥

बादरायण १/१/५ ॥ ५/२/१९ ॥

बादरि ३/१/३१ ॥

लाबुकायन ६/७/३७ ॥

संकर्षकाण्ड रुप पूर्वमीमांसा में निम्न आचार्य स्मृत है-

आलेखन २/२/४१ ॥

आश्मरथ्य २/२/४२ ॥

औडुलोमि ३/१/३१ ॥

कार्ष्णाजिनि १/१/११ ॥

बादरायण ३/२/३८ ॥

उत्तर मीमांसा -

आत्रेय ३/४/४४ ।

आश्मरथ्य १/२/२९ ॥ १/४/२० ॥

औडुलोमि १/४/३१ ॥ ३/४/४५ ॥

काशकृत्स्न १/४/२२ ॥

कारुर्णाजिनि ३/१/९ ॥

जैमिनि १/२/२८ ॥, १/२/३१ ॥, १/३/३१ ॥

बादरायण १/३/२६ ॥, १/३/३१ ॥, ३/२/४१ ॥

बदरि १/२/३०, १/२/३१ ॥, १/२/९१ ॥

विंशति अध्यायात्मक मीमांसा शास्त्र में समूहावलम्ब से निम्न १२ आचार्य स्मृत हैं-

आत्रेय	औडुलोमि	जैमिनि
आलेखन	काकुकायन	बादरायण
आश्मरथ्य	काशकृत्स्न	बादरि
एतिशायन	कार्ष्णाजिनि	लाबुकायन

भगवान पतंजलि विरचित महाभाष्य में काशकृत्स्नि प्रोक्त मीमांसा का उल्लेख मिलता है।

सुचरित मित्र और पार्थसारथि मिश्र द्वारा उल्लिखित गुरु परम्परा के ब्रह्मा, महेश्वर, प्रजापति, इन्द्र, आदित्य, वशिष्ठ और पराशर नामों को जोड़ने पर मीमांसा - प्रवक्ता उन्नीस आचार्यों का परिज्ञान होता है। मीमांसा अध्ययन को जिन चार विशिष्ट युगों में विभक्त किया गया है वे हैं-

(क) देवयुग

(ख) ऋषि युग

(ग) मुनि युग

(घ) आचार्य युग

मीमांसा दर्शन के उन्नीस प्रवक्ताओं में सर्वाधिक महत्वपूर्ण नाम है जैमिनि।

भगवान जैमिनि कृष्णद्वैपायन के प्रिय शिष्य थे। आपको व्यासजी ने सामवेद पढ़ाया था। जैमिनि ने साम सम्बंधी जैमिनीय संहिता-ब्राह्मण-उपनिषद्-स्रोत और गृह्य सूत्रों का प्रवचन किया था। जैमिनि ने ही षोडशाध्यायी पूर्व मीमांसा का प्रवचन किया था।

पञ्चतन्त्र के एक प्रसिद्ध श्लोक के अनुसार-

सिंहो व्याकरणारास्य कर्तुरहरत् प्राणान् प्रियान् पाणिनेः।
मीमांसाकृतभुन्नमाथ सहसा हस्ती मुनिं जैमिनम्॥
छन्दो ज्ञाननिधिं जधान मकरो वेलातटे पिङ्गलम्
अज्ञानावृत चेत सामतिरुणां वेग थस्तिरश्चां गुणैः॥

अर्थात् अष्टाध्यायी के आदरणीय प्रवक्ता पाणिनि को सिंह ने मारा था, मीमांसा प्रवक्ता जैमिनि को हाथी ने रौंदा था और छन्दशास्त्र प्रवक्ता पिङ्गल को समुद्र तट पर मकर ने निगल लिया था।

बोधायन से प्रारंभ मीमांसा दर्शन के भाष्यकारों में सर्वाधिक ख्यातिनाम भाष्यकार हुए शबरस्वामी। शबरस्वामी ने संकर्षकाण्ड को छोड़कर शेष द्वादशाध्यायी मीमांसा पर भाष्य की रचना की। इस भाष्य का परिणाम चौत्रीए सहस्त्र श्लोक है। सम्प्रति मीमांसा-वाङ्मय में सबसे प्राचीन उपलभ्यमान शब्रस्वामी का भाष्य ही है। शबरस्वामी द्वारा विरचित भाष्य की वाक्य रचना पर पतञ्जलि कृत महाभाष्य का प्रभाव परिलक्षित होता है। शाबर भाष्य के प्रमुख व्याख्याकार हुए भट्ट कुमारिल। एक दिन जब षोडशीवाला के मुख से

'को वेदान उद्धरिष्यति ?'

सुना तो उनके हृदय को चोट लगी। उस बाला के करुण स्वरों ने कुमारिल के हृदय में बौद्धों के विरुद्ध दहकती अग्नि में घृताहुति का काम किया। अधीर होकर सान्त्वना के स्वर में कुमारिल ने कहा-

'मा रुदिहि वरारोहे भट्टाचार्यो स्मि भूतले।'

हे श्रेष्ठ वाले मत रोओ। वेद का उद्धार करने को मैं भट्टाचार्य अभी भूतल पर विद्यमान हूँ।

इसके पश्चात् बौद्ध मतों को गंभीर अध्ययन कर अपनी प्रखर मेधा और प्रबल तर्क से स्थान-स्थान पर बौद्ध विद्वानों को परास्त किया और वेदों का पुनरुद्धार किया। भट्ट कुमारिल ने श्लोकवार्त्तिकमें किसी सर्वज्ञ ईश्वरादि का प्रवलता पूर्वक खण्डन किया है। श्लोक-वार्त्तिक तथा टुप् टीका इनके इतर ग्रन्थ है। मीमांसक प्रभाकर मिश्र भट्ट कुमारिल के ही शिष्य थे। मीमांसाविषयक भट्ट कुमारिल का मत मुनिमत के नाम से सुविख्यात है।

एक बार विशेष कक्षा में भट्ट कुमारिल अपने शिष्यों को पढ़ा रहे थे। पाठ में एक पंक्ति आ गई-

'अत्रापि नोक्तम् तत्र तु नोक्त मिति द्विरुक्तम्।'

अर्थात् यहाँ भी नहीं कहा, वहाँ भी नहीं कहा यह दो बार उक्त है। इस पंक्ति पर कुमारिल सोचने लगे कि यहाँ भी नहीं कहा, वहाँ भी नहीं कहा तो यह दो बार कथित कैसे हुआ ? भट्ट कुमारिल ने पाठ यहीं पर समाप्त कर दिया और कार्यान्तर से बाहर चले गए।

पश्चात् एक शिष्य ने इस पंक्ति के विषय में एक पत्र पर 'अत्र अपिता उक्तम्, तत्र तुना उक्तम्' (अर्थात् यह बात अपि शब्द से कही गई है और वहाँ 'तु' शब्द से। इस प्रकार एक ही अभिप्राय से दो बार कहा गया है। लिखकर गुरुपत्नी को दे दिया और चला गया।

कुमारिल के आने पर पत्नी ने वह पत्र दिया तो उसे गंभीरतापूर्वक पढ़कर छात्र की मेधा पर आप विमुग्ध हुए। विस्मित होकर पत्नी से पूछा कि आर्ये ! इसे कौन छात्र दे गया था। पत्नी ने कहा- प्रभाकर ने। अगली कक्षा में कुमारिल ने छात्रों के सम्मुख ही प्रभाकर की प्रशंसा करते हुए कहा-

'त्वमेव गुरुः।'

अर्थात् तुम ही गुरु हो। इसके बाद प्रभाकर गुरु नाम से ही प्रसिद्ध हुए। उनका मीमांसा विषयक मत गुरु मत कहलाया। प्रभाकर ने लघ्वी तथा वृहती नाम से दो टीकाओं की रचना की। वृहती का निबन्ध और लघ्वी का विवरण भी नामान्तर है। प्रभाकर के उपरान्त भट्ट मुरारि मिश्र ने शाबर भाष्य पर उत्कृष्ट टीकाएँ लिखी। डा. सर गंगानाथ झा ने सम्पूर्ण मीमांसा दर्शन का अध्ययन करने के पश्चात् प्रभाकर को ही अपने मीमांसा विषयक दर्शन का केन्द्र बनाया। शाबर भाष्य के अनुवाद के क्रम में आपने सम्पूर्ण मीमांसा विषयक तथ्यों का गंभीरतापूर्वक अवलोकन किया है।

स्वर्भानु असुर के द्वारा सूर्य के तम से आवृत होने तथा तम को दूर करने का वर्णन ऋग्वेद के चार मन्त्रों में मिलता है।

'अत्रिः सूर्यस्य दिवि चक्षुराधात् स्वर्भानोरपभाया अधुक्षत्।'

जैमिनि ब्राह्मण के अनुसार- 'सूर्य को स्वर्भानु असुर ने तम से आच्छादित कर दिया था। देवों तथा ऋषियों ने उसकी चिकित्सा की। देवों ने अत्रि ऋषि से कहा कि कृपया आप इस तम को दूर करें।'

स्वर्भानु असुर की भाँति बौद्धों ने भी वैदिक सूर्य को आत्मसात करने का प्रयास किया किन्तु भट्ट कुमारिल और प्रभाकर जैसे साधकों ने वैदिक सूर्य पर छाये बौद्धों के तम का उपचार किया। आधुनिक काल में मीमांसा दर्शन पर छाये अन्धकार को डा. सर गंगानाथ झा ने निज प्रतिभा के बल पर विदीर्ण किया और वैदिक ज्ञान की किरणों को प्रसरित किया। संस्कृत के अत्यन्त गूढ़ ज्ञान

को आपने लेखनी के चमत्कार से यूरोपीय दार्शनिकों, चिन्तकों तथा मनीषियों के लिए भी सुलभ कर दिया।

भारतीय दर्शनों में मीमांसा दर्शन का अपना पृथक् वैशिष्ट्य है। षड् दर्शनों में यही सर्वाधिक विशाल है। इसकी सूत्र संख्या दो सहस्र छः सौ चौवालिस है, जो शेष पाँचों दर्शनों की सम्मिलित संख्या के बराबर है।

मीमांसा में वैदिक कर्मकाण्डों की समस्याओं तथा शंकाओं का समाधान किया गया है। इसमें सृष्टि, आत्मा, जीव, कर्म, अकर्म जैसे दार्शनिक विषयों पर नाममात्र को विचार किया गया है और सारी शक्ति यज्ञों के कर्मकाण्ड सम्बन्धी वैदिक-वाक्यों का अर्थ समझाने में लगा दी गई है। इस दर्शन के प्रथम सूत्र में ही कहा गया है-

'अथातो धर्म जिज्ञासा।'

अर्थात् अब धर्म पर विचार किया जाता है। यह दर्शन लोक और परलोक में कल्याण की प्राप्ति कराने वाले साधन 'धर्म' के सम्बन्ध में विचार करता है। इसी दृष्टि से मीमांसा ग्रन्थ को दर्शन की संज्ञा से अभिहित किया गया है। धर्म-क्रियाओं की सार्थकता तथा प्रामाणिकता को सिद्ध करते हुए इसमें ईश्वर, आत्मा, कर्म, मोक्ष आदि की भी कुछ चर्चा जहाँ - तहाँ आ गई है। इसी आधार पर सर झा ने मीमांसा के दार्शनिक सिद्धान्तों की समीक्षा की है।

मीमांसा दर्शन में यज्ञ विषयक विंस्तृत चर्चा की गई है। यज्ञ भारतीय समाज की अति प्राचीन संस्था है अतः इस दर्शन की प्राचीनता स्वतः प्रमाणित हो जाती है। वर्तमान समय में मीमांसा का जो रूप प्राप्त है वह बौद्ध धर्म की उत्पत्ति के पश्चात् का ही है। श्री शङ्कराचार्य ने अपने सर्वदर्शन में लिखा है-

बौद्धादि नास्तिक ध्वस्त वेदमार्ग पुराकिल।
भट्टाचार्यः कुमारांशः स्थापयामास भूतले ॥

अर्थात् जिस वेदमार्ग का बौद्ध आदि नास्तिक मतावलम्बियों ने पुराने समय में विध्वंश कर दिया था, उसी को कुमारिल भट्टाचार्य ने पृथ्वी पर पुनः स्थापित किया।

कुमारिल भट्ट श्री शङ्कराचार्य के समकालीन माने जाते हैं और उनका समय सातवीं शताब्दी के लगभग स्वीकार किया गया। ये 'मीमांसा शास्त्र' के सर्वप्रसिद्ध प्रचारक हुए और आप ही के उद्योग से बौद्ध धर्म का पराभव होकर पुनः वैदिक धर्म की जड़ जमाने का उपक्रम हुआ।

मीमांसा सूत्र के रचयिता जैमिनि का समय इससे लगभग एक सहस्र वर्ष पूर्व है किन्तु बोद्धों के यथाचार की आँधी में यह विलुप्त सा ही रहा। मीमांसा पर प्रथम भाष्य शबर-स्वामी ने ही लिखा।

इनका समय ईसा की दूसरी सदी बताया गया है। कहते हैं इनका वास्तविक नाम आदित्यदेव था किन्तु विरोधियों और वेद द्रोहियों के भय से आपको जङ्गलों में भील का वेश धारण कर छिपकर रहना पड़ा। इस भाष्य को प्रथमतः कुमारिल ने ही अपनी वृहत टीका के साथ प्रकाशित - प्रचारित किया। कुमारिल ने अत्यन्त कौशल से बौद्ध मत का पूर्ण ज्ञान प्राप्त किया और उसका खण्डन कर वैदिक मत की स्थापना की। आपही के शब्दों में-

प्रायेणैव हि मीमांसा लोके लोकायतीकृता।
तामास्तिक पथे कर्तुमयं यत्नः कृतोमया॥

अर्थात्, मीमांसा शास्त्र लोकायती अर्थात् नास्तिक लोगों के अधिकार में आ गया था। मैंने उसका उद्धार करके आस्तिक पथ पर लाने का प्रयत्न किया है।

कुमारिल की योग्यता और परिश्रम से इस शास्त्र को नवजीवन प्राप्त हो गया। अनेक प्रतिभाशाली शिष्यों के माध्यम से आपने मीमांसा मत का प्रचार-प्रसार किया। इन शिष्यों में प्रभाकर मिश्र तथा मण्डन मिश्र सर्वोपरि हैं। मण्डन मिश्र श्री शंकराचार्य से पराजित होकर सुरेश्वराचार्य के नाम से उनके शिष्य बन गए और प्रभाकर मिश्र ने शाबर भाष्य पर दो नवीन टीकाएँ लिखकर अपना स्वतन्त्र सिद्धान्त गुरु मत के नाम से प्रचारित किया। आज के समय में मीमांसा का सर्वाधिक प्रमाणिक और सुदृढ़ विवेचन प्रभाकर मिश्र का ही माना जाता है। जगद्गुरु शंकराचार्य के प्रादुर्भाव के उपरान्त मीमांसा-पक्ष का प्रचार-प्रसार धूमिल हो गया। इसका प्रचार-प्रसार मुख्यतया मिथिला और आन्ध्रप्रदेश तक ही सीमित रहा। सर झा के अनुसार-

'पन्द्रहवीं शताब्दी में मिथिला नरेश महाराजा भैरवसिंह ने एक विशाल पुष्करिणी का निर्माण कराकर यज्ञ का आयोजन किया था। उक्त शुभावसर पर चौदह सौ मीमांसकों को आमन्त्रित किया गया था।' मीमांसा दर्शन में धर्म जिज्ञासा वाले प्रथम सूत्र के पश्चात् ही जैमिनि ने धर्म का लक्षण बतलाते हुए कहा है-

'चोदना लक्षणो थोंधर्मः'।

अर्थात् प्रेरणा या उपदेश देनेवाला अर्थ ही धर्म है। तात्पर्य यह कि धर्म प्रत्येक व्यक्ति की इच्छा या उसकी रुचि पर निर्भर रहने की चीज नहीं है

वरन् वह एक नैतिक नियम है जिसका पालन करना समाज में रहनेवाले मनुष्य के लिए अनिवार्य है। जैमिनि ने धर्म का सर्वथा युक्ति युक्त लक्षण बताया है।

धर्म की परीक्षा

मीमांसा शास्त्र भी प्रत्यक्ष, अनुमान और शव्द को प्रमाण मानता है किन्तु उसका कथन है कि धर्म का निर्णय प्रत्यक्ष और अनुभव द्वारा न होकर 'शब्द' द्वारा ही होना संभव है। 'प्रत्यक्ष ज्ञान वह है जो पुरुष को इन्द्रियों और वाह्य पदार्थों के संयोग से उत्पन्न होता है।' यह ज्ञान नित्य नहीं है। धर्म सम्बन्धी निर्णय में प्रत्यक्ष प्रमाण अथवा उसके आधार पर उत्पन्न होने वाला प्रमाण काम नहीं दे सकता।

पाँचवें सूत्र के अनुसार-

ओत्पत्तिकस्तु शब्दस्यार्थेन सम्बन्धस्तस्य ज्ञानमुपदेशे व्य-
तिरेवश्चार्थे नुपलब्धे तत्प्रमाणं, वादरायणस्यानपेक्षत्वात्॥

अर्थात् वेद का प्रत्येक शव्द अपने अर्थ से स्वाभाविक सम्बन्ध रखता है। यह ईश्वरोपदिष्ट धर्म का यथार्थ साधन है। यह प्रत्यक्ष आदि प्रमाणों से प्राप्त नहीं होता और पारस्परिक विरोध से मुक्त होता है। आचार्य वादरायण के मतानुसार वेदादेश अपनी अर्थ-सत्यता के कारण स्वतः प्रमाण है।

मीमांसाकार इस तथ्य को स्वीकार करते हैं कि वेदों में उपासना के मंत्र और सिद्धान्त भी मिलते हैं पर वे उसी कर्मकाण्ड रूपी धर्म के समर्थन और पुष्टि के लिए है। मानव-मंत्र हम परमात्मा की उपासना के लिए पढ़ते हैं उनसे भी प्रेरणा मिलती है कि हम उन धर्मकृत्यों को करें। वेदमंत्रों का अर्थ सहित स्वाध्याय करना चाहिए क्योंकि वेद मनुष्य के लिए पुरुषार्थ चतुष्टय का साधन बतलाया गया है। वेदों के प्रत्येक मंत्र में ऋषियों का नाम इस बात का प्रतीक है कि वेदों का पठन-पाठन अर्थ सहित ही होना चाहिए। वे ऋषि उन मंत्र विशेष का विधिवत प्रचार करनेवाले हुए थे। ज्ञान की रश्मि प्रदान करनेवाला एक मात्र शास्त्र है वेद।

सृष्टि के आदि में मनुष्य को वेद के द्वारा ही अपने कर्त्तव्यों का बोध हुआ-

'आम्नायस्य क्रियार्थत्वा दनर्थक्यमतदर्थानां, तस्मादनित्यमुच्यते।'

मीमांसा दर्शन केवल वेद को ही धर्म के सम्बंध में प्रमाण मानता है। मीमांसा-दर्शन भौतिक जगत को नित्य मानता है। यह दर्शन न्याय और वैशेषिक दर्शन की तरह परमाणु की सत्ता को भी मानता है, पर अनुमान का विषय न

मानकर उसे प्रत्यक्ष ही मानता है। कुमारिल के अनुसार संसार की रचना जिन पाँच तत्त्वों से हुई है वे हैं-

द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य तथा अभाव।

इसके विपरीत गुरुमत के संस्थापक आचार्य प्रभाकर ने द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य, परतन्त्रता, शक्ति, सादृश्य और संख्या इन आठ पदार्थों की सत्ता को स्वीकार किया है। तृतीय आचार्य मुरारि मिश्र ने ब्रह्म, धर्मि विशेष, धर्म विशेष, आधार-विशेष और प्रदेश विशेष इन पाँच को मान्यता प्रदान की है। प्रभाकर मिश्र ने शक्ति को एक स्वतन्त्र तत्त्व इसलिए माना है कि उसके बिना कोई कार्य सम्पन्न होना संभव नहीं।

'अपूर्व सिद्धान्त' मीमांसा दर्शन का विशिष्ट सिद्धान्त है। वेदोक्त तथ्य है- 'सर्व कामो यजेत्।' अर्थात् स्वर्ग की कामना करनेवाला व्यक्ति यज्ञ करें। इस तथ्य को मीमांसा शास्त्र में 'अपूर्व' के द्वारा अभिव्यक्ति मिली है। आशय यह कि यज्ञ से उत्पन्न होता है 'अपूर्व' (पुण्य) और अपूर्व से उत्पन्न होता है स्वर्ग (फल)। कर्म मीमांसा प्रकरण में सर गंगानाथ झा ने इसे अतिरिक्त स्पष्टता दी है।

प्रामाण्यवाद

प्रामाण्यवाद मीमांसा दर्शन की अतिविशिष्ट निधि है। मीमांसा शब्द प्रमाण तथा आगम प्रमाण के अतिरिक्त किसी भी प्रमाण को वास्तविक नहीं समझते। स्वतः प्रमाण केवल वेद ही है। मीमांसकों के अनुसार हम इन्द्रियों से जो कुछ ज्ञान प्राप्त करते हैं वह यथार्थ है और उसे सत्य मानकर स्वतः प्रमाण के रूप में स्वीकार करना चाहिए। ज्ञान स्वतः प्रकाशित होने से स्वतः प्रामाण्य सिद्ध होता है।

कर्म सिद्धान्त

'कर्म सिद्धान्त' मीमांसा का आधार भूत सिद्धान्त है। कर्म से मीमांसकों का अभिप्राय वैदिक यज्ञ सम्बन्धी कर्मकाण्ड के अनुष्ठान से ही है। इसी कारण इसे दर्शनों का सार बताते हुए 'कर्मेति मीमांसकाः' कहा गया है। मीमांसा दर्शन के अनुसार सबसे बड़ा तत्त्व जो ईश्वर की समता कर सकता है वह कर्म ही है। कर्म मीमांसा का मुख्य उद्देश्य यह है कि प्राणी वेद के द्वारा प्रतिपादित अभीष्ट साधक कार्यों में लगे और अपना वास्तविक कल्याण साधन करे। मीमांसक मत में 'देवता' सम्प्रदान कारक सूचक पद-मात्र है। वैदिक कर्मों का फल स्वर्ग प्राप्ति माना गया है। वास्तव में निरतिशय सुख का दूसरा नाम ही स्वर्ग है।

मीमांसा दर्शनानुसार कर्म को जिन तीन श्रेणियों में विभाजित किया गया है वे हैं-

सहज कर्म, जैव कर्म तथा ऐश कर्म ।

प्रकृति की आरम्भिक अवस्था में जो कर्म प्रकट होता है, ब्रह्माण्ड और पंचभूतों की उत्पत्ति, उद्भिज के रूप में जीव सृष्टि का आरंभ होना सहज कर्म है । मीमांसा इसे प्रकृति कर्म मानता है । पश्चात् जब उद्भिज से चलने-फिरने वाले प्राणी बनकर अन्त में मनुष्य का आविर्भाव हो जाता है तब जैव कार्यारंभ होता है । इसी जैव कर्म के फलस्वरूप मनुष्य प्रेतयोनि, स्वर्ग, नर्क, मनुष्यलोक आदि में भ्रमण करता हुआ तरह-तरह की योनियों का अनुभव करता रहता है। इसी अवस्था में वह वेद, पुराण, धर्म ग्रन्थ आदि की सहायता से आत्मिक उन्नति के मार्ग में अग्रसर होता है ।

ऐश कर्म का सम्बन्ध मनुष्य लोक से उच्चस्थित वाले देवलोक से है। मनुष्य लोक से भी उसका परोक्ष-सम्बन्ध रहता है । इसी कर्म से मनुष्य देव पद को प्राप्त करता है और निरन्तर परमात्मा की प्राप्ति के मार्ग में अग्रसर होता रहता है । मीमांसा दर्शन कर्म को सर्वोपरि मानता है ।

मीमांसा दर्शन में यज्ञ

भगवद्गीता के अनुसार-

सहयज्ञाः प्रजाः सृष्ट्वा पुरोवाच प्रजापतिः ।
अनेन प्रसविष्यध्वमेष वो सिचष्ट कामधुक् ।।

प्रजापति ने सृष्टि के आदि में ही प्राणियों के साथ यज्ञों की भी उत्पत्ति की और कहा कि तुम इन यज्ञों के द्वारा फलो-फूलो और अपनी समस्त अभिलाषाओं की पूर्ति करो ।

ऋग्वेद की प्रथम पंक्ति में ही यज्ञ का सादर उल्लेख किया गया है और उसे मनुष्यों के लोक-परलोक की सफलता का सर्वोपरि साधन बतलाया गया है-

अग्निमीले पुरोहितं यज्ञस्य देवमृत्विज्वम् होतारं रत्नधाततम् ।

हम उन अग्निदेव की स्तुति करते हैं जो पुरोहित, ऋत्विज, यज्ञ के देवता तथा देवताओं के आह्वाता हैं । वे रत्नों की खान हैं और हमें श्रेष्ठ रत्न प्रदान करें ।

गीता के 'सहयज्ञा प्रजाः सृष्ट्वा' वाले श्लोक का भी यही तात्पर्य है कि प्रजा की प्रगति और कल्याण के सभी कार्य यज्ञ रूप हैं । स्मृतियों में नित्य

करणीय पाँच यज्ञों का उल्लेख किया गया है । मनुस्मृति के अनुसार वेदाध्ययन ब्रह्म यज्ञ है, तर्पण पितृयज्ञ है, बलि भूत यज्ञ है और अतिथि सन्तर्पण मनुष्य यज्ञ है । इन पाँच यज्ञों के द्वारा ऋषियों, पितरों, देवताओं, प्राणियों तथा मनुष्यों को पहले तृप्त करके तब गृहस्थ को स्वयं भोजन करना चाहिए । इन यज्ञों के उपरान्त जो अन्न बचता है वह 'अमृत' कहलाता है । महाभारत के शान्तिपर्व के अनुसार-

आरम्भः यज्ञाः क्षत्राश्च, हविर्यज्ञा विशः स्मृतः ।
परिचार यज्ञा शूद्राश्च, जप यज्ञा द्विजः जपा ।।

ब्राह्मणों के लिए जप, परमात्मा का ध्यान तथा आत्म-तत्त्व के अनुकूल आचरण करना ही यज्ञ है । वृहदारण्यक उपनिषद् के अनुसार-

प्रयान्तं कर्मणस्तस्य यक्किंचेह करोत्ययम ।
तस्माल्लोकात्पुनरेत्यस्मे लोकाय कर्मणे ।।

इस श्लोक में जो यज्ञ-याग आदि पुण्य कर्म किये जाते हैं उनका फल स्वर्ग-उपयोग करके समाप्त हो जाता है और तब यज्ञ करनेवाले को पुनः स्वर्ग लोक से इसी कर्म-लोक में आना पड़ता है ।

पूर्व मीमांसा दर्शन ने इसी तत्त्व ज्ञान को अपना मूल आधार बनाया है । यहाँ यश-यागादि को मनुष्य का सबसे बड़ा कर्त्तव्य बतलाकर उसकी महत्ता, क्रिया और विधि की विवेचना पर सर्वाधिक ध्यान दिया गया है ।

महर्षि जैमिनि ने अपने दर्शन का आरम्भ ब्रह्म जिज्ञासा के स्थान पर 'धर्म जिज्ञासा' से किया है । वस्तुतः नियमानुसार कर्म में प्रवृत्त रहते हुए भी फलाशा में आसक्त न होना ही सभी धर्म शास्त्रों का सार है ।

मीमांसा मत जगत, वेद को सदैव स्थिर और नित्य मानता है । कुछ लोग इसे अनीश्वरवादी दर्शन कहते किन्तु वास्तव में ऐसा नहीं । मीमांसाकार के शब्दों में-

'आशास्भात्तु पसम्प्राप्तः शास्त्रं स्यान्नव प्रकल्पकं,
तस्मादर्थेन गम्येता प्राप्ते व शास्त्रमर्थवत्, देवताश्रये च' ।

अर्थात् शास्त्र वेद को न माना जाय तो देव परमात्मा की प्राप्ति, उसका ज्ञान असंभव हो जाएगा । लौकिक साधनों से इन्द्रिय अगोचर पदार्थों की जानकारी संभव नहीं । देव को मानने से ही शास्त्र की सार्थकता है ।

आगे कहा गया है-

'तदकर्मणि च दोषस्तस्मात्तो विशेषः स्यात्प्रधानेना पिसम्बन्धात्'

अर्थात् जो कर्म परमात्मा की प्राप्ति के लिए नहीं किया जाता, उसे उदासीन रहकर किया जाता है वह वेदमत से सदोष और निष्फल होता है। वस्तुतः वही कर्म उत्तम है जिसका सम्बन्ध परमात्मा से हो। मीमांसा मुख्यतः कर्मकाण्डमूलक दर्शन है। यज्ञ-महायज्ञ उसके प्रमुख विचारणीय विषय हैं।

'ब्रह्मेण जैमिनिरुपन्यासादिभ्यः।'

जैमिनि आचार्य के मतानुसार भुक्त अवस्था में जीव ब्रह्म के आनन्द आदि गुणों को धारण करता है। इस कथन से स्पष्ट सिद्ध होता है कि मीमांसाकार जैमिनि ईश्वर को मानते थे और उसके सच्चिदानन्द-स्वरूप में विश्वास रखते थे। छान्दोग्य उपनिषद् के अनुसार मुक्तात्मा पुरुष सुषुम्ना नाड़ी द्वारा ऊपर उठकर अमृतत्व को प्राप्त होता है।

प्रभाकर के अनुसार वेद में ईश्वर के सम्बन्ध में जो कुछ कहा गया है वही मान्य है। जैमिनि के अनुसार - 'मुक्त आत्मा ब्रह्म में लुप्त नहीं हो जाती वरन् ब्रह्म के सदृश्य हो जाती है। उसका अपना अस्तित्व बना रहता है। उसमें ज्ञान के साथ अनुभूति का भाव भी रहता है। मीमांसा दर्शन में अनेक स्थानों पर यज्ञ में मांसादि के उपयोग का स्पष्ट रूप से निषेध किया गया है-

'मांस पाको विहित प्रतिवेधः स्याद्विवाहुति संयोगात्।'

मीमांसा दर्शन का एक अंग मोक्ष साधन के विषय में विचार करता है। मीमांसा तथा अन्य दर्शनों में इस दृष्टि से अन्तर है। अधिकांश दर्शन कर्म को बन्धनकारक मानते हैं किन्तु मीमांसा कर्मकाण्ड के द्वारा ही मोक्ष प्राप्त करने की बात कहता है।

मोक्ष प्राप्ति के प्रसंग में मीमांसा दर्शन में दो प्रकार के मत पाये जाते हैं। प्रभाकर के मतों का उल्लेख करते हुए कहा गया है कि- 'आत्मा में ज्ञान, सुख, दुःख अनेक विशेष गुण विद्यमान रहते हैं। जब आत्मा अपने स्वरुप में अवस्थित होता है और यही मोक्ष है। मोक्ष की दशा में आत्मा को आनन्द का अनुभव नहीं होता।'

सुख-दुख तथा अन्य प्रकार के अनुभव की प्राप्ति आत्मा का स्वाभाविक धर्म नहीं है। वह शरीर के द्वारा ही इनकी अनुभूति प्राप्त करता है। कुमारिल भट्ट के अनुसार-

दुःखात्यन्त समच्छेदे सति प्रागात्म वर्तिनः।
सुखस्य मनसा मुक्तिर्भक्तिरुक्ता कुमारिलैः॥

अर्थात् दुःख का अत्यन्त नाश हो जाने पर आत्मा में पहले से विद्यमान होनेवाले सुख का जब मन के द्वारा उपभोग अथवा अनुभव होने लगता है, वही

मुक्तावस्था है। मीमांसा मतों में समस्त कर्मों के नित्य, नैमित्तिक, काम्य और निषिद्ध ये चार भेद हैं।

सर गंगानाथ झा ने शाबर भाष्य का अनुवाद तथा मीमांसा दर्शन के प्रमुख टीकाकार प्रभाकर के प्रसंग में विस्तृत व्याख्या कर उन्हें प्रकाश में लाने का भगीरथ कार्य किया।

मेघदूत

कविकुलगुरु कालिदास विरचित मेधदूत पर समीक्षापरक टिप्पणी के साथ आपने उसका अनुवाद भी किया।

प्रसादे सा पथि पथि च सा पृष्ठतः सा पुरः सा
सा सा सा सा जगति सकले को यमद्वैतवादः ॥

मेघदूत काव्य ने सदैव रसिकों और सहृदयों का ध्यान आकृष्ट किया है। प्रायः सभी मनीषियों तथा संस्कृत प्रेमियों ने कालिदास को अपने अध्ययन का विषय चुना। कालिदास पर संपादित सर झा के कार्य की आर्थर भेनिस ने भूरि-भूरि प्रशंसा की थी। मेघदूत के कवि ने प्राकृतिक दृश्यों और वस्तुओं के चित्रांकन में एक विशेष प्रकार की शैल्पिक सतर्कता का परिचय दिया है। वह सदैव स्मरण रखता है कि उसे जो कुछ देखना है, वह यक्ष की आँखों से, इसलिए उसके वर्णन उसकी वैयक्तिक सीमा से युक्त हैं। वह यक्ष के मेघ के साथ चलता है मेघ उसके साथ नहीं चलता। कालिदास इस भव्य भारत खण्ड के महान् कलाकार थे। मेघदूत के दो विभाग पूर्वमेघ तथा उत्तर मेघ रमणीयता में अप्रतिम हैं। पूर्व मेघ की हृदयहारिणी रसात्मक चित्रमयता में सौन्दर्योपासक कवि की विशुद्ध विधायक प्रतिभा का दर्शन होता है। विप्रलंभ शृंगार का संवेदनपूर्वक वर्णन और आषाढ़ के प्रथम दिवस को शून्य नीलाभ गगन-पृष्ठ पर उन्मुक्त बिहरते मेघखण्ड की दूत के रूप में मूर्त्त कल्पना द्वारा उसके देशान्तर-सम्प्रेषण का अलौकिक चित्रण, यही मेघदूत का मूल विषय है।

शब्दों की मोहक भंगिमा ने मेघदूत की भाषा शैली की आभ्यन्तरिकता को रमणीय और स्पृहणीय बना दिया है। शब्द विन्यास की तरलता से संबलित काव्यभाषा की चंचल चमक ने मेघदूत को ललित और प्रीत रूप दिया है। महान् प्रतिभाशाली कवि कालिदास का मेघदूत अपनी विम्बविधायिनी शैली में अपना पृथक् स्वरूप रखता है-

दीर्घी कुर्वन् पटु मदकलं कूचितं सारसानां
प्रत्यूषेषु स्फुटित कमलामोद मैत्री कषायः।
यत्रस्त्रीणां हरति सुरतगागनिभङ्गानुकूलः
शिप्रावातः प्रियतम इव प्रार्थनाचाटुकारः ॥

मेघदूत का अर्थ गाम्भीर्य भी विलक्षण है आचार्य श्री श्रेयेशचन्द्र चट्टोपाध्याय ने लिखा है-

गङ्गानाथं शिवं नौमि गोपीनाथं तथा हरिम्।
योतिषां श्रेष्ठमादित्यं स्मरामि चमुरुर्मुहुः॥
तारां देवीं मनसि निहितां पूजयित्वादरेण।
काव्यं श्रव्यं ललितं मेधदूताभिधं यत्॥
आश्रित्यैव प्रथिनयशसः कालिदासस्य तच्च
लेखः कश्चित विलिखित इह प्रार्थनान् नन्दनाय॥

सर झा ने मेघदूत में वर्णित विभिन्न रमणीक स्थलों की पौराणिक गरिमा पर प्रकाश निक्षेपित किया है। ऐसे स्थान हैं-

१. रामगिरिः

२. मालाख्या भूमिः

३. आम्रकूट पर्वतः

४. रेवा नदी

५. दशार्ण देशः

६. विदिशा नगरी तत्र वेगवती नदी च

७. तत्रत्यो नीचैर्गिरिः

८. उज्जयिनी नगरी

९. गम्भीरा नदी

१०. देवगिरि पर्वतः

११. चर्मण्वती नदी

१२. दशपुर नगरी

१३. ब्रह्मावर्त्तदेश

१४. सरस्वती नदी

१५. कनखलपुरी तस्यां गङ्गानदीञ्च

१६. सरस्वती नदी

१७. हिमालय पर्वत श्रेणी

१८. क्रोञ्चगिरिः

१९. हिमालयस्थः कैलास पर्वतः

२०. तत्र च मानस सरोवरः (मानसरोवरः)

२१. अन्ते च अलकापुरी ।

तत्त्व कौमुदी

संख्या प्रकुर्वेत चैव प्रकृतिं च प्रचक्षते ।
तत्त्वानि च चतुर्विंशत्तेन सांख्यं प्रकीर्तितम् ॥

सर झा ने सांख्य शब्द को और दर्शन को स्पष्ट करते हुए लिखा है-

Samkhya means knowledge of self through right discrimination. Garbe is of opinion that the word Samkhya was originally used in the sense of counting, and it was then applied to the system of Kapila which enumerates the 25 principles. Jayacandra Sarma says with regards to Samkhya in Samskrta Candrika, a magazine which became defunct long ago, that the samkhya is tawny, with deep - brown face and has a big belly. He has a rosary in his hand and a staff, and keeps long nails and hair.

Really speaking, since the word Kapila stands both for a particular colour and for founder of Samkhya Philosophy, therefore, owing to the similarity of word the writer of Purana has indulged in conjectures of his own. It appears that the writer of Purana at the time of writing happened to see some sage with tawny face and corpulent body and was led to describe his form and colour.

तत्त्वकौमुदी की भूमिका अत्यधिक महत्वपूर्ण है। इस ग्रन्थ का मंगलाचरण है-

अजामेकां लोहित शुक्ल कृष्णां बह्वीः प्रजाः सृजमानां नमामः ।
अजा ये तां जुषमाणां भजन्ते जहत्येनां भुक्तभोगां नुमस्तान् ॥
कपिलाय महामुनये मुनये शिष्याय तस्य चा सुर ये ।
प चशिखाय तथेश्वर कृष्णायैतान्नमस्यामः ॥ २ ॥

सर झा ने वैदुष्यपूर्ण भूमिका के साथ इस ग्रन्थ का सरल अंगरेज़ी में अनुवाद भी किया है। उदाहरणार्थ-

We bow to the one unborn, Red, white and Black, producing many off springs; we bow also to those unborn once who have recourse to experiences afforded by her.

To the Great sage Kapila, and to his disciple Asuri, as also to Panoasikha and Is Varakrsna- to these we bow in reverence.[1]

आत्मा के सम्बंध में प्रभाकर-मत का अनुवाद करते हुए सर झा लिखते हैं-

According to Prabhakar, the soul is of the nature of the (A) Doer and Experiencer (P 235-7). It is something entirely different from the body. the sense organs and Buddhi (P231); (c) it becomes manifest in all cognitions - (D) it is eternal (P 235); (E) Omnipresent (P.235); and (F) many, one in each body; (G) it rests upon the notion of '1', entirely is proved by the universally admitted and undenied and undeniable, notion of '1', which is self-luminous (P. 245); in the sense that it is realisable by each man for himself.[2] 25-26)

वर्ष १९३३ में प्रकाशित Hindu Law In Its Sources अपने आप में एक गंभीर शोध है। इसके प्रकाशन में सर झा के छात्र डा. बाबूराम सक्सेना ने भी श्रम किया था। दो भागों में प्रकाशित यह ग्रन्थ अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है।

सर झा कहते हैं-

Readers of the Introductory chapter of the first volume know that the inception of the work was due to a keen desire on my part to see Hindu law properly codified in order to save it from the danger of being

---

१ तत्त्वकौमुदी

२ Purb Mimama in its sources - (P25-26)

swallowed by the 'case-law' that was constantly trenching upon on its Precincts. In the course of my reading I have come across a typical case where the misunderstanding of a Mimamsa Principle, and hence of a Particular aspect of HINDU Law, has led to the violation of one of the most Cardinal Principles of the HINDU LAW of Adoption.

इसके दूसरे भाग की भूमिका के अन्त में सर झा लिखते हैं-

In this connection I may take the opportunity of thanking those eminent friends who, by their appreciation of the earlier volume, have shown that there is still some ground for hoping that Hindu law will be properly and unbiasedly studied by our lawyers.

पितृः श्री तीर्थनाथस्य प्रभोर्लक्ष्मीश्वरस्य च।
मातुस्तीर्थलता देव्याः पादयरिदमर्पितम्॥
प्रीयतां चानया कृत्या पत्नी श्रीन्दुमती दिवि॥

गंगानाथ झा

हिन्दु विधि का मूलाधार अत्यन्त महत्त्वपूर्ण कृति है। अनुवाद के द्वारा गूढ़ मान्यताओं को यहाँ स्पष्टता मिली है। उदाहरणार्थ-

Chapter I

Property and its sources

1. मनु 10. 115

सप्त वितागमा धर्म्या दायो लाभः क्रयोजयः।

प्रयोगः कर्मयोगश्च सम्प्रतिग्रह एव वा॥

There are seven lawful sources of property - Inheritance, Acquisition, Purchase, Conquest, Investment, Industry (Trade and Agriculture) and Rightful Gift.

इसकी व्याख्या के क्रम में दया, लाभ, क्रय, प्रयोग आदि को व्यांख्यापित किया गया है। उदाहरणार्थ-

'Daya' is property acquired by reason of relationship. 'Labha' is coming by buried treasure, or loving presents from some persons.

नारद १६.१ (विभागो र्थम्य पित्रयस्य) V.L. पित्रादेः (पुत्रैर्यत्र प्रक्-ल्प्यते। दायभाग इति प्रोक्तं व्यवहार पदं बुधैः।

Where there is partition by the sons of this paternal Property (Property that belonged to their father or others) it is the 'topic of Law' called Partition of inheritance.

धर्म शास्त्रानुरूप हिन्दू विधि को व्याख्यापित करना ही इस ग्रन्थ का महत् उद्देश्य है। अंगरेजी अनुवाद के माध्यम से लोकोपयोगी स्पष्टता देने का सर झा ने गुरुतर प्रयास किया है।

उदाहरण के लिए-

मनु ९. २११-२१२

येषां ज्येष्ठः कनिष्ठोवाहीयेतांश प्रदानतः
भ्रियेतान्यतटो वापि तस्य भागो न लुप्यते ॥
सोदर्या विभजेरंस्तं सभ्येत सहिताः समम्
भ्रातरो ये च संसृष्टा भगिन्यश्च सनामयः ॥

If the eldest or the youngest of the brothers should be deprived of his share-or if either of them dies-his share does not become lost; his uterine brothers, coming together divide it equally, as also the reunited brothers and consanguineous sisters.

द्रव्यमपुत्रस्य- सोदयां भ्रातरः सहजीविने।

वा हरेषुः - कन्याश्च।

The property of the sonless man shall be taken by the uterine brothers or by those living with him, and also his daughters.

डा. सर गंगानाथ झा जी ने श्रीमद्भागवत की भी वैदुष्यपूर्ण समीक्षा की है। शिवपुराण के अंशों का भी आपने समीक्षापरक विश्लेषण किया है-

भगवत्याश्च दुर्गायाश्चरितं यत्र वर्ण्यते।
तत्तु भागवतं प्रोक्तं ननु देवीपुराणकम् ॥

This may roughly be rendered as to mean that work, the Devipurana is declared to be the Bhagavata wherein are described the deeds of Bagavati Durga.

आयुर्वेद विषयक कार्य-

आयुर्वेद पर भी डा. गंगानाथ झा ने महत्वपूर्ण कार्य संपादित किया है। आप कहते हैं—

'नास्ति रोगो यस्या सावरोगः । तस्य भाव आरोग्यम्।'

आरोग्यशास्त्र मिति यज्जगति प्रसिद्धं।
तस्य स्वरूपमिह नोद्रियते कथचित्॥
सूक्ष्मेक्षिकां हृदि निधाय कृतः प्रयत्नः
साफल्यमेतु सुधियामवलोकनेन॥

लौकिक और शास्त्रीय रोग में विभेद करते हुए आप कहते हैं—

'रोगो हि द्विविधः, लौकिकः शास्त्रीयश्च। लौकिक प्रमाण समाधिगम्यो लौकिकः। शास्त्रैक समधि गम्यः शास्त्रीयः। स्थूले देहे जायमान रोगो लौकिकः, सूक्ष्मे देहे जाय मानोरोगः शास्त्रीयः।'

बुद्धि कर्मेन्द्रियप्राण प चकैर्मनसा धिया।
शरीरं सप्तदशभिः सूक्ष्मं तत्तल्लिङ्गमुच्यते॥

वास्तव में जन्म जन्मान्तर का पाप ही हम व्याधि रूप में भोगते हैं। आयुर्वेद इसका प्रशमन करता है।

जन्मान्तरकृतं पापं व्याधिप्ररूपेण सेव्यते।

आयुर्वेद की मान्यता है—

रोगनाशक पदार्थ चिन्तनं दोषकारक पदार्थ वर्जनम्।
शक्तिवर्धक पदार्थ भोजनं वैद्यकं त्रिविधमुच्यतेबुधैः॥

भगवद्गीता के तृतीय अध्याय का उल्लेख करते हुए सर झा कहते हैं कि—

अथ केन प्रयुक्तो यं पापं चरति पूरुषः।
अनिच्छिन्नपि बार्ष्णेय बलादिव नियोजितः॥
काम एक क्रोध एव रजोगुणसमुद्रभवः।
महाशनो महापाप्मा विद्धयेनमिह वैरिणम्॥

रजोगुणों का आधिक्य रोग का मूल कारण है जो पूर्वजन्म में प्राप्त संस्कारनुकूल होता है। काम तथा क्रोध से सम्बलित रजोगुण का आक्रमण शरीर को रोगग्रस्त कर देता है।

आयुर्वेद विषयक आपके निबन्ध अप्रकाशित हैं।

श्री लक्ष्मीरमणं नौमि गौरी रमण रुपिणम् ।
स्फोटरूपं यतः सर्वं जगदेतद्विवर्तते ।।

शब्द ब्रह्म पर भी सर झा ने विस्तृत निबन्धों का लेखन किया है। मुक्ताकाश की भाँति शब्द भी निबन्ध हैं। परमपिता परमेश्वर की भाँति शब्द शक्ति भी सीमा हीन है, विशद् है। शब्दामृत का उद्भव चित्त विकार परिहार के लिए ही हुआ है।

मान्यतानुसार-

यथा विशुद्ध माकाशं तिमिरोपप्लुतोजनः ।
संकीर्णमिव मात्राभिश्चित्राभिरभि भव्यते ।।
तदेदममृतं ब्रह्म निर्विकारमविद्यया ।
कनुषत्वभिवापन्नं भेद रूपं विवत्ततः ।।

वस्तुतः परब्रह्म की भाँति शब्द ब्रह्म भी अक्षय और अमर है। सृष्टि के सभी स्वरूपों में इसकी स्थिति सुनिश्चित है। संसार की रचना प्रक्रिया से यह संलग्न है-

अनादि निधनं ब्रह्म शब्दतत्वं यदक्षरम् ।
विवर्ततेर्थभावेन प्रक्रिया जगतो यतः ।।

विवाद चिन्तामणि

पं. वाचस्पति मिश्र विरचित विवाद चिन्तामणि का सर झा ने वैदुष्यपूर्ण अनुवाद किया। सर झा स्वयं एक विख्यात मीमांसक थे। विवाद चिन्तामणि धर्मशास्त्र विषयक शंकाओं का सम्यक और स्पष्ट समाधान है। धर्म शास्त्र से तात्पर्य हिन्दू आचार संहिता से ही है। याज्ञवल्क्य के अनुसार-

श्रुतिः स्मृतिः सदाचारः स्वस्य च प्रियमात्मनः ।
सम्यक् संकल्पजः कामो धर्ममूलमिदं स्मृतम् ।।

पं. वाचस्पति मिश्र राजनगर के निकट सुगौना गाँव के अधिवासी थे। न्याय, धर्मशास्त्र और मीमांसा के आप निष्णात पण्डित थे। 'पितृभक्तितरंगिणी' में आप स्वयं लिखते हैं-

शास्त्रे दश स्मृतौ त्रिंशन्निबन्धा येन यौवने ।
निर्मितास्तेन चरमे व्यस्येषं विनिर्ममे ।।

प्रसिद्ध है -

वंशं जाते कलुष रहिते कर्म मीमांसकाना-
मन्वीक्षायां गुरुकरुणया लब्धतत्वावबोध: ।
श्रीमान् वाचस्पतिरहमिह प्रीयते पुण्यभाजां
नत्वा नत्वा कमल नयनं कृत्यदीपंतनोमि ।।

न्याय तत्त्वालोक, अनुमानखण्डदातिका, न्यायसूत्रोद्धार, कृत्य चिन्तामणि तथा विवाद चिन्तामणि आपके प्रमुख ग्रन्थ हैं ।

आप मिथिला के उद्‌भट विद्वान थे । शङ्कर मिश्र और वाचस्पति मिश्र के प्रसंग में कहा गया है-

'शङ्कर वाचस्पत्यो: सदृशो शङ्करवाचस्पती एवं ।'

डा. झा विरचित अनुवाद के मुख पृष्ठ पर अंकितत है-

The

Vivadchintamani

Of

Vachaspati mishra

Translated in to English by

Sri Ganga Nath Jha, KT.M.A. D. Litt, LL. D.,

Vidyasagara, Mahamahopadhyaya, corresponding fellow of the British Academy, Honorary Fellow of the Royal Asiatic Society.

सर झा ने विवाद चिन्तामणि का अत्यन्त गंभीरतापूर्वक अनुवाद किया है । सरल अंग्रेजी में प्रस्तुत अनुवाद के अंश मूल के रसास्वादन में भी सहयोगी की भूमिका का निर्वाह करते हैं ।

उदाहरणार्थ-

Chapter I, Part 'A'

Says Narada:

Which debt is payable - which is not payable, - by whom, when and how it is to be paid, the rules of giving and receiving, - all this is comprised under the topic of Debt (1.1.) when for the purpose of security and profit, loan is given and taken, - it is called Loan on interest, it is by this money - lenders make a living (1.98).'

एक-एक अंश का अध्ययन कर उनका यथातथ्य अनुवाद कर सर झा ने उसकी विशद् व्याख्या की है।

छान्दोग्योपनिषद्

छान्दोग्योपनिषद् अपनी कतिपय विशेषताओं सहित सभी उपनिषदों से विशाल है। अध्यात्म सिद्धान्तों को सूक्ष्म अथवा सूत्र रूप में कहने के स्थान पर इसमें दृष्टान्त और रूपक के माध्यम से उसे हृदयंगम कराने का प्रयास किया गया है। इसका प्रारम्भ-

ओमित्येतदक्षर मुद्गीथमुपासीत्। ओमिति ह्युद्गायति

तस्योपव्याख्यानम्।' से हुआ है।

इसके अनुसार सम्पूर्ण जगत निश्चय ही ब्रह्मस्वरूप है। इनका उत्स ब्रह्म से ही होता है-

सर्वं खल्विदं ब्रह्म तज्जलानिति शान्तउपासीत।

छान्दोग्योपनिषद् में वैदिक कृत्त्य को अनिवार्य माना गया है। वेद की महत्ता का वर्णन करते हुए कहा गया है-

न वेदः प्रणवं त्यक्त्वा मन्त्रो वेदसमुत्थितः।
तस्माद्वेदः परो मन्त्रो वेदाङ्गश्चागमः स्मृतः॥
वेदेन माध्यते सर्वं ग्रह्यज्ञादिभिः किल।
नवेदेन विना यज्ञा न वेदा यज्ञवजिताः॥
तस्माद्वेदः परोमन्त्रो न मन्त्रो वेद उद्गतः।
नमन्त्रे चाधिकारे स्ति शूद्राणां नियमः परः॥

वृहदारण्यक उपनिषद् का भी सर झा ने अनुवाद किया और उसकी अभिनव व्याख्या की।

संस्कृत साहित्य के निगूढ़ विषयों का अनुवाद कर, सम्पूर्ण विश्व-पाठक-समुदाय को उससे परिचित कराना सर झा का महत् उद्देश्य था।

वृहदारण्यक उपनिषद् हिन्दू दर्शन का मूल स्रोत है तथा आत्मा की अमरता, जीव-ब्रह्म की एकता, साकार और निराकार का निरूपण, निष्काम धर्म की महत्ता, परोपकार की श्रेष्ठता जैसे सर्वोच्च सिद्धान्तों का ज्ञान प्रदान करनेवाला है। सर्वान्तर आत्मा जिस पर क्षुधा, पिपासा, शोक, मोह, जरा और मृत्यु का कोई प्रभाव नहीं पड़ता, का यहाँ विशद् वर्णन किया गया है।

इसका प्रारंभ-

'ऊं पूर्णामदः पूर्णात्पूर्ण मुदच्यते। पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्ण मेवान्शिष्यते' के उपरान्त-

'ऊं उषा वा अश्वश्य मेधयस्य शिरः' से हुआ है। वास्तव में यह व्रह्माण्ड जानने योग्य है। इसका शीश उषा, नेत्र, सूर्य और प्राण वायु है।

इसकी मानव कल्याणकारी भावनाओं का सर झा ने विस्तृत विवेचन किया है।

सृष्टि रचना के सम्बन्ध में समीक्षा करते हुए सर झा लिखते हैं-

१. परमाणुभ्यः सृष्टिः

२. त्रितत्वेभ्यः सृष्टिः

३. पञ्चभूतेभ्यः सृष्टिः

४. अज्ञानात्सृष्टिः

५. ईश्वरात्सृष्टि

स्वयं भगवान् कहते हैं-

ईश्वर सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति।

भ्रामयन सर्वभूतानि यन्त्रा रुढ़ानि मामया॥

६. स्वभावात्सृष्टिः

७. प्रकृतेः सृष्टिः

८. दृष्टे सृष्टिः

९. चिदात्मिका सृष्टिः

१०. चिदचिद्विशिष्टा सृष्टिः

११. अद्वैतात्मिका सृष्टिः

१२. द्वैतात्मिका सृष्टिः

१३. द्वैताद्वैत विशिष्टा सृष्टिः

१४. विशुद्धाद्वैतात्मिका सृष्टिः

१५. शुद्धाद्वैतात्मिका सृष्टिः

प्रकृतैः क्रियमाणानि गुणैःकर्माणि सर्वशः।
अहङ्कार विमूढ़ात्मा कर्त्ता हमिति मन्यते ॥

सच्चिदानन्दरूपात्मकं ब्रह्म

आह्लादिनी

चेतनंजीव — अचेतना (प्रकृतिः माया, अज्ञानं, जडात्मकम्)

ज्ञानं (तत्त्वगुणः)

क्रिया (रजोगुणः)

इच्छा (तमोगुणः)

महान् (बुद्धि)

अहङ्कार

तैजस — एकादशोन्द्रियाणि राजसप चप्राणाः — तामसशब्दतन्मात्रा

शब्दः

शब्दगुणकाकाशः

शब्द-स्पर्शगुणक वायुः

शब्द-स्पर्श रूपकाग्निः

शब्द-स्पर्श रूप रसकायः

शब्द-स्पर्श-रूप-रस-गन्धक पृथिवी

मनश्चिन्तन

स्वामी दयानन्द की भाँति आपने शुक्ल यजुर्वेद में कर्म की प्रधानता मानते हुए श्रेष्ठ कर्म का अर्थ यज्ञ करते हुए इसमें यज्ञादि के महत्त्व का विस्तार से निरूपण किया है।

गंगानाथ झा जी ने अपने निबन्धों के माध्यम से वाजसनेयी माध्यन्दिन संहिता का वास्तविक स्वरूप स्पष्ट करने का विनम्र प्रयास किया है।

इन्द्रियों को 'प्रजावतीः' कहा गया है। अर्थात् जब इन्द्रियाँ प्रजावती या कर्मरूपी सन्तति से युक्त होंगी तो स्पष्ट ही उससे मन की अभिवृद्धि शक्ति प्रकट होगी।

इसी प्रकार रोग तथा कष्ट से रहित इन्द्रियाँ (अनभीवा अयक्षयाः) इन्द्रियाँ भी प्रबल मन की परिचायक होती हैं।

यह मन इस शुद्धता और प्राबल्य को प्राप्त करने अपने परम तेज से स्वयं ही दृढ़ हो और उसका यज्ञपति भी विचलित न हो यही काम्य है। इसके लिए दान कर्म सर्वोत्तम उपाय धाराओं का उल्लेख है-

९६ शत धारं सहस्र धारम्।'

यह शुद्ध मन ही परम शरण है। यही मन पवित्र कर्ता (सुपू) है। मन की निर्मलता से मनुष्य ऐसी स्वच्छन्दता का अनुभव करता है मानो वह विस्तीर्ण अन्तरिक्ष को प्राप्त कर रहा हो-

उर्वन्तरिक्षमन्वेमि।

मनुस्मृति

धर्मशास्त्र की व्याख्या के क्रम में सर झा ने मनुस्मृति का सादर स्मरण किया है।

'हिन्दू विधि का मूलाधार' का यह एक आधार ग्रन्थ है।

मनुस्मृति एक सर्वथा आदरणीय ग्रन्थ है। इसके श्लोक अमूल्य ज्ञान रत्न हैं-

अपुष्पाः फलवन्तो ये ते वनस्पतयः स्मृता।
पुष्पिणः फलिनश्चैव वृक्षास्तूभयतः स्मृता॥

जिनमें फूल न लगे पर फल लगें उन्हें वनस्पति कहते हैं और जिनमें फूल और फल दोनों लगें उन्हें वृक्ष कहते हैं।

वस्तुतः मनुस्मृति भी एक ऐसा ज्ञान वृक्ष है जो फूल से सौरभ और फल से पोषकत्व प्रदान करता हैं । मनुस्मृति ज्ञान का अक्षय कोष है । यह जीने के सर्वोत्कृष्ट मार्ग पर अभिगमित होने का सम्बल प्रदान करता हैं ।

मनुस्मृति में कर्मरत जीवन की प्रेरणा देते हुए कहा गया है-

प्रर्वत्त कर्म संसेव्य देवानामेति साम्यताम् ।
निवृत्तं सेवमानस्तु भूताव्यत्येति प च वै ।।

अर्थात् प्रवृत्त कर्म करने से मनुष्य को देवताओं की समानता प्राप्त हो सकती है और निवृत्त कर्म करने से मनुष्य पञ्चभूतों का अवलंघन कर मोक्ष प्राप्त करता है ।

बारह अध्यायों के माध्यम से जैमिनि ने प्रतिपादित किया कि जो शास्त्र हैं वे आरंभ करने योग्य हैं अथवा नहीं। ऐसा संशय होने पर 'स्वाध्यायों अध्येनव्यः' अंगों सहित वेदादि का अध्ययन करना चाहिए । इस वाक्य से विहित अध्ययन का क्या फल है ? इस आकांक्षा के होने पर विश्वजित न्याय से स्वर्ग रूप ही फल की कल्पना करनी चाहिए। गुरुकुल में निवास पूर्वक वेदाध्ययन के बाद जिस अध्ययन का अर्थ ज्ञान रूप फल है इसलिए आगे मुनि ने धर्म या ज्ञान की इच्छा के प्रसंग से विस्तृत उल्लेख किया है । दृष्ट अर्थ के संभव होने पर अदृष्ट अर्थ की कल्पना अयुक्त हैं इसलिए अध्ययन से ही वेदार्थ का निश्चय करना चाहिए ।

श्री एस. सुब्रह्मण्यम शास्त्री डा. सर गंगानाथ झा व्याख्यान माला के प्रसंग में व्याख्यान देने के क्रम में सर झा का सादर स्मरण करते हुए कहते हैं-

षड्भिरङ्गै रुपेताय विविधैरव्ययैरपि ।
शाश्वताय नमस्कुर्मो वेदाय च भवाय च ।।

निखिल शास्त्र पार दृश्वान उपकुलपति महोदयाः पण्डितवरेण्याश्च । तत्रादौ सर्वतन्त्र स्वतन्त्रा प्राच्य प्रतीच्योमय विद्यानदीष्णाः संस्कृते, आङ्गल भाषायां च शास्त्र ग्रन्थ निमाणेन परिकर्मित- वाङ्मया विश्वविख्यातयशोराशयः श्री मन्तो महोमहोपाध्याय गंगानाथ झा महोदया इदानीमस्मत्स्मृतिपथमवत्तरन्तिः प्रातःस्मर-णीयानां येषां नाम्नेयं व्याख्यानमाला विश्वविद्यालय व्यवस्थापकैरा युज्यत । अतस्तान् वाङ्मनः कायैरदौ प्रणमामि ।"

पातंजल योग सूत्र पर भी सर झा ने गंभीर कार्य संपादित किया । योग विषयक जिज्ञासा का आरंभ मित्र गोविन्ददास और श्रीमती एनी वेसेंट के कारण हुआ । सर झा कहते हैं-

'पश्यमे योगम् ऐश्वरम्'

आप ईश्वर के प्रसंग में कुछ जाने या न जाने, कम से कम इतना तो जानते ही होंगे कि आप एक विराट् सृष्टि के अंग हैं। वह विराट् सृष्टि आपके चारों ओर दूर-दूर तक अनजान, अज्ञान, अपरिसीम सीमाओं में विस्तार लिये हुए है। थियोसॉफिकल सोसाइटी के सदस्य होने के कारण सर झा ने आत्मा-परमात्मा, मोक्ष, समाधि आदि विषयक अनेक निबन्धों की रचना की।

ध्यानपूर्वक देखने पर पता चलता है कि जबसे इस भूत जगत में हमारी उत्पत्ति हुई है तभी से यह सृष्टि एक अलक्ष्य तरीके से हमारी देखभाल और रक्षा कर रही है।

परात्पर सत्ता अव्यक्त है। यह विश्वव्यापी चेतना अन्तर्यामी-चेतना, बहिर्यामी चेतना सबका अक्षय कोष है। सबकी नियामिका है। परात्पर चेतना ही मूल अनाकारा प्रकृति को जन्म दे रही है। परात्पर सत्ता कोई निर्जीव वस्तु नहीं है। यह जीवितों से भी अधिक जीवित, जीवन को भी जीवन, चैतन्यों को भी चैतन्य प्रदान करनेवाली महाशक्ति है। वह अपने को एक परमश्रेष्ठ आत्मा के रूप में अनुभव करनेवाली महाशक्ति है। यह चित्शक्ति अपनी इच्छा रखती है। यह चित्शक्ति जो संसार का सृजन कर रही है। वही परात्परा चित्शक्ति जो सम्पूर्ण सृष्टि का सृजन कर रही है, उसी की इच्छा है कि यह संसार फले-फूले, विकसित हो, दिन प्रतिदिन खिले, निखरे। यह अपौरुषेय यज्ञ अनन्तकाल से चल-रहा है और अनन्त भविष्य तक चलता रहेगा।

योग

योग का शाब्दिक अर्थ है युक्त होना। वास्तव में आत्मा विश्वात्मा की ही एक किरण है। उसका ही एक टुकड़ा है जिससे हम पृथक् नहीं हो सकते। यह एक परात्पर सत्ता है जो अव्यक्त, अनन्त, अविज्ञेय और अत्यन्त सूक्ष्म है। उसके अंश मात्र में विश्वब्रह्माण्ड स्फुरित हो रहे हैं। यह समस्त विश्व में व्याप्तहोकर अपनी ही शक्ति से उसे धारण कर रही है। फिर वही परात्पर सत्ता हर जीव के हर प्राणी के अन्तस में परिव्याप्त होकर प्रकृति से बनी हुई जड़ मूर्तियों में चैतन्य, स्पन्दन है, वह इसलिए है कि विश्वात्म चेतना, परात्पर चेतना हर समय हमारे अन्दर प्रवहमान रही है।

अपनी आत्म चेतना को देशकाल निरपेक्ष असीम परात्पर चेतना धारा में स्थित देखना और इस निरन्तर प्रवहमान चेतना धारा को अपने अन्दर बहते हुए समझना, देखना ही ज्ञान है और इस ज्ञान का अपनी सम्पूर्ण चेतना, भावना और क्रिया-शीलता के साथ सहवास करना योग है।

जो अपरिसीम चेतन-धारा विश्व के अणु-परमाणु से लेकर मानव के अन्तस् तक में अबाध बह रही है सब इसी चेतना धारा में 'सूत्रे मणिगणा इव'

पिरोयेहुए हैं। योगी का ध्येय 'योग सन्यस्त कर्माणि' होता है। योगी कर्म के दैवी उद्गम को समझने का प्रयास करता है। मनुष्य का हर संकल्प, उसकी हर इच्छा ईश्वर के, विश्वात्मा के मन में उत्पन्न होती हैं। विख्यात हैं-

योगः कर्मसु कौशलम्।

योग कर्मों में कुशलता और चमत्कार उत्पन्न करता है। सत्कर्मों को पराकाष्ठा तक पहुँचाना ही कर्म योग है। ईश्वर समर्पित मन के साथ जब कार्य किये जाते हैं तो कर्मों में एक अद्भुत चमत्कार उत्पन्न होता है-

अक्षरं ब्रह्म परमं स्वभावो अध्यात्ममुच्यते।
भूत भावोद्भव करो विसर्गः कर्म संज्ञितः
अधिभूतं क्षरो भावो पुरुषश्चाधिदैवतम्।
अधियज्ञो अहमेवात्र देहे-देह भृतांवर॥

चिन्मयी शक्ति इस महाशून्य से भी परे है। वह निराकार मूल प्रकृति और कुछ नहीं की अवस्थावाले महाशून्य से भी सूक्ष्म है, परे है। यह परात्पर महासत्ता या आत्मा देश-कालातीत अवस्था में अनन्त अव्यय अक्षय स्रोत की तरह निरंतर बह रही है। आत्मा के इस अनन्त क्षेत्र को ही अर्थात् इस अनंन्त चेतना को ही अध्यात्म नाम दिया गया है। अध्यात्म का सबसे महत्त्वपूर्ण सूत्र है-

'यथा पिंडे तथा ब्रह्माण्डे।'

चिति की धारा परात्पर से निकलकर सम्पूर्ण विश्व में व्याप्त हो गई और विश्व शरीर में एक आत्मा के रूप में प्रतिष्ठित हो गई है। आत्म ज्ञान का अर्थ आत्मा के मूलभूत तत्त्वों को समझना है और योग का अर्थ उन तत्त्वों का मानव कल्याण में प्रयोग करना है। योग क्रियात्मक है। आत्म ज्ञान को प्राप्त कर मानवकल्याण में उसका उपयोग करना ही आध्यात्म का लक्ष्य है।

आत्मा का क्रमिक अवतरण

परात्पर

विश्वात्मा

अन्तर्यामी   बहिर्यामी

आत्मा

व्यापकता   ज्ञान   प्रेम   आनन्द   शक्ति   विश्वचक्र में आत्मा की स्थिति

से	से	से	से	से	से
वर्गों और दायरों में अपनी चेतना को कैद न करना।	जीवन में स्वतन्त्र चिन्तन का विकास	प्रेम तथा सौहार्द्र	मुदिता, दूसरों को प्रसन्न करना तथा स्वयं प्रसन्न रहना	कर्म तथा पराक्रम	समष्टि के लिए कर्म

यह ज्ञान अधिभूत तथा अधियज्ञ व्यवस्थाओं से संचालित होता हैं। परमात्मा स्वयं कहते हैं कि-

अव्यक्तं व्यक्तं आपन्नमन्यते माम बुद्धय:
अहो आकार हीन स्त्वम्स सर्व विग्रहवानपि।'

मैं अव्यंक्त हूँ लेकिन मुझे सीमित व्यक्ति मानते हैं।

सम्पूर्ण चेतना के साथ स्मरण से, सम्पूर्ण आन्तरिक सत्यता के साथ प्रार्थना करने पर दिव्य महाचेतना जीव के प्रति आकर्षित होती है और जीव महाचेतना की कृपा और अवतरण की आशा कर सकता है वशर्ते वह ईश्वर की इच्छा के सामने सर झुकाए और अपने को पूरी तरह ईश्वर की इच्छा के सम्मुख समर्पित कर दे।

योगवार्त्तिक, पातञ्जल योग दर्शनम् आदि पर सर झा ने गंभीर कार्य किया।

पतंजलि के द्वारा अनुशासित योग के स्वरूप का सादर निर्वचन करते हुए कहा गया है-

पतञ्जलिमुनेरुक्ति: काव्यपूर्वा जयत्यसौ।
पुत्रकृत्योर्वियोगो पि योग इत्युदितो मया॥

समाधि पाद, साधनपाद, विभूतिपाद तथा कैवल्य पाद का सर झा ने विस्तार से उल्लेख किया है जो आपके योग विषयक ज्ञान का प्रतीक हैं।

योगवाशिष्ठ

दृश्यं नास्तीति बोधेन मनसो'दृश्यमार्जनम्।
संपन्नं चेतदुत्पन्ना परा निर्वाण निवृति:॥

'दृश्य नहीं है' ऐसा आत्मसाक्षात्कार के ज्ञान से तीनों काल में दृश्य का अभाव समझने पर नित्य सिद्ध पर निर्वाण निर्वृतति, परमानन्द तत्वज्ञान-प्रकाश होती है।

निर्विषय चित् प्रकाश स्वरूप, विज्ञानरूप और निरामय है।

चित्तमात्मचमत्कारं तच्च तत्कुरुते स्वतः।

चित्त आत्मकल्पित है। यह कल्पना आत्मा स्वतः करती है। आत्मा से अलग दूसरा कुछ भी नहीं है, ऐसा दृढ़ निश्चय से सभी दृश्य पदार्थ संकल्प विकल्प रहित रूप से आकाश की तरह सन्भाग-स्वरूप से रहने पर सर्वत्र व्यापक महात्मा तृप्त होकर स्वयं निरतिशयानन्द स्वरूप से आनन्दित होता हुआ जाग्रत स्वप्न में प्राप्त हुई वस्तुओं को निःसंग रूप से विचार करने वाले चित्त में रहता है।

परमानन्द आत्मैव रस इत्या गमा विदुः।
शब्द तस्तदभिव्यक्तिप्रकारो यं प्रदर्शितः॥

भारतीय दर्शन तथा पुराणादि का कोई ऐसा अंश नहीं जो डा. सर झा की दृष्टि से छूटा हुआ हो। भारतीय दर्शन को विश्व पटल पर लाने के लिए सर झा की जितनी भी प्रशंसा की जाय कम होगी। अपने अन्तिम समय तक सर झा अध्ययनरत रहे। आसन्न मृत्यु को जानने के पश्चात् भी आपकी आकांक्षाएँ अध्ययन से ही संलग्न थी। वे विवादचिन्तामणि के अन्तिम भाग का प्रूफ देखने के लिए विकल थे। शाबर भाष्य के संशोधित स्वरूप के प्रकाशन के लिए भी आपकी चिन्ता लगातार बनी रही। प्रूफ आया कि नहीं इसके लिए यदा-कदा पूछा करते थे।

एक योगी की भाँति वे अन्तिम यात्रा के लिए स्वयं को प्रस्तुत कर चुके थे। अपने आदर्श मीमांसक प्रभाकर मिश्र के गुरु महापण्डित कुमारिल भट्ट की भाँति आपने प्रयागराज में चिरसमाधि ले ली। कर्मयोगी सर गंगानाथ झा भारतीय तथा यूरोपीय विद्वन्मंडलियों में सदैव सम्मानीय बने रहेंगे। उनकी असंख्य कीर्ति रश्मियाँ आज भी ज्ञान मार्ग के पथिकों को अध्यवसाय का उदात्त सूत्र समर्पित कर रही हैं। सत्य है कि सर गंगानाथ झा जैसे युगपुरुष का कभी अवसान नहीं होता। अपने रचना-संसार के माध्यम से सर झा आज भी अपने कर्त्तव्य का निर्वाह कर रहे हैं।

*****

VI

हिन्दी साहित्य को डॉ. झा की देन

मन्त्रे तीर्थे द्विजे देवे दैवज्ञे भेषजे गुरौ ।
यादृशी भावना यस्य सिद्धिर्भवति तादृशी ।।

महामहोपाध्याय डॉ. सर गंगानाथ झा को हिन्दी-साहित्य कभी विस्मृत नहीं कर सके । समस्त युक्त प्राप्त में हिन्दी तथा उर्दू पाठ्यक्रम को पृथक् करने का पहला प्रस्ताव आपने ही रखा था । उच्चतर कक्षाओं में हिन्दीं अध्यापन के लिए आपने न केवल प्रयास किया वरन आपको सफलता भी मिली । राजर्षि पुरुषोत्तम दास टण्डन के साथ आपने लेजिस्लेटिव काउन्सिल में हिन्दी के अभ्युत्थान के लिए संघर्ष का शंखनाद किया था । हिन्दी में आपकी तीन मौलिक पुस्तकें हैं । दर्शन विषयक अनेक निबन्ध आपने हिन्दी में लिखे थे । पुरुष परीक्षा पर एक सुन्दर निबन्ध सरस्वती में प्रकाशित हुआ था । इलाहाबाद तथा काशी से प्रकाशित होने वाले साहित्य-पत्रों में आपके छोटे-बड़े अनेक निबन्ध प्रकाशित हुए । आपने हिन्दी साहित्य को उत्कृष्ट कवियों तथा भाषाविदों का अवदान दिया । डा. राम कुमार वर्मा, डा. हरिवंश राय बच्चन, डा. भगवतीचरण वर्मा, डा. बाबूराम सक्सेना जैसे साहित्य-शिल्पी तथा भाषाविद् डा. सर गंगानाथ झा से निरन्तर प्रेरणा पाते रहे । डा. भगवान दास को प्रेषित एक पत्र में आपने हिन्दी की दशा पर खेद प्रकट करते हुए उसकी अभ्युन्नति के लिए एक विस्तृत योजना की चर्चा की है । पटना विश्वविद्यालय द्वारा आयोजित महाराज रमेश्वर सिंह भाषण माला में आपने क्रमशः संस्कृत, हिन्दी तथा मैथिली में व्याख्यान दिये । पत्नी के निधन के उपरान्त आपने हिन्दी की विभाषा या बिहारी हिन्दी के रूप में ख्यात मैथिली में एक सुन्दर शोक-गीत की रचना की । यह शोक गीत मानवीय अनुभूतियों का अन्यतम निदर्शन है-

पति सन्तान उचारित रामकृष्ण शुभ नाम
सुनइत शान्ति पुरस्सर त्यागल प्राण ललाम ।। १ ।।
पुत्र पुत्रिका कनइत सभकें आशिष देल
भागमन्ति पति अनुगत परमधाम चलि गेल ।। २ ।।
सेवा अहँक न सकलहुँ कय हम अन्तिम बेरि
कहइत कानय लागलि नहि किछु बाजलि फेरि ।। ३ ।।

जनु कानी अहँ चललहुँ सुन्दर ठाम महान
जतय भेटत जे सभ गेल जे अछि तकरो ज्ञान ॥ ४ ॥
सभकेँ त्यागि कतय गेलि कत गेलि प्राण पियारि ।
कोन विधि जिवन निमाहव बिनु सहचरि सुकुमारि ॥ ५ ॥
कतेक मनोरथ बाँटल दुहु मन हर्ष अपार
संग भय जप-तप करइत तख संगहि संसार ॥ ६ ॥
ते सभ रहल मनहि मन छोड़ि सबहिं चलि गेल
सभक समक्ष पड़ाइलि ललित धाम चलि गेलि ॥ ७ ॥
जीवन अहँक सफल भेल सबखन आनन्दकन्द
सासु पुतोहु शिशुक संग रहब सतत आनन्द ॥ ८ ॥
हमर मनोरथ भंगक जनु करि चित्त मे खेद
शीघ्रे आबि मिलब हम जतय फेरि नहि भेद ॥ ९ ॥[१]

हिन्दी साहित्य के स्वनामधन्य आचार्य पण्डित महावीर प्रसाद द्रिवेदी आपको गुरुवत् मानते थे । अनेक संगोष्ठियों में सर झा को सुनकर आप आनन्द-विभोर हुए । अपने मीमांसा विषयक हिन्दी निबन्धों को सर झा के अवलोकनार्थ आपने प्रेषित किया था ।

आध्यात्म विद्या में सर झा की आत्यन्तिक रुचि थी। इस विद्याका प्रायेण वेदान्त से घनिष्ठ सम्बन्ध है । योगवशिष्ठ पर आपने हिन्दी में व्याख्यान दिया था । देवभाषा संस्कृत और राष्ट्रभाषा हिन्दी की समुन्नति के लिए सर झा सदैव प्रयत्नशील रहे । लार्ड कर्जन ने ईंग्लैंड के सुविख्यात पत्र 'एथीनियम' के लिए पुस्तक समीक्षा प्रेषित करने का आह्वान किया । सर झा ने इस कार्य के लिए स्वामी विवेकानन्द व्याख्यानमाला का चयन किया । आत्मावलोकन में सर झा विवेकानन्द का सादर आभार मानते हैं । आध्यात्मिक आह्लाद के क्षणों में लिखित विवेकानन्द की 'ईश्वर बोध' कविता पर आपने वैदुष्यपूर्ण टिप्पणी लिखी । उक्त कविता की आलोचना के क्रम में आपने यूरोपीय श्रेष्ठ कवियों की उत्कृष्ट रचनाओं का भी उल्लेख किया । अनेक व्याख्यानों में सर झा ने इस कविता का उल्लेख किया है-

ईश्वर-बोध

पर्वतों पर, घाटियों में और पर्वत मालाओं में,

मंदिरों में, गिरिजाघरों में और मस्जिदों में,

---

१ डॉ. सर झा की डायरी से मूल पृष्ठ, छाया प्रति के रूप में अभिलेख में संलग्न ।

मैंने तुम्हें ढूंढ़ा
किन्तु व्यर्थ।
बीहड़ जंगलों में एक भटके हुए बालक की भाँति
मैं भी चिल्लाता था, और एकाकी-
'तुम कहाँ हो, मेरे परमात्मा, मेरे प्रेम !'
प्रतिध्वनि का उत्तर आया और चला गया।
दिन बीते, रातें बीतीं और वर्ष भी बीत गए।
मन में वह आग किन्तु जलती रही
जान नहीं पाया,
दिन-रात मैं कब पिघलता रहा !
हर देश और हर पन्थ के-
सब पवित्र नामों से उनको पुकारता रहा-
ओ महत् ओ आत्मकाम
कृपा करो, पथ प्रदर्शन करो।'
वर्षों पर वर्ष इसी रुदन में-
बीत चले।
एक-एक पल, युग-युग सा लगता था
और तब
एक दिन इन्हीं क्रन्दनों के बीच
कोई बुलाता-सा ज्ञात हुआ
एक मृदु और मधुमय स्वर ने
धीरे से पुकारा-
'ओ मेरे बेटे, ओ मेरे बेटे'।
वाणी थी आत्मा-सी निज की
रग-रग की जानी पहचानी-सी,

मैंने पैरों पर उठकर
वाणी के उद्दाम को
पाने की चेष्टा की।
ढूँढ़ा, और, ढूँढ़ा
चारों ओर, पीछे, आगे
बार-बार वही स्वर देवी का
मुझसे बातें करता रहा,
और मेरा प्राण, शांत एवं तन्मय,
जादू की डोर में बँधा-सा
अध्यात्म-रस में भींगा-भींगा।
एक तीव्र आलोक ने
मेरे प्राण को जगा दिया।
अन्तस्तल के
बन्द द्वारों को खोल दिया।
ओ आनन्द, ओ शान्ति,
उस दिन से
जहाँ कहीं जाता हूँ,
उनको पास खड़े पाता हूँ।
पर्वतों में, घाटियों में,
पर्वतमालाओं में, उपत्यकाओं में
दूर-अतिदूर
ऊँचे और ऊँचे
चन्द्रमा का मृदु प्रकाश
तारों की चमक,
दिन का प्रभा मण्डल

वही तो चमकता हैं ।

उसका ही सौन्दर्य हैं, उसकी ही शक्ति है,

बाकी तो सबके सब, प्रतिबिम्बित छाया है ।

उत्फुल्ल प्रातः और ढलती हुई संध्या,

असंख्य लहरों में इतराता हुआ सागर,

प्रकृति-सौन्दर्य में,

चिड़ियों की चह-चह में

मैं तुम्हें ही देखता हूँ ।

माँ की गोद में पड़े हुए

बच्चों की मुँदी आखों

भोले भाले बच्चों की खेलकूद के अवसरों में,

तुम मुझे अपने पास ही खड़े दिखाई पड़ते हो ।

जब मित्रता का पवित्र हाथ बढ़ता है

तो उस बीच भी तुम्हीं दिखाई पड़ते हो ।

तुम्हीं तो अमृत उड़ेलते हो ।

तुम्हीं मेरे देवता हो

भूत के सभी धर्म गुरु

तुममें से ही आते हैं ।

वेद, बाइबल, कुरान

तुममें ही दृढ़ता,

और सन्तुलन पाते हैं ।

प्राणों के प्राण, तुम ही हो, तुम ही हो ।

ओम् तत् सत्

तुम्हीं मेरे देव, मेरी भक्ति

मैं तुम्हारा हूँ, तुम्हारा हूँ ।[१]

पुरुष परीक्षा

पुरुष परीक्षा महाराज शिवसिंह की आज्ञा पर लिखी गयी थी । यह एक उत्कृष्ट नीति ग्रंथ है । इस ग्रन्थ की रचना महाकवि विद्यापति ने नवीन बुद्धिवाले बालकों को नीति का परिचय कराने तथा कामकला में कौतुक रखनेवाली पुरस्त्रियों को हर्ष पहुँचाने के लिए किया है-

शिशूनां सिद्धयर्थं नयपरिचितेर्नूतनधियां
मुदे पौरस्त्रीणां मनसिज-कलाकौतुकजुषाम् ।
निदेशान्निःशङ्कः सपदि शिवसिंहस्य नृपतेः
कथानां प्रस्तावं विरचयति विद्यापति कविः ॥

पुरुष परीक्षा की भूमिका के अनुसार चन्द्रातप नाम के नगर में पारावार नाम के एक सुयोग्य नृपति थे । समुद्र सीमा तक के सभी नृपति पारावार की श्रेष्ठता स्वीकार चुके थे । राजा को एक दिव्य लक्षणा कन्या थी । पद्मावती सर्वाङ्ग सुन्दरी और सकल शुभ लक्षणों से समन्वित थी । पद्मावती को विवाह योग्य अनुभव कर राजा पारावार चिन्तित हुए । योग्य वर की तलाश के लिए आपने ऋषि सुबुद्धि से सुझाव प्राप्त करने का निर्णय लिया ।

महाराज नें ऋषि सुबुद्धि से कहा-

नैकाकी निर्णयं कुर्यादिष्टे कृत्यविधौ क्वचित् ।
सम्भवन्ति बुधस्यापि दोषा वै विभ्रमादयः ॥

हे महात्मन् ! इष्ट कार्यों में अकेले निर्णय नहीं करना चाहिए । संभव है मोहवश कोई अनुचित ही कार्य न कर बैठें, क्योंकि मोहवश बड़े-बड़े बुद्धिमान भी अनर्थ कर बैठते हैं, जिससे सुख की हानि होती है । राजा ने पूछा, 'हे ऋषिवर ! फिर मैं किस प्रकार का वर अपनी कन्या के लिए ढूँढू , कृपा कर कहें ।'

उत्तर में महर्षि सुबुद्धि ने कहा- 'राजन ! पुरुषं वरं करु ।' अर्थात् हे महाराज आप पद्मावती के लिए पुरुष वर कीजिए ।

राजा ने साश्चर्य कहा- ऋषिराज !क्या अपरुष भी कन्या के लिए वर हो सकते हैं ?

---

१ सर झा व हस्तलेख से प्राप्त, शीर्षक- 'विवेकानन्द के प्रति' ।

साधु ने कहा-

लभ्यन्ते पुरुषाकाराः, पुरुषः खलु दुर्लभः ।
वक्ष्यमाणेन चिह्नेन निखिलेनोपलक्षितः ॥

अर्थात् हे राजन ! इस संसार में बहुत से पुरुष कहलाने वाले पुरुष के आकार के लोग दिखाई पड़ते हैं किन्तु वास्तव में वे पुरुष नहीं । मैं जिन लक्षणों को कहूँगा उससे युक्त पुरुष मिलना कठिन है । वास्तव में पुरुष वही है जो पुरुषार्थ के इन लक्षणों से युक्त हो-

वीरः सुधीः सविद्यश्च पुरुषः पुरुषार्थवान् ।
तदन्ये पुरुषाकाराः पशवः पुच्छवर्जिताः ॥

अर्थात् जो पुरुष वीर हो, सुधी हो, विद्वान् हो तथा पुरुषार्थ करने वाला हो वही यथार्थ में पुरुष है । इसके अतिरिक्त सभी पुच्छ विषाणहीन पशु ही हैं । उसके वास सुपुरुष लक्षण के क्रम में ऋषि सुबुद्धि ने दानवीर, दयावीर, युद्धवीर, मेधावीर आदि अनेक कथाएँ कहीं । सर गंगानाथ झा ने 'पुरुष परीक्षा' का मार्मिक अनुवाद किया । पुरुष परीक्षा की दो उपकथाओं का आपने सर्वाधिक उल्लेख किया है ।

अथ मेधावि कथा

मेधावी पुरुष की कथा

सकृदुक्तं च गृहणाति न च विस्मरति श्रुतम् ।
धार्धारणावती यस्य मेधावी स इहोच्यते ॥

एक बार सुनकर जिन्हें विस्मृति न व्यापे ऐसे धैर्यपूर्वक तथ्यादि को धारण करनेवाले विवेकशील पुरुष मेधावी कहलाते हैं । गौड़ देश में श्री हर्ष नाम के एक अत्यन्त प्रतिभाशाली कवि रहते थे । काव्यशास्त्रीय तथा साहित्य-शास्त्रानुरुप आपने 'नलचरित' काव्य की रचना की । वास्तव में किसी कवि को उसी रचना से यश की प्राप्ति होती है जो रसमय, हृदयहारी तथा गुण अलङ्कारादि से युक्त हो । इतर कोटि की रचना तो केवल हास्योपहार ही लाती हैं । विद्वानों के द्वारा प्रशंसित होनेवाला काव्य ही वास्तविक काव्य है । अग्नि मध्य जिस प्रकार स्वर्ण की परीक्षा होती है ठीक उसी प्रकार काव्य की परीक्षा विद्वानों, सहृदयों कवियों के मध्य ही संभव है ।

श्री हर्ष ने निर्णय लिया कि काशी के शीर्षस्थ पण्डितों में यदि 'नलचरित' प्रशंसित हुआ तो निश्चय ही इसकी श्रेष्ठता प्रमाणित हो जाएगी । निदान श्री हर्ष अपना काव्य लेकर काशी पहुँचे । वहाँ आपने अपना काव्य कोक पण्डित को सुनाना प्रारंभ किया । महापण्डित कोक सांसारिक सुख से विरक्त थे । वे

अधिक समय समाधि में ही रहते थे। मध्याह्न बेला में जब आप स्नानार्थ मणि-कर्णिका घाट जाते थे उसी समय उनके पीछे-पीछे चलते हुए श्री हर्ष उन्हें अपनी रचना सुनाने लगे। जब आधा से ऊपर नलचरित का वाचन कर चुके और कोक पण्डित ने कुछ भी नहीं कहा तो श्री हर्ष का धैर्य डोल गया। अगले दिन श्री हर्ष ने पण्डित जी से कहा कि- हे आर्य ! मैंने इस महाकाव्य की रचना में कठोर परिश्रम किया है। आपको निजदेशीय और काव्यकला मर्मज्ञ जानकर दूर देश से मैं उसे आपको सुनाने आया हूँ। राह चलते ही मैंने आपको इसका अंश सुनाया है किन्तु महामना ! आप न तो निन्दा करते न ही यथोचित प्रशंसा। मुझे तो ऐसा प्रतीत होता कि आप इसे सुनते ही नहीं-

तन्मये कर्णमेव नार्पयति भवान्।

कोक पण्डित इसे सुनते ही बोल उठे-

अरे ! मैं कान कैसे नहीं देता। पहले सम्पूर्ण काव्य सुन लूँ फिर शब्द और अर्थ की परीक्षा कर सन्दर्भ शुद्धि का मूल्यांकन करूं तब न कुछ विशेष कह सकूँगा। कवि ! विश्वास करो इसी वासना से अभी तक मैंने कुछ नहीं कहा। तुम्हारे काव्य को मैंने न केवल सुना है वरन् उसे आत्मसात् भी किया है। शायद तुम्हें विश्वास नहीं हो इसलिए निज-काव्य का श्रवण करो। तदनन्तर एक माह तर्क सुने गए अंश का कोक पण्डित ने यथावत् पारायण कर दिया। महापण्डित कोक के श्री मुख से अपना काव्य सुनते ही श्री हर्ष भावविह्वल होकर उनके श्रीचरणों पर गिर पड़े। आपने कहा कि-

भोः कोकपण्डित परितुष्टोस्मि तव मेधामहत्त्वेन।

हे महापण्डित मैं आपकी मेधा को अनुभव कर अतिप्रसन्न हुआ।

मेधावी कथा के उपरान्त आपने गीतविद्य-कथा का भी अंग्रेजी तथा हिन्दी में अनुवाद किया। शस्त्रविद्य, शास्त्र विद्य, वेद विद्य, लोक विद्य, अवसत्र-विद्य आदि की कथा का सर झा ने मार्मिक विश्लेषण किया है।

गीत-विद्य कथा

पुरुष परीक्षा के अनुसार-

गीतेन विद्यया यस्तु प्रमोदयति जीविनः।
गीतार्जितयशोराशिर्गीतिविद्यः स उच्यते॥

संगीत विद्या से जीवमात्र को प्रमुदित कर विस्तृत यश प्राप्त करनेवाले विद्वान् गीतविद्य कहलाते हैं।

गोरखपुर राजधानी में उदयसिंह नाम के प्रतिभाशाली राजा थे। दूर-दूर से गुणी विद्वान् तथा कलाकार उनके आश्रय में आते थे। तिरहुत क्षेत्र से एक सुविख्यात गायनाचार्य का आगमन हुआ। उस मैथिल गायनाचार्य का नाम था कलानिधि। मिथिला की सांस्कृतिक गरिमा के अनुरूप आप संगीत शास्त्र के अपूर्व ज्ञाता थे। संगीतज्ञों में उनका कोई जोड़ा नहीं था। राजा के समक्ष जब आपने गायन किया तो प्रसन्न होकर उदयसिंह ने उन्हें स्वर्ण मुद्राओं से पुरस्कृत किया। कलानिधि की प्रशंसा सुनकर तथा उन्हें पुरस्कृत होता देख दौवारिक गायकों को बड़ा क्षोभ हुआ। उस देश के गायकों ने कलानिधि के गायन को निकृष्ट कहकर उनकी निन्दा की। गायनाचार्यों ने राजा से कहा कि-

'देव ! गायकोऽसौ विदेशी नाममात्रेण कलानिधिरस्ति।

गीतकलां कामपि न जानाति। देव ! कथमिमं पुरस्करोति।'

आदरणीय राजन ! यह परदेशी गायक केवल नाम से ही कलानिधि है। संगीत कला का इसे कुछ भी ज्ञान नहीं है। फिर आप इन्हें कैसे पुरस्कृत कर रहे हैं।

अविज्ञत्वं यथा राज्ञो गुणिनामपरिग्रहात्।
परिग्रहाच्च मूर्खाणां तथा लोकेषु जायते।

हे राजन ! जिस प्रकार गुणी जनों को आश्रय न देना राजा की अविज्ञता है उसी प्रकार गुणहीन को अनुचित मान देना, उसे आश्रय देना भी नीति विरुद्ध है। उदयसिंह ने गायनाचार्यों से कहा कि आपलोग कुछ भी कहें इनके संगीत में अमृतोपम सुख है। मैंने इनकी सांगीतिक गरिमा के अनुरूप ही पुरस्कृत किया है। दौवारिकों ने सभा मध्य दोनों पक्षों के गायन का सुझाव दिया। राजा ने कलानिधि से कहा कि आप अपना पक्ष क्यों नहीं कहते। गंभीर कलानिधि ने कहा कि हे राजन ! मेरे लिये यह अवसर न तो उत्तर देने के अनुकूल है न ही गायन के लिए ही।

श्रोता यदासीद्धरसिंह देवो गाताहमासं नृपतस्तदैवा
मया समानं मधुरस्वणेन न पञ्चमं गायति कोकिलोऽपि॥
य: कर्णपातव्यसुधारसेन श्रोतारमाराधयति स्वरेण।
दिव्येक एवास्ति स वै सुरर्षिर्भूमावहं गायन एक एव॥

हे राजन ! जिस समय राजा हरसिंहदेव श्रोता थे उसी समय मैं गायक था। महाशय ! मेरे समान मधुर स्वर में कोकिल भी पंचम स्वर में नहीं गाते। कान से पीने योग्य अमृतरस स्वरूप स्वर से विमोहित करने वाले गायक या तो स्वर्ग में एक मात्र देवर्षि नारद हैं या धरती पर एक मैं ही हूँ।

दुष्ट दौवारिकों ने इसे आत्मप्रशंसा की पराकाष्ठा कहकर कलानिधि का उपहास करना चाहा। शांतचित्त कलानिधि ने कहा कि राजन् मैं घमण्डी नहीं हूँ। मैं आपके सभा गायकों के साथ गाने के लिए प्रस्तुत हूँ किन्तु हमारी मध्यस्थता कौन करेगा ? वास्तव में-

हरो वा हरसिंहो वा गीतविद्याविदौ स्थितौ।
हरसिंहे गते स्वर्गं गीतवित् केवलं हरः॥

गीतविद्या के वेत्ता स्वयं हर अर्थात् महादेव हैं अथवा नृपति हरसिंह देव। हरसिंह देव के स्वर्गारोहण के पश्चात् एक मात्र शिव ही बच जाते हैं। साक्षात् शिव आवें तभी तो मैं दूसरे गायनाचार्यों के साथ स्पर्धा में गा सकूँगा।

दरबारी गायनाचार्यों ने इसे भी स्वभाव-दोष प्रमाणित कर हिरण को मध्यस्थ मानने का प्रस्ताव किया। पशु होने के कारण वह किसी का पक्षपात न करेगा। दोनों पक्ष हिरण के सम्मुख अपना-अपना गायन प्रस्तुत करेंगे। महाराज ने इस प्रस्ताव पर कलानिधि का पक्ष जानना चाहा। शांत भाव से कलानिधि ने कहा- राजन् ! हिरण तो स्वभाव से ही गीत रस रसिक होता है। वह तो जिस किसी के गीतों से भी प्रभावित हो जाता है। इसलिए हे राजन् ! यदि पशु को ही मध्यस्थ मानने की बात है तो तृषार्ता गाय मध्यस्थ बने। आप ऐसी व्यवस्था करें जिससे परम तृषार्ता गाय जो जलाशय की ओर उन्मुख हो जलपान छोड़ कर जिनका गीत रस पान करने के लिए लौट आए उन्हें विजयी घोषित करें। राजा उदयसिंह ने इस अभिनव व्यवस्था के अनुरूप आदेश दिया और उसके बाद—

'पश्चात्तथा क्रियमाणे विचारे कलानिधिना जितं, राजपूजा च लब्धा।'

कलानिधि के गायन से प्रभावित होकर परम तृषार्ता गाय ने जलाशय त्याग कर दिया तो राजा ने गद्गद होकर कलानिधि की प्रशंसा की और उन्हें यथोचित सम्मान दिया।

श्रवणहृदयवन्तं प्राणितं जीवलोके
पशुमपि परितुष्टं गीतविद्यः करोति।
पशुजनपरितोषे तस्य विद्या समर्था
प्रभवति परितोषस्तद्विदां किं न तस्मात्॥

ऐसे कलानिधि का सम्मान कर राजा स्वयं भी सम्मानित हुए।

अस्माद्भाग्यवशेन साम्प्रतमपि ब्रह्मर्षिकल्पो महा-
भागः श्री मिथिलाभवोऽपि सकलेस्मिन्भारते भार तः।
छयातीनां जनकः श्रुतौ परिचितः श्री याज्ञवल्क्योन्वयं
गङ्गानाथ सुधीः समस्तजनतानन्दाय चन्द्रायते॥

मीमांसायुगतर्कतन्त्रनिपुणः साहित्यपण्यापण-
श्रौतस्मार्तपरम्पराविमलधीः पाश्चात्यविद्यानिधिः ।
धीरोदात्तगुणाग्रणीः प्रतिमयासंसस्तु चूडामणि-
र्यस्याशामुखमण्डनायितमहो सौजन्यजन्यं यशः ॥

स्वनामधन्य साहित्य शिल्पी के प्रति अभ्यर्थना के ये शब्द सर्वथा उपयुक्त हैं। सर झा मूल रूप से मीमांसक थे। मम्मट विरचित काव्यप्रकाश का अंगरेजी अनुवाद कर आपने परोक्ष भाव से हिन्दी की भी सेवा की। बाद के सभी अनुवादकों ने सर झा के अनुवाद से समिधा प्राप्त कर अपने ग्रन्थ को महिमा मण्डित किया है। बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय की स्थापना के उपरान्त उसके पाठ्यक्रम का प्रारूप सर झा ने ही तैयार किया था। आप महामना मदनमोहन मालवीय के अभिन्न मित्रों में थे। इलाहाबाद विश्वविद्यालय के कुलपति के रूप में गंगानाथ झा जी ने अनेक हिन्दी कवियों को विभिन्न गोष्ठियों में आमंत्रित किया। हिन्दी प्राध्यापकों की नियुक्ति तथा हिन्दी, संस्कृत और अंगरेजी प्राध्यापकों में वेतन विसंगति की दुष्टतापूर्ण नीति का विरोध कर आपने समान वेतन का अधिकार दिलाया।

डा. सर झा ने हिन्दी में काव्यशास्त्र तथा वेदान्त पर अनेक व्याख्यान दिये थे। डा. अमरनाथ झा ने अपने संस्मरण में लिखा है-

He delivered a series of Lectures on Poetry for the Hindustani Academy, and a series of Hindi Lectures for the Patna University.

हिन्दुस्तानी एकेडमी तथा पटना विश्वविद्यालय भाषण माला के पर्याप्त अंश प्रकाशित भी हो चुके हैं। मालवीय जी सर झा के अभिन्न मित्रों में से थे। प्रयाग के नवयुवक कवि मकरन्द के आवास पर अक्सर कविता पाठ करते थे-

इन्दु सुधा बरस्यो नलिनीन पे वे न बिना रवि के हरखानी।
त्यौं रवि तेज दिखायो तऊ बिनु इन्दु कुमोदिनि ना विकसानी ॥
नारी कछू यह प्रीति की रीति नहीं 'मकरन्द जू' जात वखानी।
सांवरे कामरी वारे गुपाल पे रीझि लटू भई राधिका रानी ॥
भूलिहें सो हंसि मांगिबो दान को रज्च दही हित पानि पसारत।
भूलिहें फागु के रागु सबै वह ताकहि कुडकुम मारन ॥
सो तो भयो सबही 'मकरन्दजू' दाखंहि चाखिकै बैर विसारन।
जापर चीर चुराय चढ़े वह भूलिहैं, कैसे कदम्ब की डारन ॥

हिन्दी कवियों के आप मार्गदर्शक थे। विश्वविद्यालय कुलपति के रूप में आपने अनेक विचार गोष्ठियों तथा साहित्यिक सभाओं का आयोजन करवाया।

हिन्दी के अभ्युत्थान के लिए आप सतत् प्रयत्नशील रहे । यह वह समय था जब जन-जन के मन में यही भावना थी-

मेरे प्यारे मेरे देश,

सकल विश्व के वैभव से भी बढ़कर प्यारे देश ।

मेरा पूर्ण अमल सुस्नेह

निश्छल, निश्छल, निश्चय स्नेह,

बलि होने का उद्यत स्नेह ।

तेरी बलि वेदी पर अर्पित,

निज सर्वस्व प्राण औ देह ।

मेरे प्यारे मेरे देश

सकल विश्व के वैभव से भी बढ़कर प्यारे देश ।

मेरे प्यारे मेरे देश ।

सांख्य दर्शन तथा वैशेषिक दर्शन

सांख्य दर्शन न्याय तथा वैशेषिक दर्शन से भी प्राचीन दर्शन है । इसके सिद्धान्त उपनिषदों में सहज ही उपलब्ध हो जाते हैं । द्वैत मत का प्रतिपादक रहने के कारण यह दर्शन प्रकृति तथा पुरुष को दो मूल तत्त्व मानकर उनके परस्पर सम्बन्ध से जगत का आविर्भाव स्वीकार करता है । प्रकृति को यहाँ जड़ और पुरुष को चेतन कहा गया है । प्रकृति सत्त्व, रज तथा तम नामक तीन गुणों की साम्यावस्था का परिणाम मानी गयी है । इन गुणों में वैषम्य होने पर भिन्न-भिन्न पदार्थों का उद्‌भव स्वीकार किया गया । प्रकृति से महान्, महान् से अहंकार, अहंकार से पाँच तन्मात्राएँ उत्पन्न होती हैं जिनमें पाँच ज्ञानेन्द्रियां, पाँच महाभूत और एक मन उत्पन्न होकर प्रकृति पदार्थों की संख्या चौबीस हो जाती है । पुरुष को मिलाकर यह संख्या पच्चीस हो जाती है । न्याय दर्शन में आत्मा का अत्यन्त हृदयग्राही विवेचन किया गया है । ध्यान-धारणादि उपायों के द्वारा आत्मा का साक्षात्कार करना तथा चित्त की सुख-दुख से विरहित साम्यावस्था को प्राप्त करना ही न्याय दर्शन का परम लक्ष्य है । सांख्य दर्शन के आद्रि विद्वान् है कपिल । उपनिषदों के साथ-साथ इस विचार-सरणी के बीजक महाभारत, चरक, पुराण, स्मृति तथा अनेक काव्यों में वर्णित है । पातंजल योग शास्त्र की यही आधार-शिला है । हिरण्यगर्भ की प्राचीन योग परम्परा की भी यही भूमिका रही है ।

वैशेषिक दर्शन पर डा. झा ने जहाँ वैशेषिक दर्पण की रचना की वहीं अनुवाद के क्रम में इसकी विस्तृत व्याख्या की है ।

सम्यग्दर्शनसम्पन्नः कर्मभिर्ननिबध्यते ।
दर्शनेन विहीनस्तु संसारं प्रतिपद्यते ॥

वैदिक काल से ही भारत भूमि में दो दार्शनिक धाराएँ प्रवाहित होती आ रही हैं । एक को द्वैत और इतर को अद्वैत कहकर अभिहित किया जाता है । पौराणिक मान्यता है-

'द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषस्वजाते ।'

वैशेषिक दर्शन भी द्वैतधारा का ही एक अंग है । इसका निर्माण उस विपर्यस्त पुरुष के उद्धार के लिए हुआ है जो इस संसार से सहसा विरक्त नहीं हो पाता । इस दर्शन के प्रतिष्ठापक के रूप में कणाद, काश्यप, उलूक, औलूक्य आदि नाम पाये जाते हैं । वस्तुतः बुद्धि वैशिष्ट्य से उपोद्धलित होने के कारण ही इसे वैशेषिक कहा गया है । यहाँ अन्य दर्शनों की अपेक्षा विशिष्ट तत्त्वों का ही व्याख्यान हुआ है-

विशिष्यते सर्वतः व्यवच्छिद्यते-येन स विशेषः ।

समग्रतः-

विशेषाभ्याम् व्यवहरतीति वैशेषिकं दर्शनम् ॥

वैशेषिक दर्शन न्याय दर्शन के अधिक निकट है । नैकट्य के कारण ही ये समानतन्त्र भी कहलाते हैं । दोनों ही दर्शन बौद्धों के क्षणिक वाद का खण्डन करते हुए तथा सांख्य के विश्वरचना सिद्धान्त की उपेक्षा कर क्षिति, जल, तेज व पवन नामक चार तत्त्वों को विश्वरचना के लिए उत्तरदायी मानते हैं । दोनों में जीवन का लक्ष्य मोक्ष की प्राप्ति मानते हुए कर्मवाद को स्वीकार किया गया है किन्तु दोनों में अनेक विषमताएँ भी हैं ।

वैशेषिक दर्शन में सत्य की मीमांसा विज्ञान की दृष्टिं सामने में रखकर की गई है । जहाँ न्यायदर्शन का प्रधान लक्ष्य अंतर्जगत और ज्ञान की मीमांसा है वहां वैशेषिक दर्शन का मूल लक्ष्य वाह्य जगत की विस्तृत समीक्षा है । वैशेषिक दर्शन का मूल विषय पदार्थ विचार ही है । यहाँ पदार्थों को भाव एवं अभाव नामक दो प्रधान वर्गों में विभाजित कर संसार में उपलब्ध वास्तविक आस्तिक वस्तुओं अर्थात् जीवित शरीरधारी वस्तुओं, मानव आत्मा आदि को भाव तथा अनस्तित्त्व वस्तुओं को अभाव माना गया है ।

दार्शनिक प्रश्न सामान्यतया जगत, जीव, ईश्वर और मुक्ति से अनुलगित होते हैं । लौकिक लोकान्तर तथा लोकोत्तर दृष्टियों से इनके समाधान का प्रयास

किया जाता रहा है। षड्दर्शन समुच्चय में छः दर्शनों को स्वीकारा गया है। इनमें वैदिक और अवैदिक दोनों आते हैं। अवैदिक दर्शन में बौध, जैन तथा चार्वाक् हैं जबकि वैदिक दर्शनों में न्याय-वैशेषिक, सांख्ययोग तथा मीमांसा दर्शन हैं। इन्हीं दर्शनों के अंग उपाङ्गों को जोड़कर मध्वाचार्य ने इनकी संख्या सोलह बतलायी है। अग्निपुराण के अनुसार-

सांख्यं योगः पाशुपतं वेदा वै पञ्चरात्रकम्।
कृतान्तपञ्चकं ह्येतत् गायत्री च शिवा तथा ॥

वायुपुराण में षड्-दर्शनों को ही स्मरण किया गया है-

ब्राह्मं शैवं वैष्णवं च सौरं शाक्तं तथाहितम्।
षड्दर्शनानि चोक्तानि स्वभावनियतानि च ॥

इन दर्शनों में सांख्ययोग तथा न्याय वैशेषिक दर्शन अत्यधिक विशिष्ट है। ये दोनों दर्शन अपने-अपने मन्तव्यों की मुख्यतया प्रत्यक्ष और अनुमान प्रमाण द्वारा ही चर्चा और स्थापना करते हैं।

वे शास्त्र विशेष को प्रामाण्य मानते हों तो भी अपने मन्तव्यों की स्थापना में अथवा पर-पक्ष के निराकरण में वैसें किसी शास्त्र का कोई आधार नहीं लेते। न्याय वैशेषिक और सांख्य दर्शन मुख्यतः तर्क अथवा अनुमान प्रधान ही हैं। वैशेषिक दर्शन में पहले भाव को ही पदार्थ मानकर द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य, विशेष तथा समवाय नामक छः पदार्थों के अन्तर्गत ही विश्व की समस्त वस्तुओं का अस्त्वि स्वीकार किया गया है। इस दर्शन में सात पदार्थों को स्वीकृति मिली है-

द्रव्यं गुणस्तथा कर्म सामान्यं सविशेषकम्।
समवायस्था भावः पदार्थाः सप्तकीर्तिताः ॥

यहाँ गुणों तथा कर्मों के आदान को द्रव्य कहा गया है और गुण व क्रिया से युक्त द्रव्य को पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, काल, दिक्, आत्मा व मन नामक नौ प्रकारों में विभाजित कर उन्हें पुनः सक्रिय द्रव्य तथा निष्क्रिय द्रव्य नामक दो भागों में विभाजित किया गया है। वैशेषिक दर्शन में परमाणु को महत्ता प्रदान करते हुए उसे विभाज्य, सूक्ष्मतम अवयवहीन और नित्य कहा गया है। इन्हें विश्व का कारण स्वरूप समझा गया है क्योंकि इन्हीं के संयोग से वस्तुओं का निर्माण होता है। गुणऔर कर्म के समान धर्मों के योग का नाम सामान्य और वस्तुओं के पारस्पारिक वैधर्म्य का ज्ञान विशेष कहा गया है। समवाय तथा विशेष जैसे नित्य पदार्थों का अन्य पदार्थों के साथ नामक सम्बन्ध दिखलाने के लिए समवाय नामक नित्य सम्बन्ध की सत्ता भी स्वीकार की गई है। वैशेषिक दर्शन के अनुसार निष्काम कर्मों का सम्पादन भी नितान्त आवश्यक

है। वस्तुतः ऐसे कर्मों का अनुष्ठान तत्त्वज्ञान की उत्पत्ति करता हुआ मोक्ष की उपलब्धि में महत्वपूर्ण कारण बनता है। वैशेषिक दर्शन अत्यन्त प्राचीन दर्शन हैं। महर्षि कणाद् ही इसके प्रथम व्याख्याता है। बाद में प्रशस्तपाद, व्योम शिवाचार्य, श्रीधराचार्य, वल्लभाचार्य आदि मनीषियों ने इस दर्शन पर भाष्य प्रस्तुत कर इसे कायिक रूप से पुष्ट किया।

देवता विषयो भेदो नास्ति नैयायिकैः समम्।
वैशेषिकाणां तत्त्वे तु भिद्यते सौऽनिदर्श्यते॥

वैशेषिकों का देवता के स्वरूप को लेकर नैयायिकों से कोई मतभेद नहीं है। तत्वों की संख्या तथा स्वरूप की दृष्टि से ही दोनों में पार्थक्य दिखलाया गया है-

द्रव्यं गुणस्तथा कर्म सामान्यं च चतुर्थकम्।
विशेष समवायौ च तत्त्वषट्कं तु मन्मते।

सर झा ने वैशेषिक दर्पण में वैशेषिक दर्शन की साङ्गोपाङ्ग तथा तुलनात्मक समीक्षा की है। वैशेषिक दर्शन सम्बंधित भ्रान्तियों का तत्काल ही समाधान हो जाना पुस्तक की गुण सम्पन्नता तथा लेखकीय उपस्थापन क्षमता का प्रतीक है।

संस्कृत शिक्षा विधान

मिथिलेश - महेश - रमेश व्याख्यानमाला के अन्तर्गत सर झा ने अपना एक व्याख्यान संस्कृत में तथा दूसरा हिन्दी में दिया था। हिन्दी में दिया गया आपका व्याख्यान 'संस्कृत शिक्षा विधान' शीर्षक से राष्ट्रीय संस्कृत संस्थान से वर्ष १९८७ ई. में प्रकाशित हुआ। इसका सम्पादन सर झा की बहू स्वनामधन्या श्रीमती डा. आद्या झा ने किया है।

मिथिलेश-महेश-रमेश व्याख्यान-माला का प्रथम व्याख्यान सर गंगा-नाथ झा ने ही दिया। व्याख्यान के प्रारंभिक अंश में ही आपने मिथिलेश की दयाशीलता और गुणग्राहकता की प्रशंसा करते हुए कहा कि- 'इस कार्य के योग्य मुझमें एक योग्यता अवश्य है, जो प्रायः किसी एक व्यक्ति में नहीं पायी जा सकती। आदि मिथिला महाराज महेश ठाकुर की मैं सन्तान्त हूँ। मेरी माता मिथिलेश महाराज छत्र सिंह की पौत्री थी। मिथिलेश महाराज लक्ष्मीश्वर सिंह ने बाल्यावस्था से मुझे पढ़ा-लिखा कर मनुष्य बनाया। तदनन्तर महाराजाधिराज रमेश्वर सिंह की सेवा में रहकर मैंने विद्या में अभिवृद्धि और प्रतिष्ठा लाभ की।

फिर उनके सुपुत्र वर्तमान महाराजाधिराज डा. श्री कामेश्वर सिंहजी का कृपापात्र बनकर आज आपके सामने उपस्थित हुआ हूँ।'[१]

हिन्दी में व्याख्यान देने का अवसर प्राप्त होने पर प्रसन्न होकर आपने कहा- श्रीमान् मिथिलेश की अनुमति से यही निश्चित करना पड़ा कि प्रथम व्याख्यान संस्कृतज्ञ पण्डितों के लिए है, वहाँ संस्कृत भाषा का प्रयोग होना ही उचित है। दूसरे व्याख्यान में राष्ट्रभाषा हिन्दी का ही प्रयोग होना उचित समझा गया।

जीवन पर्यन्त सर गंगानाथ झा संस्कृत की प्राचीन शिक्षा व्यवस्था के पक्षपाती रहे। बाल्यावस्था में प्राप्त पण्डित मण्डली के सत्संग-सुख को वे कभी भूल न सके। महामहोपाध्याय पं. जयदेव मिश्र द्वारा प्राचीन विधि से अक्षरारंभ का दृश्य भूलना संभव नहीं था। 'संस्कृत शिक्षा विधान' में गुण-दोष के आधार पर प्राचीन पद्धति से विद्या-व्यवस्था की आवश्यक्ता पर बल दिया गया है। प्राचीन शिक्षा पद्धति में आपकी अपूर्व निष्ठा थी। गुरुकुल की परिपाटी का संरक्षण तथा परिवर्द्धन नितान्त आवश्यक था। आपने अनुभव किया कि यदि प्राचीन पाण्डित्य परम्परा विलुप्त हो जाय तो संस्कृत का पाण्डित्य निराधार नहीं तो शिथिलमूल अवश्य ही हो जाएगा। मिथिला, नदिया और काशी में प्रचलित प्राचीन पद्धति से असंख्य अध्यवसायियों का अपरिमिति उपकार हुआ था। 'परीक्षा पिशाची' पर व्यंग्य करते हुए आपने कहा कि इसी व्यवस्था के कारण किसी एक विषय में विशेषज्ञता की परिपाटी विलुप्त हो गई। नाना शास्त्रों को अपनानेवाला अध्येता एक की भी सम्यक् जानकारी प्राप्त नहीं कर पाता। ऐसा करना वास्तव में असंभव है।

निबन्ध का मूल उद्देश्य संस्कृत की प्राचीन शिक्षा व्यवस्था के प्रति जनमानस को आकृष्ट करना वर्त्तमान विनाशकारी अवमूल्यक व्यवस्था से परिचित कराना है। निःस्वार्थ भाव से संस्कृत पठन-पाठन की अनिवार्यता आदि को जनमानस के सम्मुख लाना ही आपको अभीष्ट है। जिस व्यवस्था में अंग्रेजी के अध्यापक संस्कृत के अध्यापक से कहीं अधिक वेतन के अधिकारी हों उसमें संस्कृत विद्वान् केवल जीविकोपार्जन के लिए अपना योगदान देंगे तो उन्हें निराशा के अतिरिक्त और किसी वस्तु की प्राप्ति नहीं होगी। आप चाहते थे कि राष्ट्रभाषा की अभ्युन्नति के साथ आदिभाषा अथवा देवभाषा संस्कृत की उपेक्षा नहीं हो। देवभाषा की उपेक्षा पर मार्मिक टिप्पणी करते हुए आपने लिखा-

---

संस्कृत शिक्षा विधान : डा. सर गंगानाथ झा।

'सभी प्रकार के विद्यालयों में शिक्षा राष्ट्रीय भाषा में ही दी जाएगी, यह राजाज्ञा प्रचलित सी हो गई है और विशेषकर होने जा रही है। सिद्धान्त उत्तम तथा लोकोपकारी है किन्तु राष्ट्रीय भाषा के निर्धारण तथा निर्माण का जैसा यत्न हो रहा है इससे स्पष्ट भासित है कि इस भाषा में संस्कृत शब्द का प्रयोग महापातक समझा जाएगा। सर झा की स्पष्ट मान्यता थी कि वर्तमान शिक्षा व्यवस्था प्राचीन व्यवस्था की भाँति किसी विषय में निष्णात पण्डित नहीं बना सकती। आपने स्पष्ट शब्दों में पल्लवग्राही पाण्डित्य के स्थान पर सुधी जनों से सर्वग्राही पाण्डित्य प्राप्त करने का अनुरोध किया।

प्राचीनकाल में न्याय सेवा के लिए भी धर्मशास्त्र का ज्ञान आवश्यक समझा जाता था किन्तु अब न्यायाधीशों द्वारा लिए गए निर्णय ही प्रामाणिक समझे जाते हैं। इस अप्रिय तथ्य का संभाषण करते हुए आपने कहा- 'अपने हृदयगत भावों को, आजन्म सिद्ध सिद्धान्तों को दवाकर यदि लोकप्रिय बनना चाहूँ तो अधर्म होगा- 'प्रिय न नानृतं ब्रूयात' ऐसी आज्ञा भी है।'

वस्तुतः शास्त्राध्ययन एक विशिष्ट अनुष्ठान है। इससे प्राप्त होनेवाला 'शास्त्रीय संस्कार' किसी अर्थलाभ अथवा पुरस्कार विशेष से कदापि तुलनीय नहीं है। अब तो संस्कृत भाषा के प्रति तथा वैदिक साहित्यादि के प्रति अतिरिक्त अभिरुचि रखनेवाले समर्पित छात्र ही इसकी रक्षा कर सकते हैं। केवल अर्थप्राप्ति के लिए संस्कृत का अध्ययन सर्वथा अनुचित है। भारतीय मान्यतानुसार यहाँ प्राचीन काल से ही विद्या दो प्रकारों में विभक्त रही है-

(क) ज्ञानकरी तथा

(ख) अर्थकरी

अर्थकरी छात्रों के लिए वर्त्तमान व्यवस्था तथा ज्ञानकरी छात्रों के लिए शिक्षा की प्राचीन पद्धति ही सर्वोपयुक्त है। आपने अपने निबन्ध में कहा है-

संस्कृत विद्यालयों में उचित और उपयोगी प्रवेश उन्हीं लोगों का है जो केवल विद्यार्थी हैं और स्वधर्म समझकर संस्कृत भाषा तथा उस भाषा में उपनिबद्ध शास्त्रों के ज्ञान का सम्पादन करना चाहते हैं। केवल धर्म साधन के उद्देश्य से किसी और उद्देश्य से नहीं। प्राचीन विधान भी है-

'ब्राह्मणेन निष्कारणो धर्मोऽध्येतव्यः।'

तात्पर्य यह कि जो विद्यार्थी संस्कृत शास्त्र के अध्ययन को अपना 'धर्म' समझे वही पाठशालाओं में जाये केवल जीविकार्थी नहीं।

संस्कृत के अभ्युदय के लिए सर झा जैसे मनीषी की चिन्ता सहज और पूर्ण स्वाभाविक है। आपने सुधी जनों के सम्मुख संस्कृत की प्राचीन शिक्षा व्यवस्था की रक्षा के लिए अनेक सुझाव दिये।

यह व्याख्यान उस समय अनेक विद्वानों द्वारा आलोचना का विषय बना था किन्तु इसकी गुणवत्ता तथा उपादेयता पर किसी ने भी शंका नहीं की। वास्तव में सर झा जैसे मनीषियों की सदिच्छा से ही संस्कृत-भारती का शृंगार होता रहा है। महामहोपाध्याय डा. सर गंगानाथ झा का सर्वाधिक अवदान प्राच्य संस्कृत साहित्य तथा दर्शनादि का अनुवाद कर उसे सकल विश्व के लिए सुलभ कराने के प्रसंग में है। उत्तर प्रदेश, बिहार, बंगाल तथा उड़ीसा में शिक्षा के प्रचार-प्रसार में आपकी महत्त्वपूर्ण भूमिका रही। आदरणीय सलाहकार के रूप में प्रायः सभी शैक्षणिक समितियों से आप जुड़े हुए थे। प्राच्यविद्या सम्मेलन की अध्यक्षता करते हुए आपने अपने मित्रों के सहयोग से ऐसा संकल्प लिया जिससे यह सम्मेलन लगातार आयोजित होता रहे। उन्हीं के दृढ़ संकल्प और उदार नियमावली का परिणाम है कि आज भी प्राच्य विद्या सम्मेलन अत्यन्त विशाल स्तर पर आयोजित किया जाता है। संस्कृत के पश्चात् आपने सर्वाधिक मौलिक लेखन हिन्दी में ही किया। हिन्दी साहित्य में उनके अवदान की पृथक् से चर्चा का अभिप्राय यह नहीं कि आपने हिन्दी में बहुत लिखा, अभिप्राय यह कि आपने हिन्दी में भी लिखा और जितना ही लिखा वह अत्यधिक महत्त्वपूर्ण है। संस्कृत शिक्षा विधान, हिन्दू विधि का मूलाधार, पुरुष परीक्षा का अनुवाद और टिप्पणी, वैशेषिक दर्पण तथा अनेक दार्शनिक निबन्ध के अतिरिक्त आपकी सर्वाधिक रोचक और ज्ञानवर्द्धक हिन्दी पुस्तक का नाम है कवि रहस्य। हिन्दी साहित्य, हिन्दी के मध्यकालीन काव्य तथा कथा-साहित्य के प्रति आपकी विशेष अभिरुचि थी।

कवि रहस्य

हिन्दुस्तानी एकेडमी उत्तर प्रदेश, इलाहाबाद द्वारा वर्ष १९२९ ई. में प्रकाशित कवि-रहस्य सर गंगानाथ झा की सुविख्यात हिन्दी-रचना है। कवि रहस्य में विद्वान् मनीषी ने मध्यकालीन कवियों की शिक्षा-दीक्षा, काव्य के गुण-दोष, काव्योत्पत्ति, लक्षण तथा भेद, शब्द-स्वरूप, कवित्व शिक्षा, कवि, जीवन और जगत जैसे विषयों पर सफलतापूर्वक प्रकाश निक्षेपित किया है। इसका उद्देश्य प्राचीन कवि शिक्षा प्रणाली को स्पष्ट करना ही है। कवि रहस्य अपनी सम्पूर्णता में अद्वितीय रोचकता लिए हुए है। कवि समाज में प्रचलित किंवदन्तियों, काव्यगोष्ठियों की परम्पराओं तथा दरबारी कवियों के सजीव वर्णन के द्वारा मध्यकालीन कवियों का जीवन पुस्तक के पृष्ठों पर मूर्त्त हो उठा है। काव्य तथा

काव्य शास्त्र जैसे गंभीर और दुरूह विषय के प्रतिपादन में भी गंगानाथ बाबू की शैली इतनी सरल और सजीव है कि सभी विस्मित-विमुग्ध हो उठते।

प्रकाशकीय वक्तव्य में डा. धीरेन्द्र वर्मा लिखते हैं-

'हिन्दुस्तानी एकेडमी की ओर से समय-समय पर विविध विषयों पर व्याख्यान मालाओं का आयोजन किया जाता रहा है। प्रस्तुत विषय पर १९२८-२९ में डा. गंगानाथ झा ने व्याख्यान दिये थे जिनको संग्रहीत कर पुस्तक रूप में एकेडमी ने प्रकाशित किया था।

प्रस्तुत पुस्तक में पूर्व मध्यकालीन कवि की शिक्षा दीक्षा और उनसे सम्बन्धित कथाओं, किंबदन्तियों और परम्पराओं का विद्रत्तापूर्ण विश्लेषण हैं। पुस्तक के प्रत्येक स्थल पर उनके गहन अध्ययन और गंभीर चिन्तन की छाप हैं।'[१]

उपोद्घात में स्वयं सर झा कहते हैं- 'कविकृत्य और काव्य एक ऐसा विषय है जिसके सम्बन्ध में जो कुछ चाहे आदमी कह सकता है। वेदान्तियों के 'ब्रह्म' की तरह 'अवाङ्मनसगोचर' होते हुए यह 'सर्वव्यापी सर्वभूतान्तरात्मा' भी है। पर काव्य के प्रसंग में इतना लिखा गया है कि मैंने कुछ नवीन विषय संग्रह करने का विचार किया। दो ग्रन्थ मुझे ऐसे मिल गये जिनके आधार पर मैं कुछ लिखने का साहस कर सका। एक राजशेखर कृत काव्यमीमांसा और दूसरा क्षेमेन्द्र कृत कविकण्ठाभरण। दोनों ग्रन्थ हजार वर्ष से अधिक प्राचीन हैं।'[२]

राजशेखर की मान्यता है कि विना शास्त्र ज्ञान, कठिन शिक्षा और साधना के, मात्र प्रतिभा के आधार पर कवि बनना असंभव है। कवित्त्व सम्पादन के लिए शिक्षा अनिवार्य है।

'कवि रहस्य' में कवि रहस्य तथा कविचर्या-राजचर्या' के शीर्षकान्तर्गत कवि, काव्य तथा काव्य-शास्त्र विषयक अत्यन्त रोचक सामग्रियों को समेकित किया गया है।

काव्यमीमांसा के अनुसार शास्त्र ज्ञान के विना काव्य रचना दिवा स्वप्न ही हैं। भारतीय मान्यतानुसार शास्त्र के प्रकार हैं-

१. पौरुषेय तथा २. अपौरुषेय

---

१ डा. धीरेन्द्र वर्मा : मंत्री तथा कोषाध्यक्ष, हिन्दुस्तानी एकेडेमी, उत्तर प्रदेश।

२ उपोद्घात : डा. गंगानाथ झा।

इस क्रम में आने वाले सभी शास्त्रों का सर झा ने संक्षिप्त और यथा-तथ्य परिचय दिया है।

काव्यपुरुष और साहित्य वधू

शब्द और अर्थ का यथावत् सहभाव अर्थात् साथ होना ही साहित्य है-

सहियोः भावः (शब्दार्थयोः)। सार्थक शब्दों के द्वारा जो कुछ लिखा या कहा जाय सभी साहित्य के अन्तर्गत परिगणित होते हैं। साहित्य के प्रसंग में कवि रहस्य में एक रोचक कथा का वर्णन हुआ है। कथा इस प्रकार है-

एक समय भगवती सरस्वती पुत्र की कामना से हिमालय में तपस्या कर रही थी। ब्रह्माजी की कृपा से आपको पुत्ररत्न की प्राप्ति हुई। इस पुत्र का नाम 'काव्य पुरुष' हुआ। जन्म लेते ही पुत्र ने निम्न श्लोक पढ़कर माता को प्रणाम किया-

यदेतद्वाङ्मयं विश्वमथ मूर्त्या विवर्त्तते।
सोऽस्मि काव्यपुमानम्ब पादौ वन्देय तावकौ॥

अर्थात् जो वाङ्मय विश्व मूर्त्तिधारण करके विवर्त्तमान हो रहा है सो मैं ही काव्य पुरुष हूँ। हे माता ! तेरे चरणों को प्रणाम करता हूँ। प्रसन्न होकर सरस्वती ने कहा-वत्स ! अभी तक विद्वान् गद्य ही बोलते आये। आज तूने पद्य का उच्चारण किया है। तू बड़ा प्रशंसनीय है।

माता सरस्वती ने पुत्र को अनेक वरदान दिये और कुछ काल के लिए पुत्र से विलग हुई। इसी बीच यह शिशु उशनस् अर्थात् शुक्र देव के साथ उनके आश्रम में प्रविष्ट हुआ। वहाँ पहुँचते ही उसने कहा-

या दुग्धापि न दुग्धेव कविदोग्धृभिरन्वहम्।
हृदि नः सन्निधत्तां सा सूक्तिधेनुः सरस्वती॥

'सुभाषित की धेनु जो कवियों के द्वारा दुही जाने पर भी नहीं दुही गई की तरह बनी रहती है- ऐसी सरस्वती मेरे हृदय में वास करें।'

सरस्वती जब लौटी तो अपने शिशु को न पाकर चिन्तित हुई। उसी समय वाल्मीकि ऋषि ने उनसे शिशु के शुक्र-आश्रम में जाने की सूचना दी। प्रसन्न होकर भगवती ने उन्हें 'छन्दोमयी वाणी' का वरदान दिया। कालान्तर में मृत क्रोञ्च की व्यथा को देखकर उनके मुख से अनायास ही निकल पड़ा-

मा निषाद प्रतिष्ठां त्वमगमः शाश्वतीः समाः।
यत्क्रौञ्चमिथुनादेकमवधीः काममोहितम्॥

मिथिला में आज भी अक्षरारंभ से पहले शिशुओंको 'मानिषाद' और-

सा ते भवतु सुप्रीता देवी शिखरवासिनी।
उग्रेण तपसा लब्धो यया पशुपतिः पतिः ॥

श्लोक सिखलाया जाता है। 'मानिषाद' श्लोक के प्रभाव से ही वाल्मीकि ने रामायण तथा द्वैपायन ने महाभारत की रचना की।

एक दिन ब्रह्मा के दरबार में जाने की जिद के कारण माता से अप्रसन्न होकर काव्यपुरुष पूर्व दिशा की ओर चल पड़े। पार्वती पुत्र ने अपने मित्र को यूं जाते देखा तो रोने लगे। पार्वती ने अपने पुत्र के मित्र और सरस्वतीपुत्र को लौटाने के लिए 'साहित्य वधू' नामक एक अत्यन्त सुन्दरी तरुणी की रचना की और उससे कहा- 'वह तेरा धर्म-पति काव्यपुरुष रूठकर जा रहा है- उसके पीछे जा और उसे लौटा ला।' निर्देश पाकर ऋषिगण भी साहित्य वधू के पीछे-पीछे चले।

काव्यपुरुष पूर्व दिशा की ओर जा रहे थे अतः सभी पूर्व दिशा की ओर चले जिधर अंग-बंग-सुम्ह-पुंड् इत्यादि देश हैं। इन देशों में साहित्य-वधू ने जैसी वेष-भूषा धारण की अन्य स्त्रियों ने भी वैसा ही किया। उनका वर्णन ऋषियों ने इन शब्दों में किया-

आर्द्रार्द्रचन्दन कुचार्पित सूत्रहारः
सीमन्त चुम्बिसिचयः स्फुट बाहुमूलः।
दूर्वाप्रकाण्डरुचिरागुरूपभोगात्
गौडाङ्गनासु चिरमेष चकास्तु वेषः ॥

हिन्दी रूप-

चन्दन चर्चित कुचन पर विलसत सुन्दर हार।
सिरचुम्बी सुन्दर वसन बाहुमूल उघरार ॥
अगरु लगाए देह में दूर्वाश्यामल रूप।
शोभित सन्तत हो रही नारी गौड अनूप ॥

उन देशों में काव्यपुरुष ने जैसी वेषभूषा धारण की वहाँ के पुरुषों ने भी उसी का अनुकरण किया। साहित्यवधू की भाषा ही सभी बोलने लगे। उसी बोलचाल की रीति का नाम हुआ गौडी रीति-जिसमें समास तथा अनुप्रास का प्रयोग अधिक होता है। वहाँ जो नृत्य गीतादि कला उन्होंने दिखलाई उसका नाम हुआ भारती वृत्ति। वहाँ की प्रवृत्ति का नाम हुआ 'रौद्रभारती।'

वहाँ से सभी पाञ्चाल की ओर गए। पाञ्चाल-शूरसेन-हस्तिनापुर-काश्मीर-वाहीक-वाह्लीक आदि देशों में साहित्य-वधू द्वारा धारण किये गये परिधान का वर्णन ऋषियों ने इस प्रकार किया-

ताटंक वेल्लन तरंगित गण्ड लेख-
मानाभि लम्बिदर दोलित तार हारम्।
आश्रोणि गुल्फ परिमण्डलितोत्तरीयं
वेषं नमस्यत महोदय सुन्दरीणाम्॥

हिन्दी रूप-

तडकी चञ्चल झूलती सुन्दर गोल कपोल।
नाभी लम्बित हार नित लिपटे वस्त्र अमोल॥

इन देशों में जो नृत्य गीतादि कला साहित्य वधू ने दिखलाई उसका नाम 'सात्त्वकी वृत्ति' और वहाँ की बोलचाल का नाम हुआ 'पाञ्चाली रीति।' इसमें समासों का प्रयोग कम होता है।

वहाँ से सभी अवन्ती गए जिधर वैदिश, सुराष्ट्र, मालव, अर्बुद, भृगुकच्छ इत्यादि देश हैं। इस देश के लोगों की वेषभूषा मिश्रित थी। यहाँ की स्त्रियों के परिधान दाक्षिणात्य स्त्रियों के समान तथा पुरुषों के पाञ्चालों के समान थे। यहाँ की वृत्ति का नाम 'सात्त्वती-कौशिकी' और यहाँ की प्रवृत्ति का नाम 'आवन्ती' हुआ।

अवन्ती से चलकर काव्यपुरुष तथा उनका दल दक्षिण दिशा की ओर गए जहाँ मलय-मेकल-कुन्तल-केरल-पालम जर-महाराष्ट्र-गंग-कलिंग इत्यादि देश हैं। वहाँ साहित्य-वधू तथा पुराङ्गनाओं की वेषभूषा का वर्णन ऋषियों ने इस प्रकार किया-

आमूलतो वलित कुन्तल चारुचूड-
श्चूणालिक प्रचयलांछित भालभागः।
कक्षानिवेश निविडी कृत नीविरेष
वेषश्चिरं जयति केरल कामिनीनाम्॥

हिन्दी रूप-

बांधे केश सुवेश नित बुकनी रंजित भाल।
नीवी कच्छा में कसी, विलसित दक्षिण बाल॥

यहाँ की प्रवृत्ति का नाम दाक्षिणात्य वृत्ति पड़ा। साहित्य वधू ने यहाँ जिस नृत्य गीत कला का उपयोग किया उसका नाम 'कैशिकी' हुआ। बोलचाल की रीति का नाम वैदर्भी पड़ा जिसमें अनुप्रास होते हैं और समास नहीं होता।

चक्रवर्ति-क्षेत्र परिभ्रमण के उपरान्त विदर्भ देश जहाँ कामदेव का क्रीड़ा स्थल वत्सगुल्म नामक नगर है उसी नगर में पहुँचकर काव्यपुरुष ने साहित्य वधू के साथ विवाह किया और लौटकर हिमालय चले आये। सरस्वती और पार्वती प्रतीक्षारत थीं। भगवती सरस्वती ने वर-वधू को आशीर्वाद दिया कि वे सदैव कवियों के मानस में निवास करें।

सर गंगानाथ झा की लेखनी मे यह कथा और भी आकर्षक स्वरूप प्राप्त कर वर्णित हुई है। इसी प्रकार बुद्धिमान, आहार्यबुद्धि तथा दुर्बुद्धि शिष्य का भी मार्मिक वर्णन हुआ है।

दुर्बुद्धि के लिए तो कालिदास की तरह भगवती की कृपा हो तभी ज्ञान या विद्या संभव है।

कवि शब्द 'कवृ' धातु से वना है जिसका अर्थ है वर्णन करनेवाला। काव्य की उत्पत्ति का प्रधान कारण वताते हुए सर झा कहते हैं कि 'समाधि अर्थात् मन की एकाग्रता ही काव्योत्पत्ति का प्रधान कारण है।' मम्मट के अनुसार-

शक्तिर्निपुणता लोककाव्य शास्त्राद्य वेक्षणात्।
काव्यज्ञशिक्षायाभ्यास इति हेतुस्तदुद्भवे ॥

यहाँ शक्ति का अर्थ है 'कवित्त्व बीज रूप संस्कार विशेष' जिसके बिना काव्य का प्रसार हो ही नहीं सकता और यदि हुआ भी तो हास्यास्पद होगा। प्रतिभा और व्युत्पत्ति के द्वारा इस शक्ति का प्रसार होता है। कारयित्री तथा भावयित्री प्रतिभा तथा सारस्वत, अभ्यासिक तथा प्रादेशिक कवियों की यहाँ विस्तृत चर्चा हुई है।

उत्कर्ष प्राप्ति के लिए कवि में अनेक गुणों का होना आवश्यक है यथा-

१. बुद्धिमत्त्वं च (२) काव्यांगविद्यास्वभ्यास कर्म च (३) क्वेश्चोपनिबन्धशक्तिस्त्रयमेकत्र दुर्लभम्। तीनों कोटि के कवियों में प्रमुख अन्तर यह है कि-

एकस्यतिष्ठति कवेर्गृह एव काव्य-
मन्यस्य गच्छति सुहृद् भवनानि यावत्।
न्यस्याविदग्धवदनेषु पदानि शश्वत्
कस्यापि संक्षनरति विश्वकुतूहलीव ॥

अर्थात् निम्न कोटि के कवि का काव्य उसके घर तक ही रहता है। मध्यम श्रेणी के कवि का काव्य उसके मित्रों के घर तक और उत्तम कोटि के कवि का काव्य संसार भर में फैल जाता है। यही कारयित्री प्रतिभा है। वाल्मीकि, कालिदास आदि इसी श्रेणी के आदरणीय कवि हैं।

भावकता के मद में शब्द प्रस्तुति दोष के कारण एक ही काव्य के अनेक अर्थ लगाये जाने लगते हैं। उदाहरण के लिए-

बिहारी-

मानहु मुख दिखरावनी दुलहिन करि अनुराग।
सासु सदन मन ललन हूँ सौतिन दियो सुहाग॥

रत्नाकर ने इसका सरलार्थ बताते हुए कहा है- 'नई दुलहिन विवाहित होकर आई है। आते ही उसकी सुघराई तथा शील पर रीझकर सास ने घर का प्रभुत्त्व, नायक ने उसके रूप तथा गुणों पर अनुरक्त होकर अपना मन तथा सौतों ने अपने को उसकी बराबरी में न समझकर अपने प्रियतम का प्यार दे दिया। यह सब उसे इतनी शीघ्रता से मिल गये मानो मुख दिखलाई में मिले हों।

एक अन्य सहृदय ने इसका अर्थ विदग्धा नायिका द्वारा अनागत नायक का आह्वान के रूप में किया है। कवियों के आठ भेद तथा उनकी दस अवस्थाओं का सर झा ने तथ्यपरक विश्लेषण किया है। सहृदयों को काव्य श्रवण या वाचन से जिस रस का परिपाक होता है उसके नौ प्रकार होते हैं-

१. पिचुमन्दापाक २. बदरपाक ३. भृद्वीका पाक ४. वार्ताक पाक ५. तिन्तिडी पाक ६. सहकार पाक ७. क्रमुक पाक ८. त्रपुसपाक तथा ९.नारिकेल पाक।

विभिन्न पौराणिक ग्रन्थों, कवियों, काव्यशास्त्रीय नियमों तथा भेदापभेदों का यहाँ सरस ढंग से उल्लेख हुआ है। उदाहरणों के द्वारा अपनी मान्यताओं को सर झा सुपुष्ट कर जाते।

न स संकुचितः पन्था येन बाली हतो गतः।
समये तिष्ठ सुग्रीव मा बालिपथमन्वगाः॥

माया में लिप्त सुग्रीव से श्री राम कहते हैं कि- 'जिस मार्ग के आस्त्रवण से बालि मारा गया उस मार्ग का अनुसरण मत करो। अपनी प्रतिज्ञा पर अटल रहो।'

कवि की प्रतिभा को सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण प्रमाणित करते हुए सर झा कहते हैं-

वस्तुस्वभावोत्र कवेरतन्त्रो गुणागुणावुक्तिवशेन काव्ये।
स्तुवन्निबध्नात्यमृतांशुमिन्दुं निन्दंस्तु दोषाकरमाह धूर्तः॥

कवि वस्तु स्वभाव के अधीन नहीं है। काव्य में वस्तुओं के गुण या दोष कवि की उक्ति पर ही निर्भर करता है। चन्द्रमा एक ही वस्तु है पर चतुर कवि जब उसकी प्रशंसा करता है तो उसको अमृतांशु अर्थात् अमृतमय

किरणबाला और जब उसीकी निन्दा करता तो दोषाकर अर्थात् दोषों का आकार कहता है ।

मैथिली में मुक्तक चित्र का उदाहरण देते हुए आप कहते-

बाधल छलहुँ गरभ घर, जे प्रभु कएल उधार ।
तनिक चरण नहिं अरचह, की गुनि गरब अपार ।।
कोन छन की गति होयत, से नहि हृदय विचार ।
एक रूप नहि थिर रह, विषम विषय संसार ।।
मरमबेधि सहि वेदन, आस तदपि विसतार ।
विषय मनोरथ नव-नव, करमक गति के टार ।।

कवि चर्या, राजचर्या के अन्तर्गत मध्यकालीन राजदरबारों तथा दरबारी कवियों की स्थिति पर प्रकाश डाला गया है ।

वस्तुतः काव्य रचना से पहले कवि का कर्त्तव्य है कि वह उपयोगी विद्या तथा उपविद्याओं का गंभीरतापूर्वक अनुशीलन करे । यहाँ प्राचीन साहित्यिक गोष्ठियों, वादविवाद तथा पुरस्कारादि का व्यापक उल्लेख हुआ है । आठ काव्य माताओं का वर्णन करते हुए कहा गया है-

स्वास्थ्यं प्रतिभा भ्यासोभक्तिर्विद्धतकथा बहुश्रुतता ।
स्मृतिदार्ढ्यमनिर्वेदश्च मातरोष्टौ कवित्वस्य ।।

कवि के लिए शुचिता भी अपरिहार्य है । लोग कहते हैं- 'जैसा मसब्बर वैसी तसवीर' । कवि को स्मितपूर्वाभिभाषी होना चाहिए । कवि का अपना संस्कार सदैव उसका सहयोगी होता है । राजा का यह पुनीत कर्त्तव्य है कि वह कवि समाज का आयोजन करे । विभिन्न शास्त्रोक्त वचन के अनुरूप सर झा ने इसका तथ्यपरक विश्लेषण किया है । पंडितों के लिए शास्त्रार्थ तथा स्तरीयता परीक्षा की आवश्यकता पर भी आपने बल दिया है । मिथिला में प्रचलित पाण्डित्य परीक्षा में स्वयं श्री झा सम्मिलित हुए थे और उत्तीर्णता प्राप्त की थी । निज देश में विद्वान् को यदि सम्मान न मिला तो फिर ऐसी विद्या किस काम की क्योंकि-

उन्नति जो परदेश में सो उन्नति केहि काज ।
जाको शत्रु न देखि हैं बन्धु न आबत काज ।।

गंगानाथ झा भारतीय संस्कृति के सम्पोषक थे । निज राष्ट्र के गौरव की आपको अत्यधिक लालसा थी । आपने कवि रहस्य में कवियों के विभिन्न श्रेणियों पर प्रकाश डाला है । ऐसे छः कवि कहे गए हैं जो दूसरों की मेधा (कविता) पर आश्रित होकर कवि कर्म करते हैं । ये हैं-

छायोपजीवी, पदकोपजीवी, पादोपजीवी, सकलोपजीवी।
भवेदयं प्राप्तकवित्वजीवी स्वोन्मेषतो वा भुवनेपजीव्यः॥

तात्कालिक प्रसिद्धि की आकांक्षा नहीं करनी चाहिए। मान्यता है कि-

प्रत्यक्षकविकाव्यं च रूपं च कुलयोषितः।
गृहवैद्यस्य विद्या च कस्मैचिद्यदि रोचते॥

अर्थात् जीवित कवि का काव्य, कुलवधू का रूप, और घर के वैद्य की विद्या कदाचित ही किसी को भाती है। कवि के लिए पूर्व में निर्धारित आचार संहिताओं को सर झा ने सुन्दर अभिव्यक्ति दी है।

'रमणीयार्थ प्रतिपादकः शब्द काव्यम्' में वर्णित रमणीयता के दस प्रकार होते हैं। अविचारित रमणीयता के उदाहरण के क्रम में सर झा ने गोस्वामी जी की रचना का उल्लेख किया है-

सीस मुकुट कटि काछनी भले बने हो नाथ।
तुलसी मस्तक अब नमै धनुष बाण लेहु हाथ॥

इसका आशय तथा अन्तर्गत भक्ति भाव को समझने में तनिक भी विलम्ब नहीं होता।

अर्थ वैमल्य के उदाहरण के रूप में मानस में वर्णित गृहस्थ सुख का हृदयग्राही चित्र स्मरण किया गया है-

भोजन समय बुलावत राजा। नहि आबत तजि बाल समाजा।
कौशल्या जब बोलन जाई। ठुमुकि-ठुमुकि प्रभु चलहिं पराई॥
निगम नेति शिव अन्त न पाई। ताहि धरै जननी हठि धाई।
धूसर धूरि भरे तनु आए। भूपति विहंसि गोद बैठाए॥

रीति, वृत्ति, अलंकार, छन्द, उत्कृष्ट कवि लक्षण, काव्यगुण, काव्य दोष आदि पर भी सम्यक् विवेचन हुआ है। कवि को देश, काल के विभागों का ज्ञान आवश्यक है। जीव,जगत तथा सांसारिक वर्णन में सर झा के विस्तृत अध्ययन तथा उत्कृष्ट भौगोलिक ज्ञान का प्रत्यक्ष दर्शन हो जाता है। किसी भी विषय पर आपके ज्ञान को मध्यम नहीं ठहराया जा सकता। वैद्यक ज्ञान, ऋतुज्ञान, काव्यशास्त्रीय ज्ञान तथा वैदिक साहित्य में इतनी परख कहीं और दृष्टिगोचर नहीं होता। ऐतिहासिक कथाओं में आबद्ध शास्त्रीय क्लिष्ट ज्ञान भी सरल स्वरूप धारण कर धन्य हो उठा है। राजशेखर के सभी प्रमुख सिद्धान्तों का आपने तथ्यपरक आकलन किया है। मध्यकालीन कवि शिक्षा प्रणाली पर कवि रहस्य एक प्रामाणिक दस्तावेज है। पूर्वमध्यकालीन कवियों का काव्य इस बात का साक्षी है कि कवि के लिए नाना शास्त्रों का ज्ञान आवश्यक होता है। सर झा के शब्दों में- 'यह आवश्यकता केवल कपोल कल्पित नहीं है। हमारे हिन्दी में जो

मौलिक कवि हो गए हैं उन्हें उन शास्त्रों का अच्छा ज्ञान था। विना ऐसे ज्ञान के वे इतने आदर्श कवि नहीं हो सकते थे। इनके पदों में इनका शास्त्र ज्ञान बोलता है। उदाहरणार्थ-

* रहीम

धूर धरत नित शीश पर, कहु रहीम किहि काज।
जिह रज मुनि पत्नी तरी, सो ढूँढ़त गजराज ॥

* वृन्द

जैसी हो भवितव्यता तैसी बुद्धि प्रकास।
सीता हरिवे तैं भयो रावण कुल को नास ॥

* सूरदास

मन तू समझि सोचि विचार।
भक्ति बिन भगवान् दुर्लभ कहत निगम पुकार ॥
साध संगति डारि फासा फेरि रसना सारि।
दाव अब के पर्यो पूरो उतरि पहिली पार ॥

* तुलसीदास

माधव ! मोह फांस क्यों टूटे ?
बाहिर कोटि उपाय करिय, अभ्यंतर ग्रंथि न छूटै।

* कबीर

नाम भजो तो अब भजो, बहुरि भजोगे कब्ब।
हरियर हरियर रूखड़े, ईंधन हो गये सब्ब ॥

* तुलसीदास

उदित अगस्त पंथ जल सोखा। जिमि लोभहि सोखे संतोषा ॥

* बिहारीलाल

सीस मुकुट कटि काछनी, कर-मुरली उरमाल।
इहि बानक मो मन सदा, बसौ बिहारीलाल ॥

* नन्ददास

श्री अनन्त महिमा अनन्द को बरनि सकै कवि,
संकर वन सो कछुक कही श्रीमुख जाकी छवि।

देवन में श्री रमारमण नारायण प्रभुजस
कानन में श्री वृन्दावन सब दिन सोभित अस ॥

कवि रहस्य उस रहस्य का सरल भेदन है जो प्रारंभ से ही क्लिष्ट माना जाता रहा है। कवि-कर्म को अनुचित रहस्यावरण से मुक्ति दिलाना ही लेखकीय दायित्व है। गंभीर शास्त्रानुशीलन के उपरान्त दिये गए व्याख्यानों में अपूर्व ओज है। तात्त्विक दृष्टि से कवि रहस्य एक अन्यतम कृति है। हिन्दी भाषा पर सर झा का पूर्णाधिकार परिलक्षित होता है। उपोद्घात में व्यक्त भाषा विषयक ऊहापोह के मूल में मात्र मर्यादा ही है।

शालीनता और मेधा की प्रतिमूर्त्ति महामहोपाध्याय गंगानाथ झा की वाणी में मानो माता सरस्वती ही उतर आई हैं। कवि रहस्य एक अत्यन्त उपयोगी, महत्त्वपूर्ण और मनोरंजक रचना है।

हिन्दी साहित्य इस गंगा भक्त और संस्कृत दूत की सेवा को विस्मृत नहीं कर सकता। हिन्दी के अभ्युत्थान के लिए आपके सत्प्रयास को कभी भी भूला न जा सकेगा।

गायत्र्युपासना नित्या सर्ववेदैः समीरिता।
गायत्रीमात्रनिष्णातो द्विजो मोक्षमवाप्नुयात् ॥

******

VII

उपसंहृति

पालीश्रोत्रियवंशभूषणमणि: सत्कर्मचूडामणि।
गायत्रीचरणाम्बुजप्रणयधृक् श्रीतीर्थनाथोऽभवत्।।
श्रीमन्मैथिलभूमहेन्द्रतनय-श्री वासुदेवात्मजा
पत्नी तस्य कुलद्वये शुभकरी श्रीरामकाशीपरा।।
ज्येष्ठस्तत्तनय: सदाशिवरत: श्रीविन्ध्यनाथ: सुधी
स्तत्पश्चाद् गणनाथनामक इह श्रीतारणीतत्पर:।
गङ्गानाथ इति रचनात यत्रयस्तदीयानुज-
स्तेनास्थाप्यत वेद वेद विधिना श्रीतीर्थरामेश्वर:।।

भारतीय दर्शन को भारतीय तथा यूरोपीय अध्यवसायियों के लिए सहज एवं सुलभ करनेवाले कालजयी मैथिल मीमांसक का नाम है महामहोपाध्याय डाक्टर सर पण्डित गंगानाथ झा। गंभीर अनुशीलन तथा उत्कृष्ट अनुवादक्षमता के कारण विद्वानों ने इस अभूतपूर्व प्रतिभा का सदैव सम्मान किया। सर्वपल्ली राधाकृष्णन तथा जार्ज ग्रियर्सन जैसे दार्शनिकों ने मुक्त कण्ठ से सर झा को अपना मार्गदर्शक स्वीकारा है। प्रभाकर स्कूल ऑफ पूर्व मीमांसा हो या शाबर भाष्य की वैदुष्यपूर्ण टीका कादम्बरी की टीका हो या काव्यप्रकाश का उदात्त अनुवाद सर्वत्र डा. झा की प्रतिभा अपना विशिष्ट परिचय दे जाती है। शाबर भाष्य पर बाद के टीकाकारों ने इस आदर्श अध्यवसायी को सादर स्मरण किया है-

गङ्गाधरं शिवं ध्यात्वा शबरत्वेन यो दधात्।
दिव्यमस्त्रं पृथापुत्रे कर्वे शास्त्रविवेचनम्।।
वृत्तिकार कृतो ग्रन्थ: शबरस्वामिनोदित:।।
विज्ञानमात्रतापेक्षी शून्यवादं न बाधते।।
विज्ञप्तिमात्रतावादाच् शून्यवाद: पुरातन:।
इति या प्रयिकी ख्यातिस्तत्र हेतुर्न विद्यते।।
वेदान्तभाष्यग्रन्थादावाकरत्वेन स्वीकृते।
विज्ञान वादबाधे पि प्राचीनत्वं न हीयते।।

श्री गङ्गानाथ शर्मणो गुरवः शास्त्रपारगाः ।
प्रसादामलया दृष्ट्या वीक्षन्तां चेष्टितं मम ।।[१]

सर झा ने जीवन पर्यन्त विश्राम न किया। आपकी मान्यता थी कि 'विद्याभ्यसनं व्यसनम् अथवा हरिपादसेवनम्।' सरस्वती के इस वरद-पुत्र ने 'महच्च महतांच' की उदात्त भारतीय परम्परा के अनुरूप अपना पथ स्वयं विनिर्धारित किया। स्वाध्याय और निरन्तर लेखन-चिन्तन के बल पर आपने अपना प्राप्य हस्तगत किया। अध्ययन को यजन माननेवाले डा. झा जीवन पर्यन्त स्तरीय समिधा संकलित करते रहे। कौलिक संस्कार इस प्रतिभा पुरुष को पाकर और भी उद्दीप्त हो उठा। माता गायत्री और भगवती तारा को ऐसा उत्कृष्ट भक्त और कौन मिलता। डा. बाबूराम सक्सेना को डा. झा का शिष्यत्त्व प्राप्त करने का सदैव गौरव रहा। आपने लिखा है- 'इतना गंभीर अध्ययन और अनुशीलन-क्षमता इस युग में मैंने कहीं और नहीं पाया।'

डा. झा विरचित विशाल साहित्य अपने आपमें एक युग का प्रतीक है। ज्ञान की इन किरणों ने कितनों का कायाकल्प किया है और कर रही हैं इसका अनुमान सरल नहीं। वैदिक वाङ्मय तथा उपाङ्गभूत षड्दर्शनों में पूर्व मीमांसा का अपना पृथक महत्त्व है। इस शास्त्र में वेद, उसकी व्याख्या ब्राह्मण ग्रन्थों और सूत्र ग्रन्थों में जो वचन याज्ञिक प्रक्रिया की दृष्टि से अस्पष्ट एवं संदिग्ध सा है, उनका स्पष्टीकरण शंका-निवारणपूर्वक किया गया है। इसके साथ-साथ उस समय याज्ञिक सम्प्रदायों में जो रूढ़ियाँ प्रचलित हो चुकी थीं, उनके न्याय-स्वरूप का प्रतिपादन किया गया है। इसी प्रकार धर्म सूत्रों में जो वेद विरोधी अंश प्रविष्ट हो चुके थे, उनका प्रबल निराकरण किया गया है। इस शास्त्र का विषय अत्यन्त व्यापक और विलक्षण है। वेदान्त, न्याय आदि की अपेक्षा मीमांसा दर्शन प्रारंभ से ही उपेक्षित रहा है। इसका आकार शेष पाँचों दर्शन के समेकित स्वरूप के समकक्ष है। एक समय ऐसा था जब केवल मिथिला में ही नौ सौ मीमांसक थे। मध्य युग में सर्वप्रथम डा. सर गंगानाथ झा ने ही इस उपेक्षित दर्शन का समुद्धार किया। पुनर्प्रकाशन तथा समीक्षापूर्ण आंग्ल भाषानुवाद से देशी तथा विदेशी आलोचकों की जिज्ञासा में पूर्ण अभिवृद्धि हुई। सर झा के प्रयास से ही मीमांसा के स्वतन्त्र अध्ययन-अध्यापन की व्यवस्था हुई। वैदुष्यपूर्ण भाषणों, निबन्धों तथा पाण्डुलिपियों के प्रकाशन द्वारा आपने मीमांसा दर्शन को पुनर्प्रतिष्ठित किया। मीमांसा दर्शन के पठन-पाठन का अधिकारी अधीत वेद ही है। वेदाध्ययन की परम्परा विनष्ट होती गई और मीमांसा दर्शन के प्रति लोगों के आकर्षण में भी कमी आती गई। डा. सर गंगानाथ झा मीमांसा शास्त्र के परावरज्ञ थे। स्वनामधन्य गुरु महामहोपाध्याय पण्डित चित्रधर मिश्र के आशानुरूप आपने सम्पूर्ण मीमांसा

---

१ क्षेत्रेशचन्द्र चट्टोपाध्याय, संस्कृत विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय

दर्शन का अनुवाद कर उसका साङ्गोपाङ्ग विश्लेषण किया। शाबरभाष्य का जैसा मार्मिक गूढ़ और वस्तुपरक विवेचन सर झा ने किया है वैसा पहले कभी भी संभव नहीं हुआ था। मुख्यतः आपने प्रभाकर के गुरु मत का विश्लेषण किया। 'प्रभाकर स्कूल ऑफ पूर्व मीमांसा' पर ही आपको डी.लिट्. उपाधि से सम्मानित किया गया।

विद्वद्भिर्मानिसन्तुष्टैर्नित्यं संवर्ध्यमानया।
विद्यया रक्षितं राष्ट्रं प्रसीदति न सीदति॥

सर झा की मान्यता थी कि-

मन्त्रे तीर्थे द्विजे देवे दैवज्ञे भेषे गुरो।
यादृशी भावना यस्य सिद्धिर्भवति तादृशी॥

महीयसी सरोजनी नायडू का झा परिवार के प्रति अतिरिक्त श्रद्धा भाव था। अनेक साहित्यिक गोष्ठियों में नायडू महोदया ने डा. सर गंगानाथ झा को शिक्षा जगत का स्तम्भ मानकर उनकी अभ्यर्थना की। इलाहाबाद विश्वविद्यालय के दीक्षान्त समारोह का उल्लेख करते हुए स्वयं डा. अमरनाथ झा जी लिखते हैं-

Mrs. Naidu addressed convocation and defended culture. She made several graceful references to my father, who was present. She said-It is not enough that we should think only of how we have great industries in the country, there must be men working in the seclusion of their laboratories who should be able to give the seed of those industries. It is necessary that in the secret recesses where din and strife do not intrude, there must be dreamers and visionaries wrestling with the secrets of nature to discover what new gifts they could give so that humanity might be better. Universities, therefore are the store-house, the conservatory, the treasure-house of all the knowledge and inspiration, the teachers must be enchanters. They must be enchanted first and be the stimulus and pattern for knowledge that makes the inspired teacher.'[1]

---

१ Sarojni Naidu - A.N. Jha. P. 17.

सर झा के प्रयाग स्थित आवास पर यदा-कदा हिन्दी कवियों की गोष्ठी जमती थी। सरोजनी नायडू, कमलानेहरू, विजयालक्ष्मी पंडित, महादेवी वर्मा, भगवती चरण वर्मा, आदि इस पवित्र आश्रम में यदा-कदा पधारते थे। अपने एक संस्मरण में डा. अमरनाथ झाजी लिखते हैं-

Mrs. Naidu came to tea at my house, 5.30 to 8. Ram Kumar Verma, Bhagwati Charan Verma and Majid recited their poems.

There was some music too.[1]'

हिन्दी की अभ्युन्नति के लिए, हिन्दी को उसका वास्तविक प्राप्य दिलाने के लिए संघर्ष का सूत्रपात कर उसे यथेष्ठ समिधा प्रदान करने का श्रेय सर गंगानाथ झा को ही दिया जा सकता हैं। आपके साथ आपके स्वनामधन्य सुपुत्र डा. अमरनाथ झा तथा डा. आदित्यनाथ झा ने हिन्दी की अभूतपूर्व सेवा की। यह पूरा परिवार भगवती भारती की उपासना करते हुए राष्ट्र तथा राष्ट्रीय गरिमा की अभ्युन्नति के लिए सदैव प्रयत्नशील रहा।

प्रो. रमानाथ झा सर गंगानाथ झा के शिष्य और सहयोगी गवेषक हुए। रमानाथ झाजी ने ही बाद में सर झा द्वारा संयोजित दरभंगा राजपुस्तकालय का अधिभार ग्रहण किया। हिन्दी, मैथिली तथा संस्कृत साहित्य में सर झा के कार्यो का रमानाथ बाबू ने गम्भीरतापूर्वक विश्लेषण किया है। एक संक्षिप्त निबन्ध में आपने सर झा की विशाल छबि को रेखांकित करने का विनम्र प्रयास किया है। स्वयं रमानाथ बाबू को गंगानाथ झा सदृश महर्षि के साथ रहने का अवसर लाभ हुआ। आपने उन्हीं से सीखा कि-

गायत्र्युपासना नित्या सर्ववेदैः समीरिता।
गायत्रीमात्र निष्णातो द्विजो मोक्षमवापुयात्॥

डा. गंगानाथ झा का प्रादुर्भाव १८७१ ई. में हुआ था। सातवें वर्ष में आप अपने दोनों अंग्रजों, विन्ध्यनाथ झा तथा गणनाथ झा के साथ राज स्कूल में दाखिला लिया। १८८६ ई. में एण्ट्रेंस पास कर महाराज दरभंगा की कृपा से आप काशी क्वींस कॉलेज पढ़ने गए। वर्ष १८९२ में वहीं से एम.ए. परीक्षा में उत्तीर्णता प्राप्त कर संस्कृत साहित्य तथा विभिन्न शास्त्रों का विस्तृत अध्ययन के लिए वहीं रह गए। विद्याध्ययन का आपको व्यसन हो गया था। महाराज लक्ष्मीश्वरसिंह की आप पर अपूर्व कृपा थी और महाराजवहादुर के आदेश से

---

१ Sarojni Naidu - A.N. Jha. P. 12.

ही आप गंभीर अध्ययन करते रहे। पं. शिवकुमार मिश्र, पण्डित गंगाधर शास्त्री, पण्डित कैलाशशिरोमणि भट्टाचार्य तथा पण्डित जयदेव मिश्र जैसे स्वनामधन्य पण्डितों से आप निरन्तर ज्ञान पाते रहे। गुरुओं की आप पर ऐसी कृपा थी कि गंगानाथ को दुर्लभ ज्ञान रत्नों की प्राप्ति होती रही। अध्ययन को छोड़ गंगानाथ झा का मन कहीं और न लगता। राज्यादेश से वर्ष १८९४ में आप दरभंगा आये और महाराज ने आपको अपने पुस्तकालय का अध्यक्ष नियुक्त किया। यहीं आपने मीमांसा-दर्शन का गंभीर अनुशीलन किया। महामहोपाध्याय चित्रधर मिश्र जैसे प्रसिद्ध मीमांसक ने आपको मीमांसा-दर्शन का साङ्गोपाङ्ग ज्ञान प्रदान किया। ऐसा मेधावी अनुसंधीत्सु पाकर मिश्रजी भी धन्य हुए। वर्ष १९०२ में आप म्योर सेन्ट्रल कॉलेज, प्रयाग में संस्कृत के अध्यापक नियुक्त होकर प्रयाग आए। प्रयाग में आपका मन कुछ ऐसा रमा कि वे प्रयाग में ही आवास बनाकर रहने लगे। आपने निर्णय लिया कि यही मेरी साधना भूमि होगी।

लगातार अध्ययन अनुशीलन के परिणामस्वरूप वर्ष १९०९ में आपको 'प्रभाकर स्कूल ऑफ पूर्व मीमांसा' पर डी.लिट्. की उपाधि से विभूषित किया गया। १९१९ ई. में आप क्वींस कालेज के प्रिन्सिपल नियुक्त हुए। इसी वर्ष आप काउन्सिल ऑफ स्टेट के सम्मानित सदस्य नियुक्त हुए। नवसंगठित प्रयाग विश्वविद्यालय के आप प्रथम कुलपति हुए और लगातार तीन बार इस पद पर चुने जाते रहे। वर्ष १९३२ में आपकी धर्मपत्नी स्वनामधन्या इन्दुमती देवी का देहान्त हो गया और चौथी बार इस पद के लिए आप खड़े नहीं हुए। आपको 'सर' की उपाधि मिली तथा वर्ष १९४१ में महामहोपाध्याय से सम्मानित किये गए। वर्ष १९४१ में ही १८ नवम्बर को प्रयागराज में आपका देहान्त हो गया। इसमें सन्देह नहीं कि ऐसा अन्तःप्रज्ञ होना अथवा इतनी ऊँची प्रतिष्ठा तथा ऐसा निर्मल यश प्राप्त करना प्राक्तन संस्कार के प्रसाद से ही संभव है। महामहोपाध्याय में अनेक ऐसे गुण थे जिनके बल से इतर व्यक्ति भी उन्नति किये बिना नहीं रह सकता।

महामहोपाध्याय डा. सर गंगानाथ झा की उन्नति के प्रधान साधन थे उनकी कार्यक्षमता और दृढ़ संकल्प। किसी भी कार्य को आरंभ करके उसे समाप्त करने पर ही इन्हें शान्ति होती थी। जो आज का कर्त्तव्य है या जो आज कर सकते हैं उसे कल के लिए छोड़ना ये जानते ही नहीं थे। समय कैसी मूल्यवान् वस्तु है और उसका सदुपयोग किस प्रकार करना चाहिए यह सीखने के लिए इनका जीवन आदर्श है। बाल्यावस्था से ही श्लोक लिखना शुरू किया। अठारह वर्ष के हुए तो लेखनी परिपक्व हो चुकी थी। इसी आयु में आपने काव्य शास्त्र जैसे ग्रन्थ का अंग्रेजी में अनुवाद किया। जीवनान्त तक आप संस्कृत ग्रन्थों का लेखन तथा अनुवादादि करते रहे। राजपुस्तकाध्यक्ष से लेकर प्रयाग-विश्वविद्यालय के कुलपति पद तक जिस किसी पद को आपने सुशोभित किया

सभी श्रमसाध्य तथा उत्तरदायित्वपूर्ण थे। इतने उत्तरदायित्वों का तथा पारिवारिक कर्त्तव्यों का सफलतापूर्वक निर्वहण करते हुए आपने इतना विशद् अध्ययन तथा लेखन कैसे किया इस पर किसी को भी आश्चर्य हो सकता है। अलौकिक कार्यक्षमता के बल पर ही आप जीवन में सफलता के चरमोत्कर्ष को प्राप्त कर सके। आपका व्यक्तित्त्व साङ्गोपाङ्ग अभिनन्दनीय है। अपने जीवन काल में आपने ऐसा निर्मल यश प्राप्त किया कि जहाँ कहीं भी हिन्दू सभ्यता और संस्कृत शास्त्रों की मर्यादा है, सर्वत्र आपका नाम अमर है और रहेगा। संकल्प में आप इतने दृढ़ थे कि आपको जिद्दी कहना भी अत्युक्ति न होगा। अपने नियमों से आप तनिक भी विचलित नहीं हुए। आपने यह नियम बना लिया था कि प्रतिदिन के स्वाध्याय का अंग्रेजी अनुवाद उसी दिन समाप्त कर लेना है। कम से कम अस्सी पृष्ठों का लेखन करनेवाला महामानव अब ढूँढ़ने से भी नहीं मिल सकता। संकल्प की इसी दृढ़ता के कारण आपके यहाँ कार्यों का ढेर कभी नहीं देखा गया। श्रम को ही आपने जीवन का मूल मन्त्र निर्धारित किया था। निरर्थक प्रलाप या अनुचित सम्भाषणों में वे विश्वास नहीं रखते थे। दैनन्दिनी का नियमित क्रम कभी भंग नहीं हुआ। व्यसन यदि इन्हें कोई था तो वह लिखने का था। वर्ष १९२७ में पटना विश्वविद्यालय द्वारा आयोजित रामदीन व्याख्यानमाला में आपने अपना परिचय देते हुए कहा- 'मैंने लाखों पृष्ठों के मुँह काले किये।' जीवनान्त तक लिखते रहनेवाले अध्यवसायी के तीन ग्रन्थों का प्रकाशन मृत्यु के उपरान्त संभव हुआ। लेखन के श्रम को आप श्रम न समझकर विनोद समझते थे। आपके प्रकाशक यदि आपको अंश विशेष या ग्रन्थ का संशोधन करने के लिए कहते तो आप पूरा का पूरा फिर से लिख डालते। संशोधन से अधिक सुगम इन्हें लिखना ही प्रतीत होता था। आपके अधिकांश ग्रन्थ अनुवाद हैं किन्तु ये अनुवाद उन ग्रन्थों के हैं जिनका आशय समझना बड़े-बड़े पण्डितों के लिए भी कष्टकर था। मूल लेखक की शैली पर ग्रन्थ को अत्यन्त सरल शब्दों में अनूदित कर आपने ग्रन्थ की दुरूहता दूर कर दी। सर झा के लेखन की संक्षिप्तता, स्पष्टता और गंभीरता को आपके ग्रन्थ सहज ही प्रमाणित कर देते हैं।

आपकी वेष-भूषा तथा आपका रहन-सहन आडम्बरहीन था। इतने बड़े और कार्यसक्त पुरुष से मुलाकात कठिन होती है किन्तु आपके यहाँ सबके लिए प्रवेश अप्रतिषिद्ध था। आपकी ऋषितुल्य कान्ति को छोड़कर कोई भी लक्षित नहीं कर सकता था कि आप एक इतने महान् पण्डित हैं। आडम्बरशून्यता, और उदात्त सरलता सर झा के जीवन का सबलतम पक्ष है।

आस्तिकता, परमात्मा में अटल विश्वास तथा अपने पूर्वजों के प्रति अतिरिक्त निष्ठा भाव के कारण ही आप अपने जीवन में इतना कुछ पा सके। सर झा ने समस्त दर्शनों के तत्त्वों को जान लिया था, धर्मशास्त्रों के मर्मों को आत्मसात कर लिया था तथा उपनिषदों को मथ कर उनके रहस्यों को हृदयंगम

कर लिया था। सर गंगानाथ झा संसार के सभी कार्यों को करते हुए भी कर्मजाल से निर्लिप्त थे। दुःख में अनुद्विग्न और सुख में विगतस्पृह रहनेवाले महामुनि राग, भय, क्रोध आदि से ऊपर उठ चुके थे। गीता की भाषा में आपके लिए 'स्थितधी' शब्द सर्वोपयुक्त होगा। लेखन तथा प्रशासनिक कार्य के साथ आपने ब्राँह्मणोचित सकल क्रियाकलाप को भी जिस निष्ठा से संपादित किया वैसा किसी मनस्वी चरित्र से ही संभव है। हाँ, इसके लिए अनुचित आडम्बर को आपने हमेशा त्याज्य समझा। प्रतिदिन ब्राह्म मुहूर्त्त में शय्या त्याग कर नित्यकर्म सम्पन्न करके ही आप अपना कार्यारंभ करते। सहस्त्रगायत्री जप का जो संस्कार आपने पितामह और पिता से प्राप्त किया था जीवन के अन्तिम समय तक उसका निर्वाह करते रहे। गायत्री की कृपा से ही आपके मुख मण्डल पर अपूर्व ब्रह्म तेज था। निश्चय ही यह गायत्री की एकान्त उपासना का फल था। शान्तिपूर्वक पद्मासन लगाकर आप कठिन से कठिन ग्रन्थ का लेखन करते रहते थे। आपमें योगियों की भाँति तल्लीनता के दिव्य गुण थे। सर झा यथार्थ में धीमान् थे। आपकी मेधा शक्ति लोकोत्तर चामत्कारिक थी। गायत्री, तारा और माता विन्ध्यवासिनी की कृपा से आपने देश-विदेश में सर्वत्र निर्मल यश प्राप्त कर अपने पाँच पुत्र रत्नों को राष्ट्र की गरिमा बढ़ाने के लिए राष्ट्रार्पित किया। ब्रह्मविद्या अर्थात् थियोलाजी के प्रति भी आपका अद्‌भुत आकर्षण था। वस्तुतः यह विद्या भारतीय योगदर्शन से ही अनुबद्ध है। जिस प्रकार व्याधा के हाथ में पकड़े हुए सूत के द्वारा बँधा हुआ पक्षी इधर-उधर उड़ जाने के लिए चेष्टा करने पर भी जब असमर्थ हो जाता है और बन्धन के स्थान में ही आकर बैठ जाता, उसी प्रकार परमात्मा के साथ नित्यानन्द सत्ता की डोरी के द्वारा बँधा हुआ जीव प्रथमतः मोहिनी माया के चक्र में फँसकर माया राज्य में ही उसी नित्यानन्द की प्राप्ति के लिए अनेक जन्मों तक अन्वेषण करता है, परन्तु जब अन्त में माया के भीतर नित्यानन्द का अभाव देखकर अतृप्त हो जाता है तो माया राज्य को छोड़कर नित्यानन्दमय ब्रह्मपद की ओर अग्रसर होने लगता है। यही जीव में मुमुक्षुभाव उत्पन्न होने कारण हैं। इसी प्रकार से वैराग्ययुक्त मुमुक्षुभाव के साथ तत्त्वज्ञानी गुरु की शरण लेने पर गुरुदेव शिष्य को ब्रह्मज्ञान का उपदेश करते हैं जिन उपदेश वाक्यों के श्रवण, मनन तथा निदिध्यासन द्वारा साधक क्रमशः प्रकृति राज्य से अतीत अपने नित्यानन्दमय ब्रह्मस्वरूप की उपलब्धि करने में समर्थ हो जाता है। वस्तुतः इसी को मुक्ति कहते हैं। परमात्मा सत् चित् आनन्दमय है।

'ब्रह्मविद्या ब्रह्मैव भवति'

ब्रह्म को जानकर जीव ब्रह्ममय हो जाता है। जीव की यह अद्वैत स्थिति सविकल्प समाधि के अन्तर्गत सवितर्क, निर्वितर्क, सविचार और निर्विचार इन चार दशाओं में ही साधक द्वैत के अवलम्बन से परमात्मा से पृथक् रहकर उनकी आभास आनन्दसत्ता की उपलब्धि करता है।

निर्विचार समाधि जब परिपक्व होती है तब योगी को अध्यात्म-प्रसाद प्राप्त होता है। इससे आत्म प्रसाद अर्थात् आत्मानन्द की प्राप्ति होती है। यहाँ तक साधक की ब्रह्म से पृथक् स्थिति रहती है। इसके बाद जब त्रिपुटिका सम्पूर्ण विलय होकर जीव अद्वैत भाव में विलीन हो जाता है तभी निर्विकल्प समाधि का उदय होता है -

'तस्यापि निरोधे सर्व निरोधानिर्वीज समाधिः।'

निर्विकल्प समाधि-दशा में ही जीव ब्रह्म की एकता सिद्धि तथा अद्वैत भाव में जीव की स्वरूप-स्थिति हो जाती है। यही सकल पुरुषार्थ तथा सकल साधना की चरम दशा है और मनुष्य-जीवन का अन्तिम लक्ष्य है। इसी को मुक्ति दशा की संज्ञा से अभिहित किया गया है। ब्रह्म के साक्षात्कार के अनन्तर मुक्त पुरुष के हृदय की गाँठ खुल जाती है, अविद्यामूलक समस्त सन्देह निवृत्त हो जाते हैं और संचित तथा क्रियमाण समस्त कर्म क्षय हो जाते हैं। जिस प्रकार नदियाँ समुद्र की ओर आती हुई अन्त में समुद्र में लवलीन हो समुद्र बन जाती हैं, उनके पृथक् नाम रूप नहीं रहते हैं, उसी प्रकार मुक्त पुरुष की षोडश कला ब्रह्म की ओर जाकर अन्त में ब्रह्म में ही लवलीन हो जाती हैं।

निःश्रेयसं आत्यन्तिकी दुःख निवृत्तिः।

सांख्य सूत्र के अनुसार आध्यात्मिक, आधिदैविक तथा आधिभौतिक, इन तीन प्रकार के दुःखों का अत्यन्त नाश ही अत्यन्त पुरुषार्थ अर्थात् मुक्ति निमित्त पुरुषार्थ है।

पराभक्ति के द्वारा ही स्वरूप लक्षणवेद्य ब्रह्म की उपलब्धि होती है। उस समय साधक को पूर्णानन्द प्राप्त होता है। वे तन्मय होकर भाव समुद्र में डूबते-उठते पराभक्ति के द्वारा ब्रह्मपद को प्राप्त कर लेते हैं। दैवी मीमांसा के सिद्धान्तानुसार इस प्रकार पराभक्ति का लाभ 'समर्पण' के द्वारा ही होता है।

अनन्य मित्र पं. गोविन्ददास, कर्नल आलकॉट तथा श्रीमती एनी बेसेंट के प्रभाव से सर झा थियोसॉफिकल सोसाइटी के सदस्य बने। आपने यहाँ भी प्रतिभा सम्पन्नता का परिचय दिया। सर झा की मान्यता थी कि अध्यवसायियों को इतर सेवा में रखना अन्याय है। पं. श्री गोपीनाथ कविराज के लिए आपने अनेक अधिकारियों को पत्र प्रेषित किया। इसके फलस्वरूप उत्तर प्रदेश सरकार ने सरस्वती भवन के लाइब्रेरियन के पद को 'प्रोविन्सियल पोस्ट' घोषित कर कविराज जी को २५०/- प्रति माह पर नियुक्त कर दिया।

इतना ही नहीं, जब डा. गंगानाथ झा इलाहाबाद विश्वविद्यालय के वाइस-चान्सलर के पद पर जाने लगे तो उन्होंने अपने स्थान पर नियुक्त किये जाने के लिए कविराजजी का ही नाम लिया और उस स्थान पर कविराज जी

नियुक्त भी हुए। इससे स्पष्ट है कि कविराज जी को ऊपर उठाने में डा. गंगानाथ झा का कितना बड़ा योगदान है।'

सर झा स्वभाव से ही परोपकारी थे। आज का काम आज करने में विश्वास रखनेवाले सर झा ने कर्म को ईश्वर मानकर सदैव उसकी अभ्यर्थना की। आप एक मीमांसक और उत्कृष्ट कोटि के दार्शनिक थे। जिस प्रकार दर्शनेन्द्रिय नेत्र के बिना बहिर्जगत का कुछ भी देखा नहीं जा सकता उसी प्रकार दर्शनशास्त्र के बिना अन्तर्जगत का कोई रहस्य देखा नहीं जा सकता। मानव जगत में जिस प्रकार पदार्थ विद्या और शिल्पोन्नति से उसके बहिर्जगत की उन्नति जानी जाती है उसी प्रकार दर्शन शास्त्र की उन्नति से उसके अन्तर्जगत की उन्नति समझी जाती है। सूक्ष्मातिसूक्ष्म अतीन्द्रिय अन्तर्राज्य के अर्थ के निमित्त दर्शनशास्त्र ही एकमात्र अवलम्बन है। सर झा की मान्यतानुसार सूक्ष्म जगत के वास्तविक रहस्यों को प्रदान करनेवाला शास्त्र दर्शनशास्त्र है। भारतीय दर्शन शास्त्र अलौकिक योगप्रसूत है। सर झा युगपुरुष थे। जीवन के प्रति उनका पृथक् दृष्टिकोण था। गृहस्थ होते हुए भी आप योगी थे और महान् पण्डित होते हुए भी सरल स्वभाव के थे। आप जानते थे कि दार्शनिक विचारों की गंभीरता दार्शनिक चिन्तन से आती है। वास्तव में मनुष्य की कार्यक्षमता दो बातों पर निर्भर करती है। एक तो उसके प्रेरक सिद्धान्त पर और दूसरे उसकी कार्य करने की योग्यता पर। सच्चा दार्शनिक विचार घोर तपस्या का ही परिणाम है। सच्चा दार्शनिक विचार वह जो अपने जीवन की समस्त क्रियाओं का संचालन करे। जिस दार्शनिक विचारानुरूप स्वयं दार्शनिक आचरण नहीं कर पाता, वैसा दर्शन व्यर्थ है। वास्तव में मनुष्य के दार्शनिक विचार का आधार उसकी मानसिक शक्ति है। सर गंगानाथ झा ने आत्मविश्लेषण के माध्यम से अनेक ऐसे गुणों को विकसित किया जिससे वे अमर हो गए। वे जानते थे कि जिसके पास दार्शनिक निधि है उसके लिए सांसारिक निधि तुच्छ है। यह वह अमृत है जिसे पीकर कोई भी काल के पाश में नहीं बँध सकता। गंभीर पुरुष जीवन की ऊपरी सफलता अथवा विफलता से अप्रभावित रहते हुए अपने जीवन में स्थायी मूल्यों को तलाशते हैं। स्थायी मूल्यों की पहचान के लिए ही दर्शन की आवश्यकता होती है। सर झा का दृष्टिकोण पुरुषार्थवादी था। बाल्यावस्था में ही आपको सीख मिली थी कि श्रमशील व्यक्ति को असफलता नहीं व्यापती है।

सर झा ने अनुभव किया कि मन को सुदृढ़ बनाने का सबसे सुन्दर उपाय प्रतिदिन शान्त भावना का अभ्यास करना है। यह अभ्यास द्वारा अपने आपको शान्तचित्त ध्यान में लाने से, शान्त ज्योति का अपने हृदय में ध्यान करने से, किसी शान्त पुरुष का ध्यान करने से, शान्त रूप से चलने वाली सरिता का चिन्तन करने से, उषा दर्शन से अथवा अपने मन के श्वास-प्रच्छ्वास पर एकाग्र करने से होता है। मनुष्य का मन अभ्यास का दास है। डा. सर झा की दैनन्दिनी

में कभी कोई व्यतिक्रम नहीं आया। अपने मन को निश्चिन्त बनाने का सर्वोत्तम साधन आध्यात्मिक चिन्तन ही है। नवीन मार्ग का अनुशीलन कर संसार को अभिनव विचार प्रदान करना सर झा जैसे मनीषियों से ही संभव है। सर झा कहते थे कि निर्भीकता एक अमूल्य सद्गुण है। यह सद्गुण कठोर तप के परिणामस्वरूप आता है। निर्भीकता मानसिक शक्ति की उपस्थिति का द्योतक है। जब मनुष्य की इच्छा शक्ति दृढ़ होती है तथा उसमें मन को वश में रखने की क्षमता होती है, तभी वह निर्भीक होता है। सर झा धीर,गंभीर और निर्भीक उपाध्याय थे। निर्भीकता का मूल मन्त्र आपने अग्रज पं. विन्ध्यनाथ झा से ग्रहण किया था जिसका पूर्ण विकास कर आपने आदर्श स्वरूप प्रदान किया। सर झा कहते थे कि मनुष्य के मन में जितनी शक्ति है उसका अल्पांश ही उसे ज्ञात होता है। आप नैतिक नियमों को वास्तविक तथ्य मानते थे। वास्तव में यह नियम विवेकपूर्ण है। तत्त्व ज्ञान की दृष्टि से मनुष्य अपने ज्ञान के नियम को ही प्रकृति-नियम के रूप में देखता है।

डा. सर झा तथा पूरे झा परिवार के उत्कर्ष का मूल मन्त्र है अनुशासन। अनुशासन मानव की अभ्युन्नति का सर्वाधिक शक्तिशाली तथा सर्वोत्कृष्ट माध्यम है। बिना अनुशासन मनुष्य का मानसिक विकास संभव नहीं। रचनात्मक गुणात्मकता अनुशासन की भित्ति पर ही अवलम्बित है। आपकी मान्यता थी कि सर्वोत्तम जीवन संतुलित जीवन ही है। अविद्या माया का आयासपूर्वक प्रशमन ही आध्यात्मिक जीवन की उपलब्धि है। अपने गुरुओं की वाणी तथा उनके जीवन का सम्पूर्ण वैशिष्ट्यों को गुन कर सर झा ने अपने लिए एक अति विशिष्ट पथ का संधान किया। निरन्तर अध्ययन और लेखन से संबलित सर झा का सम्पूर्ण जीवन सफलता का अप्रतिम निदर्शन है। काशी विश्वनाथ, माता रामकाशी, गंगा और प्रयाग-प्रवास ने सर झा के आध्यात्मिक मन को विस्तृत फैलाव दिया। आपमें महापुरुष के सारे लक्षण अत्यन्त सहज रूप से विद्यमान थे। आपने प्रमाणित कर दिया कि 'अभ्युत्थान की शक्ति व्यक्ति के अपने भीतर है जिसे वह कस्तूरी मृग की भाँति इधर-उधर ढूँढ़ते हुए व्यर्थ समय गँवाता है।'

इस कालजयी प्रतिभा को विद्वानों ने सर्वाधिक सम्मान दिया। सम्पूर्ण उत्तर प्रदेश में सर झा का ग्रामीण होना, एक अतिरिक्त योग्यता मानी जाती है। महान् प्रतिभाशाली आचार्य के प्रसंग में भारतीय तथा यूरोपीय शीर्षस्थ विद्वानों ने जो अपना आदर-भाव प्रकट किया है वह सर्वथा उचित ही है। सर झा को प्रेषित एक स्मरणीय पत्र द्रष्टव्य है। इसमें एक विद्वान् की स्पष्ट स्वीकारोक्ति है-

Professor otto Strauss wrote to Dr. Jha from Breslan-

Dear Mahamahopadhyaya

It is this old and beautiful title among all you bear with which I beg to address you on your 60th birth day for you have been a real Upadhyaya to all of us who strive to understand the philosophical systems of ancient India. Without your works on Mimamsa, Nyaya and Vedant I could not have written the humble contributions which you perhaps know by name. You appear to me as the happy blend of the ancient Pandit with his depth of knowledge and of the modern scholar with his wide horizon. May God grant you many years to come in such a freshness that you may be able to continue your labour for the good of all who are approaching the Jewels of ancient Indian thought.

Yours very sincerely

Otto Stranuss

निश्चय ही स्टास महाशय भारतीय प्राच्य विद्या तथा यूरोपीय दर्शन का तुलनात्मक अध्ययन नहीं कर पाते यदि सर झा का मूल्यवान अनूदित साहित्य उन्हें उपलब्ध न हुआ होता। संस्कृत के उन क्लिष्ट तथा दुरूह अध्यायों को सरल अंगरेजी में प्रस्तुत कर सर झा ने संस्कृत तथा संस्कृतेतर विद्वानों का अपरिमित उपकार किया है। प्रभाकर स्कूल ऑफ पूर्व मीमांसा, प्रभाकर एथ्योरी ऑफ एरर, ए नाट आन शाबर भाष्य, पूर्व मीमांसा इन इट्स सोर्सेज आदि के उपरान्त ही अनेक नये ग्रन्थों का लेखन संभव हुआ। यह उपेक्षित अध्याय पुनः प्रतिष्ठा पाकर अध्ययन तथा शोध का आधार प्रमाणित हुआ। कुमारिल भट्ट की भाँति आपने उस कलुषित काल में धैर्य पूर्वक अपनी पौराणिक गरिमा को पुनर्प्रतिष्ठित किया। जब सर गंगानाथ झा अभिनन्दन ग्रन्थ के प्रकाशन की योजना बनी तो विभिन्न प्रतिभाशाली आचार्यों तथा सुविख्यात दार्शनिकों ने निज भावांजलि प्रेषित कर प्रतिभा का सम्मान किया। सचिव के नाम प्रेषित अपने पत्र में जार्ज ग्रियर्सन ने लिखा कि-

No one values Dr. Jha's learning more than I do, or can more grateful to him for what I have learnt from his writings, and I should consider it an honour and a privilege to have an opportunity of

showing this by a contribution to the proposed volume. Unfortunately, however, owing to advanced age and failing eyesight I have been completed to relinquish Literary work and must therefore regretfully decline your invitation.

George A.Grierson

अपने ग्रन्थों में भी ग्रियर्सन महोदय ने सर झा के अवदान की विस्तृत चर्चा की है। भारतीय दर्शन पर अपने अध्ययन का सम्पूर्ण श्रेय आप डा. गंगानाथ झा को ही देते हैं।

परमादरणीय मनीषी डा. तेज बहादुर सप्रू ने लिखा-

The tributes which have been paid to Dr. Ganga Nath Jha are none too high for his great intellectual gifts and his achievements in the domain of scholarship. Of him it may truthfully be said that no graduate of the Allahabad University has done more for the advancement of learning than he, and no one has in recent years vindicated the claims of Indian scholarship among the learned who conbines in himself profound learning and deep reverence for our ancient culture and Philosophy with a marvellous faculty for interpreting them to the modern world. His learning and his intimacy with everything that is best in our Philosophy and culture is reflected in his daily life, his purity of character, the simplicity of his ways and his inveterate contempt for the advertising methods of modern life. His conservation may try the patience of the present day reformer but it also extorts his admiration for its genuineness and sincerity. A great scholar and a fine gentleman, he has shed undying lustre upon the University of which he is the product and to the guidance and service of which he has dedicated years of ceaseless and fruitful activity.

Tej Bahadur Sapru

किसी भी अभ्युक्ति, किसी भी सम्मान और किसी भी विशेषण से ऊँचा था सर झा का व्यक्तित्त्व। वेद की गरिमा और शास्त्रीय मर्यादा से संपोषित इनका सम्पूर्ण वाङ्मय भारतीय साहित्य जगत की अमूल्य धरोहर है।

श्रद्धा और कृतज्ञता मानवीय प्रकृति के पावन पहलू हैं। इन्हीं पर किसी भी संस्कृति का स्थायित्व एवं गौरव निर्भर करता है। जो देश या जाति जितनी उदात्तता एवं उदारता के साथ महाप्राण मानवों का सम्मान करना जानती है वह उतनी ही प्रगतिशील, समृद्ध और गौरवशाली बनती जाती है। भारतीय संस्कृति की यह सहज विशेषता रही है कि यहाँ श्रद्धा के समर्पण और कृतज्ञता के ज्ञापन को न केवल सामाजिक जीवन के एक कर्त्तव्य के रूप में स्वीकार किया है बल्कि इसे धार्मिक जीवन का एक अंश भी माना है। स्वनामधन्य महामहोपाध्याय डा. सर गंगानाथ झा ने भारतीय चिन्ताधारा को नई प्रेरणा दी। आपने पौराणिक भारतीय वैदुष्य परम्परा को निखारा और समृद्ध किया। आदर्श पुत्र डा. अमरनाथ झा अंगरेजी साहित्य के उद्‌भट आचार्य हुए। आपको इलाहाबाद विश्वविद्यालय के कुलपति बनने का अवसर मिला यह उतना महत्त्वपूर्ण नहीं जितना यह कि इस विश्वविद्यालय को डा. अमरनाथ झा जैसा सुयोग्य कुलपति मिला। पूज्य पिता की भाँति आपने भी अध्ययन को यजन मानकर ग्रहण किया। आपने भी म्योर सेन्ट्रल कालेज से ही अध्यापन प्रारंभ किया और विकास के सभी धरातलों को पार किया। कनिष्ठ पुत्र डा. आदित्यनाथ झा ने महान् पिता और आदरणीय अंग्रजों के गुणों के साथ निज गुणों का भी विकास किया। बाल्यावस्था से ही माता इन्दुमती आपको पण्डित कहती थी। आपकी प्रतिभा प्रारंभ से ही पैनी, गहरी, विस्तृत और उद्बुद्ध थी। प्रकाण्ड पण्डित, कुशल प्रशासक, कला मर्मज्ञ चिन्तनशील और विवेक-मान डा. आदित्यनाथ झा जी अपने आप में एक संस्था और एक युग के प्रतीक हैं। निज पिता की भाँति आपकी प्रतिष्ठा भी दिनानुदिन बढ़ती ही जा रही है। आदित्यनाथ झा जी के प्रति सम्मान प्रकट करते हुए अभिनन्दन के क्रम में काञ्ची के श्री शंकराचार्य ने लिखा था-

अनन्त श्री विभूषित १००८ जगद्गुरु श्री शंकराचार्य

श्री काञ्ची कामकोटि पीठाधिपतिः

भवतां लेखा श्री चरण सविधे निक्षिप्ता। श्री चरणनां शुभकामना प्रेष्यते।

'उपाध्याय उवज्जायं ओजाजेति क्रम प्रथा
विद्या चतुर्दशाधाना जामाला राजतां चिरम्।
यन्नायकमणिर्गङ्गानाथो मैथिलजा स्रजा
भारती भारती जीयादुज्वाला विश्वबोधदृक्॥

नारायण स्मृतिः

मंगलाभिवादनम् में वर्णित श्लोकों का यह अंश झा परिवार की महत्ता का यथातथ्य आकलन करता है-

प्राज्ञैर्यस्य प्रशस्ता प्रतिभटरहिता भारती भारतीयैः।
शास्त्रे प्राच्ये प्रतीच्ये प्रगतिरतुलिता यस्य चासीदभङ्गा ॥
गङ्गानाथः स गङ्गाधरचरणपरः कीर्त्तिकायावशेषः
शेषस्तुत्यात्मविद्यो विलसतु परमव्योम्नि विद्योतमानः ॥
गङ्गानाथः पिताभूद् गुणनिवहनिधर्ज्ञान विज्ञान सिन्धुः-
र्वन्धुर्बान्धुर्यधुर्यभिर्वदिह भुवने यस्य नाथो भराणाम्।
आदित्यैर्नाथ्यमानो दिशि दिशि विलसत्पुण्यगाथः स धीमान।
श्री मनादित्यनाथः शतमिह शारदां जीविताज्जागरूकः ॥
रम्या कामप्यवस्थां धृतनयमनयः प्रत्तहस्तावलम्व-
माराद् वाराणसेयं सुखरवचसां विश्वविद्यालयंत्वम् ॥
कीत्रिस्ते कीर्तनीये यमनियमाखिलैः कीत्र्यते प्राज्ञलोकै-
रेतेनैवामरो सि स्थिर तटयशसा कीत्र्यमानैः किमन्यैः ॥
यद्वैदुष्य समुद्भवाद्भुतयशः स्वच्छन्द मन्दाकिनी-
कल्लोलै वितनेति केलिकुतुकं दिक्सुनरीणां गणः
विद्वन्मण्डित तीरभुक्ति तिलकः सौजन्य लक्ष्मी हरि-
र्गङ्गानाथ सुधीः स पवित्र चरितारम्भः प्रणम्यः स नः ॥

पलिवार महिषी मूल के अद्वितीय नक्षत्र सर गंगानाथ झा और उनके परिवार द्वारा किये गए सांस्कृतिक अवदान को विस्मृत करना असंभव है।

डा. मण्डन मिश्र के शब्दों में-

'अभिनन्दनीयाः पुण्यश्लोका इमे श्रीमन्तो डा. झा महाभागा यस्यां भूभावजायन्त, तया न केवलं श्री जगज्जननी जानकी प्रसूता, प्रत्युत जीवन्मुक्तो राजर्षि जनकः, शतपथ ब्राह्मण प्रवक्ता महर्षिर्याज्ञवल्क्यः गौतमप्रभृतयो दर्शनप्रवक्तार, नव्यन्यायप्रवक्त्रको गङ्गेशः पक्षधरोदय-नवाचस्पति प्रमुखा बौद्धमहाराज गण्डस्थल - महावारिशोषका विद्वन्भृगेन्द्राः, कुमारिल-मण्डनमुख्या मीमांसकाः, अयाचिशङ्करादि ब्रह्मवादिनः, गोविन्दभानु प्रमुखा आलङ्कारिकाः, मदन-सदन०-गणनाथ प्रभृत-यस्तान्त्रिकाः लक्ष्मीनाथमुख्यायोगिनः, राजनाथ-जुड़ौन-जयदेव प्रभृतयः शब्दिकाः, सचल प्रमुखाः संस्कृत महाकवयः, विद्यापति-गोविन्द-चन्द्र मुख्या भाषा महाकवयः, गार्गी-मैत्रेयी-भारती-लक्ष्मी-प्रभृतयो विदुष्यो महिलाश्च-प्राशूयन्त।'

अद्यतन बिहार प्रदेशान्तर्गत ताया ज्ञानकर्मभूमो मिथिलाया दरभङ्गामण्डलस्य पण्डितापरम्परावाहिनी सरिसब-पाहीटोल नामनि ग्रामे श्रोत्रिय संज्ञके तपःपूते पलिवार-ठक्कुर कुल-कमल-दिवाकरवाणीन्दिरा राधित-स्वतन्त्र-संस्कृत महावि-

द्यालय संस्थापक-कलिकर्ण-गन्धवारि-नगराधीश-दरभंगा महाराजकुमार वासुदेव सिंह शर्मणो दौहित्रस्य, प्रत्यह त्रिसहस्र गायत्री जप परायण-स्वनामचन्य-पण्डित शिरोमणि-धरानाथ झा शर्मा त्मजस्य, दरभंगा राज्य संचालक कविवर पण्डित विन्ध्यानाथ-तान्त्रिक-दैवज्ञ कविचूरमणि श्री ताराचरण च चर्गक, पण्डित गण-नाथ-नीतिशास्त्र निष्णात पण्डित विजयनाथ, दरभंगा महाराजार्थ सचिवान्वर्थनाम पण्डित वैद्यनार्थति चतुर्भिः सोदरैर्भ्रातृभिः ऋग्यजुः सामाथर्ववेदैरिवन्र्वतस्य स्वर्गीय भूतपूर्व सेना प्रमुखं चिकित्सक-दरभंगा राजकीय महाचिकित्सालय प्रधान कैप्टन डा. भवनाथ-जगद्विदित शिक्षा शास्त्रि-निरुपम महापण्डित डा. अमरनाथ शिवस्व-रुप-प्राध्यापक शिक्षा निरीक्षक-पण्डित शिवनाथ संस्कृत साहित्य मूत्रि नाट्य कला गुरु परोपकारव्रति मण्डलाधीश पण्डित विभूतिनाथ झा शर्मेति चतुःपत्रैर्विद्या समुद्रैरिव समभ्यर्चित पादपद्भयुगलस्य, विश्वविख्यात लोकोत्तर-वैदुष्यस्य, महामहिम दार्शनिक प्रातःस्मरणीय-महामहोपाध्याय डा. सर गंगानाथ झा शर्मणः पुत्रत्वेन, संस्कार-प्रदीप प्रभृत्यनन्तसंस्कृत ग्रन्थरत्नप्रणेतृ-शब्दिका लङ्कारिक तार्किक चूड़ामणि महाकवि प्रातः-स्मरणीय - महामहोपाध्याय पण्डित हर्षनाथ शर्मणो दुहीतुर्गर्भादितस्त्रिप चाशद्वर्षं पूर्वं चतुर्दशाधिकैकोनविंशतिशततमे ख्रिष्टाब्दे गस्तमासस्याष्टदशे पुण्यदिवसे, इमे महाभागः प्रादुरभूविन्नति- 'कार्यनि-दानाद्धि गुणानधीते' इति महाकवि श्री हर्ष सूक्ति मनुसन्दधता-मस्माकं विश्व संस्कृत जगतश्च नाश्चर्यकरः, एषां महामहिम्नां भारतीय संस्कृतिसंस्कृतयोर्निरु-पमः शाश्वतिकः प्रेम, एकान्त निष्ठा च ।'

यावत संस्कृत छात्रेषु क्रीडाव्यायामचिन्तनम् ।
तावदादित्यनाथस्य नामसंस्मरणं भवेत ।।

पं. मण्डन मिश्र ने सम्पूर्ण कौलिक प्रतिभा का मार्मिक आकलन कर स्वयं को श्रेष्ठ श्रद्धालु प्रमाणित किया है । वास्तव में सूर्य की अभ्यर्थना कर व्यक्ति स्वयं भास्कर-प्रकाश से प्रकाशित होता है । ईश्वराराधना तथ्यतः निज पात्रता प्रमाणित करने का ही प्रयास है । विद्वानों की गरिमा का बखान भी निज मनस्विता का ही परिचायक है । शिव की अभ्यर्थना से पहले जिस प्रकार उनके पुत्र गणपति की पूजा की जाती उसी प्रकार सर गङ्गानाथ झा के पुत्रों को भी सादर नमन किया जाता । माता गायत्री का प्रभाव इनके सभी पुत्रों पर स्पष्ट परिलक्षित होता है । वर्षों बाद भी उनकी स्मृति विद्वानों को कर्मरत जीवन की प्रेरणा प्रदान करतीं ।

कीर्तिर्गङ्गतरङ्गावलि धवलतनुर्भण्डयन्ती दिगन्तान् ।
यस्योदेति प्रतिष्ठा गिरिशिखर हरिः सो यमादित्यनाथः ।।

पुत्र से पिता और पिता से पुत्र की गरिमा में अभिवृद्धि की घटना यदा-कदा नहीं घटती । पूज्यपाद पं. गंगानाथ झा का वैदुष्य उनके पुत्रों तक आकर और भी प्रखर हो उठा ।

महाभारत और पुराणादि वाक्यों को स्मृति वाक्य के रूप में माना गया है। भारतीय मान्यता है कि-

'स पुराणान पञ्चवेदान्।'

देवर्षि नारद ने पुराणों को पञ्चम वेद के रूप में पढ़ा था। वस्तुतः-

पुराणां मानवो धर्माः साङ्गो वेदाश्चिकित्सतम्।

आज्ञासिद्धानि चत्वारि न हन्तव्यानि हेतुभिः॥

महाभारत के प्रारंभ में ही उल्लेख है कि व्यासजी ने अट्ठारह पुराणों को बनाने के बाद उनके उपबृंहण स्वरुप महाभारत को बनाया-

अष्टादश पुराणानि कृत्वा सत्यवतीसुतः।
पश्चाद्भारतमाख्यानं चक्रे तदुपर्बृहितम्॥

आदि पर्व में यह वर्णन भी आया है कि इतिहास और पुराण से वेदों की वृद्धि करनी चाहिए-

'इतिहास पुराणाभ्यां वेदं समुपर्बृहयेत्।'

स्मृतियों में पुराणों को धर्म के विषय में वेद की तरह बड़े महत्त्व का स्थान दिया गया है। याज्ञवल्क्य स्मृति का उल्लेख करते हुए सर झा लिखते हैं कि पुराण न्याय मीमांसादि चौदह विद्याएँ धर्म के प्रामाणिक स्थान हैं-

पुराणन्याय मीमांसा धर्मशास्त्राङ्गमिश्रिताः।
वेदाः स्थानानि विद्यानों धर्म्मस्य च चतुर्दश॥

छान्दोग्य उपनिषद् के सातवें अध्याय के प्रथम खण्ड में नारद और सनत्कुमार के संवाद में पुराणों को स्पष्ट रूप से पाँचवा वेद कहा गया है-

इतिहास पुराणः पञ्चमोवेदानां वेदः।

डा. सर गंगानाथ झा जी ने वेद, पुराण, उपनिषद्, और समग्र पौराणिक सांस्कृतिक निधि का गूढ़ ज्ञान प्राप्तकिया। सर्वाधिक उपेक्षित मीमांसा दर्शन को पुनर्प्रतिष्ठित कर आपने भारतीय संस्कृत-विद्या का अपरिमित उपकार किया।

मूलतः सर झा ने मीमांसा दर्शन पर आच्छादित दुरूहता के आच्छादन से उसे मुक्त किया। शाबर भाष्य सहित प्रायः सभी प्रसिद्ध मीमांसा ग्रन्थों, तथा मतों पर पर्याप्त लेखन कर आपने उसे प्रामाणिक सरलता प्रदान की। सरल अंगरेजी अनुवाद के कारण इन ग्रन्थों तथा दार्शनिक सिद्धान्तों को आपने ग्राह्य स्वरूप प्रदान किया। स्वयं सर्वपल्ली राधाकृष्णन, तथा भाषाविद् अब्राहम ग्रियर्सन की स्वीकारोक्ति है कि यदि सर झा ने मीमांसा विषयक ग्रन्थों तथा

संस्कृत के पुराणादि ग्रन्थों का वैदुष्यपूर्ण अनुवाद न किया होता तो वे ज्ञान की इन दुर्लभ किरणों से वंचित रह जाते।

कपिलस्य कणादस्य गौतमस्य पतञ्जलेः।
व्यासस्य जैमिनेश्चापि शास्त्राण्याहुः षडेवहि ॥

सर झा की श्रमशीलता और अध्ययन लेखन के प्रति अतिरिक्त निष्ठा ने सम्पूर्ण वैदिक वाङ्मय को पुनर्प्रतिष्ठित किया।

स्वयं भगवान् कहते हैं-

ज्ञानिनः स्याद्दि यस्यादो ध्यात्म गोलक दर्शनम्।
मद्दर्शनं ध्रुवं कर्त्तु शक्नुयात्सर्वथेवसः ॥
वैदिक दर्शनैरुक्तं ज्ञानमेवास्ति लोचनम्।
एतदर्थं न सन्देहः सत्यं सत्यं ब्रवीभिवः ॥

हे विज्ञानविद् ब्राह्मणों ! मेरी अघटनघटनापरीयसी प्रकृति मुझसे व्यक्त होकर इस महाकाशगोलक में प्रकाशित है। वह विद्यारूप से ऊपर की सप्तभूमिकाओं में और अविद्यारूप से नीचे की सप्त भूमिकाओं में परिव्याप्त है। उस सप्त छाया और सप्तज्योति से पूर्ण महाकाशगोलक को आधाररूप से मेरी जड़ा प्रकृति धारण कर रही है और मैं शुद्ध चिन्मय होकर उसके ऊपर स्थित हूँ। इस अध्यात्म गोलक का दर्शन जिस ज्ञानवान् को होता है वह निश्चय ही मेरा दर्शन प्राप्त करने में समर्थ होता है। वैदिक दर्शनोक्त ज्ञान ही नेत्ररूप है इसमें सन्देह नहीं।

स धन्यः स च विज्ञानी स एव सुरपूजितः।
स दीक्षितः सुधीः साधुः सत्यवादी जितेन्द्रियः ॥
स देवभक्तः स्वाध्यायी सर्वानन्द परयणः।
स्वस्मिन् तारां च सम्भाव्य पूजयेज्जगदम्बिकाम् ॥

सर झा विरचित विशाल साहित्य तरङ्गोंमें सर्वाधिक उत्तालता प्रभाकर विषयक मीमांसा मतों को प्राप्त है। पं. वाचस्पति मिश्र विरचित तत्त्वकौमुदी का संपादन तथा अनुवाद एक ऐसा विलक्षण अवदान है जिसे यावच्चन्द्रदिवाकरों विस्मृत नहीं किया जा सकता। सांख्य दर्शन के प्रति सर झा का सहज ही आकर्षण था। डा. सर झा के उल्लेख तथा स्वयं वाचस्पति मिश्र की भामती व्याख्या से ऐसा प्रतीत होता है कि उस समय मिथिला पर नेपाल के प्रतिभाशाली नृपतियों का आधिपत्य था। सांख्य दर्शन पर 'तत्त्वकौमुदी' से उत्कृष्ट व्याख्या और कोई नहीं है। डा. सर झा ने तत्त्वकौमुदी की भूमिका में वाचस्पति मिश्र का समय विक्रम संवत् ८९८ स्वीकार किया है। इस प्रसंग में मिथिला के सिमरौनिगढ़ी शिलालेख का भी उल्लेख हुआ है।

अन्य दर्शनों की अपेक्षा सांख्यदर्शन की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि अन्य दर्शनों में से किसी ने मुक्ति के प्रति ब्रह्मज्ञान को तो किसी ने भक्ति को और किसी ने योग आदि भिन्न-भिन्न साधनों पर बल दिया, किन्तु सांख्य ने एक मात्र तत्त्व ज्ञान को ही मोक्ष का प्रयोजक बताया है। वह मोक्ष अर्थात् निःश्रेयस, दुःखत्रयात्यन्ताभावस्वरूप है। और वह दुःखत्रयान्तन्ताभाव, दुःखत्रया-निवृत्तिस्वरूप है। उस दुःखत्रयनिवृत्ति को ही पुरुषार्थ कहते हैं।

यस्य देवे परा भक्तिर्यथा देवे तथा गुरौ।
तस्यैते कथिताह्यर्याः प्रकाशन्ते महात्मनः॥

राजा विश्ववसु और ब्राह्मण याज्ञवल्क्य के संवाद का उल्लेख है। विश्वावसु याज्ञवल्क्य से प्रश्न करते हैं कि पञ्चविंश के विषय में मैंने आपसे सुना तथा कपिल, आसुरि, पंचशिख, पराशर, वार्षगण्य, गौतम, गर्ग आदि के विस्तृत साहित्य को भी देखा है। पञ्चविंश विषयक कथन कहाँ तक युक्त है, यह मैं आपके श्री मुख से सुनना चाहता हूँ। आप शास्त्रों के प्रगल्भ ज्ञाता हैं और अति बुद्धिमान हैं। आपने सांख्यज्ञान को पूर्णरूप में प्राप्त किया है, आप निःसंशय महाज्ञानी हैं। चराचर जगत को आपने जान लिया है। इसलिए सांख्य ज्ञान के निमित्त आपसे कुछ सुनना चाहता हूँ।

महामुनि याज्ञवल्क्य ने कहा - गन्धर्वराज विश्ववसु ! तुम योग्य अधिकारी हो। जो जिज्ञासा तुमने प्रस्तुत की है, उसके विषय में जैसा मैं जानता हूँ वह कह रहा हूँ।

सांख्य शास्त्र में प्रकृति को जड़ कहा गया है और पञ्चविंश अर्थात् पुरुष को चेतन। चेतन पुरुष जड़तत्त्व को जान लेता है, पर जड़ तत्त्व चेतन को नहीं जान पाता। ज्ञान चेतन का स्वरूप है। प्रकृति का 'प्रधान' नाम इसी कारण है कि वह इस समस्त भूत-भौतिक ब्रह्माण्ड का आधार है। प्रलयकाल में कार्य जड़ कारण जड़ में लीन हो जाता है, इसी आधार पर प्रकृति को प्रधान कहते हैं। सांख्य शास्त्र के तत्त्व को समझने वाले विद्वानों ने ऐसा ही कहा है।

मूल उपादान जड़ तत्त्व अन्य है, तथा जीव चेतन अन्य है। जीव चेतन में स्थित होने से वह आत्मा एक मात्र परमात्मा को जान लेता है। जन्म और मृत्यु के कष्ट से भीत सांख्यवित् पवित्रान्तः करण होकर विधिपूर्वक समाधि लाभ द्वारा परमात्मा (षड्विंश) का साक्षात् ज्ञान प्राप्त करते हैं।

तथ्यतः-

नास्ति सांख्यसमं ज्ञानं नास्ति योगसमं बलम्।
अत्र वः संशयो मा भूत् ज्ञानं सांख्यपरं स्मृतम्॥

सर गंगानाथ झा जी ने मीमांसा तथा वैशेषिक दर्शन की भाँति सांख्य दर्शन पर भी गंभीर टीका की है। इतना आधिकारिक लेखन वृहत्तर अध्ययन - मनन् से ही संभव है।

भारतीय जीवन-जगत पर आच्छादित मोहान्धकार को दूर करने का इस मनीषी ने अपूर्व संकल्प कर लिया था। सफलता पग-पग पर आपकी अनुगामिनी बनी रही। श्रमशील जन सरस्वती और लक्ष्मी दोनों को प्रिय हैं। भगवती भारती की अभ्यर्थना करनेवाले इस गायत्री भक्त को कभी भी अभाव-बोध न हुआ। उनकी तो एक मात्र स्पृहा थी-

अज्ञानेन मया देव यत्कृतं मूर्तिकल्पनम्।
तत्सर्वं कृपयाशंस क्षमस्व मधुसूदन॥
विद्यायां सत्वपूर्णायाय विद्यायाः कथं चन।
नैवास्ते लेशमात्रं हि विद्यासेवित ईश्वरः॥

महामहोपाध्याय डा. गंगानाथ झा का रचना संसार उनके विशाल सांस्कृतिक अवदान का साक्षी है। मेरे विगत जीवन का कोई पुण्य था जो मुझे उस देवोपम प्रतिभा-सम्पन्न युगपुरुष पर शोध-कार्य का अवसर मिला। अपनी क्षमता के अनुरूप मैंने आकाश सा फैलाव और रत्नाकर की गरिमा से युक्त उनके साहित्य तथा जीवन-दर्शन को आकलित करने का प्रयास किया है। आपके प्रसंग में अधिक कहने और लिखने के लिए अतिरिक्त तप और विस्तृत काल-खण्ड की अपेक्षा है। निज अल्पज्ञता और शोध की मर्यादा अधिक विस्तार की अनुमति नहीं देता। जीवन पर्यन्त अध्ययन, चिन्तन और लेखन के प्रति समर्पित महामानव ने प्रमाणित कर दिया कि- 'कीर्त्तियस्य स जीवति।'

यः काश्यामथ तीर्थनाथसविधे श्लाघ्यः सतां सन्ततं
सम्मान्योऽमरनाथ-मुख्यविबुधैरादित्यतेजो गुरुः।
ईशानो विविधात्मनामपि सदा विद्यावधूनां परो
गङ्गानाथ-शिवः स मङ्गलगुणग्रामाय नः कल्पताम्॥

****

पुस्तकानुक्रमणिका

१. भक्ति चन्द्रिका : डा. मंगलदेव शास्त्री

२. मैथिली साहित्यक इतिहास : डा. रमानाथ झा

३. संस्कृत साहित्य का इतिहास : डा. एबी. कीथ

४. संस्कृत साहित्य का इतिहास : पं. बलदेव उपाध्याय

५. मराठी का भक्ति साहित्य : प्रो. भीमराव गोपाल देशपाण्डे

६. विवेकानन्द ग्रन्थावली : प्रथम, द्वितीय तथा पंचम खण्ड

७. हिन्दी दास बोध : समर्थ रामदास

८. मिथिला भाषा रामायण : कवीश्वर चन्दा झा

९. संस्कृत काव्य शास्त्रे भक्ति रस विवेचनम् : डा. कृष्णविहारी मिश्र

१०. मेघदूतम् : कालिदास

११. प्रसन्नराघव : जयदेव कवि

१२. झा कांमेमोरेशन वोल्यूम : पूना ओरियन्टल सिरीज

१३. सर आसुतोष मुंखर्जी अभिनन्दन ग्रन्थ

१४. श्री कृष्णस्वयम् : शारदा मिश्रा, मथुरा

१५. डा. अमरनाथ झा मेमोरियल वोल्यूम

१६. पं. गोपीनाथ कविराज अभिनन्दन ग्रन्थ, बनारस

१७. डा. आदित्यनाथ झा अभिनन्दन ग्रन्थ, भाग १,२ तथा ३

१८. डा. रमानाथ झा अभिनन्दन ग्रन्थ, दरभंगा

१९. डा. तन्त्रनाथ झा अभिनन्दन ग्रन्थ दरभंगा

२०. महामहोपाध्याय पं. दीनबन्धु झा अभिनन्दन ग्रंथ, इसहपुर

२१. स्मारिका : मैथिली साहित्य परिषद् अधिवेशन, सरिसब

२२. किछु देखल किछु सुनल : पं. गिरीन्द्र मोहन मिश्र

२३. बसेरे से दूर : डा. हरिवंश राय बच्चन
२४. मैथिली साहित्य का इतिहास : डा. दुर्गानाथ झा श्रीश
२५. पं. मदनमोहन मालवीय अभिनन्दन ग्रन्थ : बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय
२६. मिथिला भाषा विद्योतनं : पं. दीनबन्धु झा
२७. धम्म पद : भिक्षु धर्मरक्षित, बनारस
२८. ललिंत विस्तर : जे.डब्लू थांमस
२९. फारंमेशन ऑफ मैथिली लैंग्वेज : डा. सुभद्र झा
३०. हिस्ट्री ऑफ मेथिली लिटरेचर : डा. जयकान्त मिश्र
३१. दीघ निकाय : महापण्डित राहुल सांकृत्यायन
३२. खारबेल का शिलालेख : डा. काशी प्रसांद जायसवाल
३३. अशोक की धर्म लिपियॉ : डा. गौरी शंकर हीराचन्द ओझा
३४. हर्षबर्द्धन : श्री गौरी शंकर चटर्जी
३५. ज्ञानसिद्धि : गायकवाड ओरियण्टल सिरीज बड़ोदा
३६. उमेश मिश्र कामेमोरेशन वोल्यूम : इलाहाबाद
३७. अथर्ववेद : भंडारकर, बम्बई
३८. सामवेद
३९. ऋग्वेद
४०. यजुर्वेद
४१. ऋग्वेंद संहिता : दामोदर सातवलेकर, सतारा
४२. श्वेताश्वतरोपनिषद् : खेमराज - श्री कृष्णदास
४३. महाभारत्र : भंडारकर ओरियन्टल रिसर्च इन्स्टीच्यूट
४४. तैत्तरीयोपनिषद् : गीता प्रेस, गोरखपुर
४५. मनुस्मृति (कलुभट्ट टीका) : निर्णयसागर प्रेस, बम्बई
४६. विष्णुपुराण : श्री रामचन्द्र शर्मा बम्बई
४७. हर्षचरितम् : वाणभट्ट
४८. युग पुराण : डा. आर मनकद
४९. हरिवंश पुराण : नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ

५०. हिन्दू राज्य तंत्र : डा. काशी प्रसाद जायसवाल

५१. प्राचीन भारत : श्री गंगा प्रसाद मेहता

५२. अंधकार युगीन भारत : डा. काशी प्रसाद जायसवाल अनु. रामचन्द्र वर्मा, काशी

५३. तपोभूमि : श्री राम गोपाल मिश्र

५४. जैमिनि सूत्र वत्ति (सुबोधिनी टीका) : ब्रह्मचारी सर्वेश्वरानन्द

५५. शिवपुराण : काशी

५६. हिन्दी सांख्य तत्वकौमुदी : डा. गजानन शास्त्री मुसलगाँवकर

५७. वेदान्त दर्शन विन्दु : श्री एस. सुब्रह्मण्यम शास्त्री

५८. मीमांसा शाबर-भाष्यम् : प्रथम तथा द्वितीय भाग

५९. पूर्वमीमांसा इन इट्स सोर्सेज : डा. गंगानाथ झा संपादन : सर्वपल्ली राधाकृष्णन

६०. श्रीमद्भगवद्गीता : स्वामी तुलसीदाम कृत व्याख्या

६१. शिक्षा सूत्राणि : आपिशालि पाणिनीय तथा चान्द्र शिक्षा सूत्रों का संग्रह

६२. वैदिक स्वर मीमांसा : मीमांसक युधिष्ठिर

६३. तत्व चिन्तामण्यालोक : पक्षधर मिश्र, दरभंगा

६४. तर्क-दीपिका : अन्न भट्ट, बम्बई

६५. किरणावली-प्रकाश-विवृति : रुचिदत्तोपाध्याय, कलकत्ता

६६. कणाद् रहस्य : पं. शंकर मिश्र, वाराणसी

६७. किरणावली-प्रकाश-दीधिति : रधुनाथ शिरोमणि, बनारस

६८. काश्कावली-मुक्तावली : चौखम्बा, वाराणसी

६९. किरातार्जुनीयम् : भारवि

७०. तत्व चिन्तामणि : गदाधारी संस्करण, कलकत्ता

७१. भारतीय दर्शन : डा. उमेश मिश्र

७२. भाष्यचन्द्र : न्याय-भाष्य व्याख्या, चौखम्बा

७३. न्याय कुसुमांजलि : चौखम्बा, वाराणसी

७४. तर्क भाषा-प्रकाशिका : चिन्नम्भट्ट

७५. न्यायवार्तिक : चौखम्बा, वाराणसी

७६. प्रशस्त-पाद भाष्य : संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी

७७. ब्रह्मसूत्र, शाङ्कर भाष्य, भामती - कल्पतरु सहितः बम्बई.

७८. हिस्ट्री ऑफ इण्डियन् फिलासांफी - एस.एन. दास-गुप्ता

७९. इण्डियन लॉजिक इन अर्लीस्कूल्स : रैण्डले

८०. अधिधर्म - कोश : आचार्य नरेन्द्रदेव संस्करण

८१. सरोजनी नायडू : डा. अमरनाथ झा

८२. गणनाथ-विन्ध्यनाथ पदावली : सं.डा. गंगानाथ झा, प्रयाग

८३. रामचरित मानस : गोस्वामी तुलसीदास

८४. वाल्मीकि रामायण : भाग-१ एवं २, गीता प्रेस.

८५. भारतेन्दु ग्रन्थावली : बनारस

८६. धरती गाती है : डा. देवेन्द्र सत्यार्थी

८७. धीरे बहो गंगा : डा. देवेन्द्र सत्यार्थी

८८. काशी की पाण्डित्य परम्परा : डा. बलदेव उपाध्याय

८९. तुलसी ग्रन्थावली : भाग-२, गीता प्रेस

९०. पारिजातहरणम् : उमापति

९१. वर्णरत्नाकर : ज्योतिरीश्वर ठाकुर

९२. पूर्वांचल भाषा साहित्य एवं संस्कृति : पं. सुरेन्द्र झा 'सुमन'

९३. मनुस्मृति

९४. भक्ति का विकास : डा. मुशीलाल शर्मा

९५. मैथिली अभिलेख गीत माला : डा. जयकान्त मिश्र

९६. हिन्दी पदावली-साहित्य पर मैथिली लोक-संगीत के प्रभाव (शोध-प्रबन्ध) : डा. अजय मिश्र

९७. मैथिली गीत रत्नावली : कविशेखर बदरीनाथ झा

९८. कालिदास ग्रन्थावली : भाग-१, काशी

९९. पुरुष परीक्षा, विद्यापति : सं. डा. रमानाथ झा

१००. आर्यन इन्भेजन ऑफ इण्डिया : इज इट ए मिथ ? : डा. गंगानाथ झा

१०१. भागवतम् : डा. गंगानाथ झा, मद्रास

१०२.	न्याय प्रकाश	: नागरी प्रचारिणी सभा, डा. गंगानाथ झा
१०३.	कवि रहस्य	: हिन्दुस्तानी एकेडमी, प्रयाग, डा. गंगानाथ झा
१०४.	हिन्दू लॉ इट्स सोर्सेज	: डा. सर गंगानाथ झा
१०५.	कुमारिल एण्ड वेदान्त	: डा. सर गंगानाथ झा
१०६.	मैग्नेटिज्म ऐज एक्सप्लेन्ड बाइ शान्तिरक्षित	: डा. झा
१०७.	ए नोट ऑन दि शाबर भाष्य	: डा. झा
१०८.	दि फिलासाफिकल डिसिप्लिन	: कमला भाषणमाला, डा. झा
१०९.	प्रभाकर स्कूल ऑफ पूर्व मीमांसा	: डा. झा, इलाहाबाद
११०.	प्रभाकर ए थ्योरी ऑफ एरर	: डा. झा
१११.	पूर्व मीमांसा इन इट्स सोर्सेज	: डा. झा
११२.	रेलिजन, दि नीड ऑफ दि प्रेजेन्ट जेनरेशन	: डा. झा
११३.	शांकर वेदान्त	: डा. झा, महाराज रामेश्वर सिंह भाषण माला
११४.	न्याय फिलासफी ऑफ गौतम	: डा. झा, प्रयाग
११५.	सम रैयर वर्क्स ऑन वैद्यक - डा. झा (कृष्णस्वामी आयंगर स्मृती ग्रन्थ)	
११६.	सोर्सेज ऑफ प्रापर्टी अंडर हिन्दू लॉ	: डा. झा, बनारस (मालवीय स्मृति ग्रन्थ)
११७.	दि टीचिङ्ग ऑफ लॉ इन इण्डियनन युनिभर्सिटीज	: डा. झा, वाल्टेयर
११८.	वैशेषिक दर्पण	: डा. झा, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी
११९.	योग दर्शन	: डा. झा, थियोसाफिकल प. हा., आड्यार
१२०.	वेदान्त दीपक	: डा. झा, मैथिली साहित्य परिषद्, दरभंगा
१२१.	मीमांसा न्याय प्रकाश	: आपदेवकृत, अ.डा. झा, बनारस
१२२.	वाणभट्ट कृत कादम्बरी	: डा. झा, इण्डियन प्रेस, इलाहाबाद

१२३.	गौतम न्याय सूत्र	: डा. झा, ओरियन्टल बुक एजेन्सी, पूना
१२४.	न्याय दर्शन	: सूत्र तथा वात्सायन भाष्य रधुत्तम भाष्य चन्द्र टीका : डा. सर झा
१२५.	न्याय सूत्र ऑफ गौतम	: डा. झा, पूना
१२६.	गौतम न्याय सूत्र उद्योतकर वार्तिक	: डा. झा, प्रयाग
१२७.	हिन्दू एथिक्स	: प्रन्सिपुल्स आंफ हिन्दू रेलिजियोसोशल रीजेनरेशन : डा. झा
१२८.	जैमिनि कृत पूर्व मीमांसा सूत्र	: डा. झा
१२९.	प्रसन्न राधव	: संस्कृत भाववोधिनी टीका सहित
१३०.	न्याय कालिका, जयन्त भट्ट कृत	: डा. झा
१३१.	चतुरग्निविधानेन जलाशयोत्सर्ग पद्धति पं. हर्षनाथ झा विरचित	: सं. डा. झा, इलाहाबाद
१३२.	कविकुलगुरु कालिदास विरचित मेघदूतम्	: डा. झा, इलाहाबाद
१३३.	तर्कभाषा पं. केशव मिश्र	: डा. झा, पूना
१३४.	गीत गोपीपति काव्य	: डा. झा
१३५.	कृष्ण दीक्षित कृत परिभाषा	: डा. झा, पण्डित-काशी
१३६.	तन्त्र वार्तिक, अंगरेजी अनुवाद	: डा. झा, कलकत्ता
१३७.	मधुसूदन सरस्वती कृत अद्वैत सिद्धि	: डा. झा, इलाहाबाद
१३८.	मण्डन मिश्र कृत 'भावना विवेक'	: डा. झा, सरस्वती-भवन, इलाहाबाद
१३९.	मीमांसानुक्रमणिका	: डॉ. झा, चौखम्बा, वाराणसी
१४०.	मनुस्मृति, मेधातिथि-भाष्य सहित	: डा. झा, कलकत्ता
१४१.	तन्त्ररत्न, पार्थसारथि मिश्र	: डा. झा, काशी
१४२.	योग दर्शन	: डा. झा, बम्बई (पात जल योग सूत्र तथा व्यास कृत भाषाय)
१४३.	पदार्थ धर्म संग्रह	: प्रशस्तपादकृत- अ.डा. झा, काशी
१४४.	शाबर भाष्य	: डा. झा, बडौदा

१४५.	वादि विनोद पं. शंकर मिश्र	: अ. तथा संपादित- डा.झा, इला-हाबाद
१४६.	तत्त्वसंग्रह, शान्ति र क्षितकृत	: डा. झा बड़ौदा
१४७.	श्री हर्षकृत खण्डन खण्ड खाद्य	: अ., डा. झा
१४८.	आनन्दपूर्ण कृत खण्डन खण्डखाद्य	: डा. झा, काशी
१४९.	छान्दोग्योपनिषद्, शांकर भाष्य सहित	: डा. झा, मद्रास
१५०.	पुरुष परीक्षा, विद्याषति	: डा. झा, इलाहाबाद
१५१.	विज्ञानभिक्षु कृत योगसार संग्रह	: डा. झा, इलाहाबाद
१५२.	गोवर्द्धनाचार्य विरचित आर्यासप्तशती	: भूमिका- डा. झा
१५३.	छान्दोग्यमन्त्र भाष्य, गुणविष्णु कृत	: डा. झा, कलकत्ता
१५४.	तत्त्व कौमुदी	: वाचस्पति मिश्र कृत, अनुवाद : डा. झा
१५५.	विवाद-चिन्तामणि	: अ.-डा. झा, पूना
१५६.	वामन विरचित काव्यालंकारसूत्र	: डा. झा, इलाहाबाद
१५७.	कविन्द्राचार्य सूची पत्र अनंतकृष्ण शास्त्री	: डा. झा, बरौदा
१५८.	ए हिस्ट्री ऑफ दि वैदिक लिटरेचर आर्थर एन्थनई मैकडोनल	: संस्कृत रुपान्तरण - डा. झा
१५९.	कन्सेप्शन ऑफ मैटर एकार्डिंग टु न्याय वैशेषिक	: (भूमिका लेखन) : डा. झा
१६०.	इन्टेलिजेन्ट मैन्स गाइड टु इण्डियन फिलासॉफी	: मू. भनुभाई चन्द्र विद्यानंद : अ. डा. झा

पत्र-पत्रिका

१. सरस्वती : प्राचीन फाइल

२. पण्डित

३. दि इण्डियन थांट, ल. ना. मिथिला विश्वविद्यालय पुस्तकालय में सुरक्षित

४. मिथिला मिहिर

५. वैदेही

६. आलोचना

७. जनपद : काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, बनारस

८. खोज-रिपोर्ट : नागरी प्रचारिणी सभा

९. हिन्दू

१०. बालक

११. मैथिली साहित्य परिषद् स्मारक ग्रन्थ

१२. आज

विशेष आभार

श्री मनमोहन झा - सरिसब, मधुबनी

डॉ. प्रभाकर पाठक - कबरा घाट

प्रो. मित्रनाथ झा - दरभंगा

श्री लेखेश्वर सिंह - कालीबारी, कटिहार

डॉ. रामचन्द्र प्रसाद - दरभंगा

डॉ. सकलदेव शर्मा - लहेरियासराय, दरभंगा

प्रो. भक्तिनाथ सिंह ठाकुर - राजग्राम

प्रो. राजेश्वर मिश्र - भैरव स्थान, झंझारपुरु

डॉ. पूर्णानन्द दास - दरभंगा

श्री अरुणकुमार पासवान - आकाशवाणी, दरभंगा

डॉ. आनन्द नारायण शर्मा - वेगूसराय

डॉ. बिजेन्द्र मिश्र - सरिसब-पाही

डॉ. धीरेन्द्रनाथ मिश्र - दरभंगा

डॉ. योगाकर झा - विलासी, देवघर

श्री जे. एन. झा - दरभंगा

डॉ. मनमोहन झा - दरभंगा

डॉ. रामजी ठाकुरे - विश्वविद्यालय संस्कृत-विभाग, दरभंगा

डॉ. अमरनाथ मिश्र - भागलपुर

डॉ. शकील - इलाहाबाद

सुश्री दीपा रानी - दरभंगा

सुश्री शिखा रानी - सरिसब-पाही

श्री मानस विकास - श्री सदन, दरभंगा

प्रो. रमन जी - सरिसब-पाही